प्रथमानुयोग दीपिका

(ग्रन्थ-४)

लेखिका

श्री गणिनी १०५ आर्यिकारत्न विदुषी सम्यग्ज्ञान शिरोमणी, सिद्धान्त विशारद

विजयामती माताजी

(श्री १०८ आचार्य महावीर कीर्ति जी परम्पराय)

प्रबन्ध व्यवस्थापक
नाथूलाल जैन "टोंक वाला"
झोटवाड़ा, जयपुर

सम्पादक
महेन्द्र कुमार जैन (बड़जात्या)
बी. काम.

प्रकाशक

श्री दि. जैन विजया ग्रन्थ प्रकाशन समिति

कार्यालय

"जैन भगवती भवन", ११४, शिल्प कालोनी झोटवाड़ा
जयपुर-३०२०१२

अनुक्रमणिका

चतुर्विंशति जिन स्तोत्रम्	१
तीर्थङ्कर पंचकल्याणक तिथि	२
तीर्थङ्कर चिह्न	४

क्र. सं.	नाम तीर्थङ्कर		पृष्ठ
	१००८		
१.	श्री आदिनाथ जी	......	५
२.	श्री अजितनाथ जी	——	६१
३.	श्री संभवनाथ जी	......	७५
४.	श्री अभिनन्दन जी	......	८५
५.	श्री सुमत जी	....	९५
६.	श्री पद्म प्रभु जी	.....	१०४
७.	श्री सुपार्श्वनाथ जी	.....	११३
८.	श्री चन्द्रा प्रभु जी	....	१२५
९.	श्री पुष्पदन्त जी	.....	१३५
१०.	श्री शीतलनाथ जी	......	१४३
११.	श्री श्रेयांसनाथ जी	......	१५१
१२.	श्री वासुपूज्य जी	.. .	१५९
१३.	श्री विमलनाथ जी	—	१६५
१४.	श्री अनन्तनाथ जी	.	१७३
१५.	श्री धर्मनाथ जी	.....	१७९
१६.	श्री शान्तिनाथ जी	......	१८७
१७.	श्री कुन्थुनाथ जी	.....	१९५
१८.	श्री अरनाथ जी	...	२०३
१९.	श्री मल्लिनाथ जी	.. ...	२११
२०.	श्री मुनिसुव्रतनाथ जी	..	२१९
२१.	श्री नमिनाथ जी	.....	२२५
२२.	श्री नेमिनाथ जी	......	२३३
२३.	श्री पार्श्वनाथ जी	......	२४१
२४.	श्री महावीर स्वामी	......	२४९

"अथ पंचषष्ठी यंत्र गर्भित चतुर्विंशति जिन स्तोत्रं"

वन्दे धर्म जिनं सदा सुखकरं, चन्द्रप्रभं नाभिजम्[1] ।
श्रीमद्वीर जिनेश्वरं जयकरं, कुन्थुं च शान्तिं जिनम् ॥
मुक्ति श्रीफलदारवनन्त मुनिपं, वन्दे सुपार्श्वं विभुम् ।
श्रीमन्मेघनृपात्मजं[2] च सुखदं, पार्श्वं मनोऽभीष्टदम् ॥१॥

श्रीनेमिश्वर सुव्रतौ च विमलं, पद्मप्रभं सांवरम्[3] ।
सेवे संभवशंकरं नमि जिनं, मल्लिम् जयानन्दनम्[4] ॥
वन्दे श्री जिनशीतलं च सुविधं, सेवेऽजितं मुक्तिदम् ।
श्रीसंघवत्पश्चयिश्रितम्, साक्षादरं वैष्णवम्[5] ॥२॥

स्तोत्रं सर्व जिनेश्वरैः रभिमतं, मंत्रेषु मंत्रं वरम् ।
एतत मंगल यंत्र एवविजयो, द्रव्यैं लिखित्वा शुभैः ॥
पार्श्वे संस्थियमान एव सुखदो, मांगल्यमाला प्रदो ।
वामांगे वनिता नरा स्तदितरे कुर्वन्तु ये भावतः ॥३॥

प्रस्थाने स्थिति वादकरणे, राजादि संदर्शने
कन्यार्थे सुत हेतवे धन कृते, रक्षन्तु पार्श्वे सदा ॥
मार्गे संविषमेदवाग्नि ज्वलिते, चिन्तादिविर्नाशने ।
यन्त्रोऽयं मुनि नेम सिंह कथिना, संग्रन्थित सौख्यदः ॥४॥

उपर्युक्त स्तोत्र के पढ़ते समय जो-जो तीर्थंकर का नम्बर आता है उस उस संख्या को रखने से ६५ का यंत्र तैयार हो जाता है । यथा—

१५	८	१	२४	१७
१६	१४	७	५	२३
२२	२०	१३	६	४
३	२१	१९	१२	१०
९	२	२५	१८	११

[1]आदिनाथ स्वामी [2]श्री सुमतिनाथ जी [3]श्री अभिनन्दन जी
[4]वासुपूज्य जी [5]श्री श्रेयांसनाथ जी

श्री चौबीस तीर्थंकरों के पंच कल्याणक तिथियां

तीर्थंकर	गर्भ		जन्म	
१ श्री आदिनाथजी	आषाढ़ कृष्णा	२	चैत्र वदी	९
२ श्री अजितनाथजी	ज्येष्ठ वदी	३०	माघ सुदी	१०
३ श्री सम्भवनाथजी	फाल्गुन सुदी	८	कार्तिक सुदी	१५
४ श्री अभिनन्दनजी	वैसाख सुदी	६	माघ सुदी	१२
५ श्री सुमतिनाथजी	श्रावण सुदी	२	चैत्र सुदी	११
६ श्री पद्मप्रभुजी	माघ वदी	६	कार्तिक सुदी	१३
७ श्री सुपार्श्वनाथजी	भादो सुदी	६	ज्येष्ठ सुदी	१२
८ श्री चन्द्रप्रभुजी	चैत्र वदी	५	पोष वदी	११
९ श्री पुष्पदन्तजी	फाल्गुन वदी	९	मंगसिर सुदी	१
१० श्री शीतलनाथजी	चैत्र वदी	८	माघ वदी	१२
११ श्री श्रेयांसनाथजी	ज्येष्ठ वदी	८	फाल्गुन वदी	११
१२ श्री वासुपूज्यजी	आसाढ़ वदी	६	फाल्गुन वदी	१४
१३ श्री विमलनाथजी	ज्येष्ठ वदी	१०	माघ सुदी	१४
१४ श्री अनन्तनाथजी	कार्तिक वदी	१	ज्येष्ठ वदी	१२
१५ श्री धर्मनाथजी	वैसाख सुदी	८	माघ सुदी	१३
१६ श्री शान्तिनाथजी	भादो वदी	७	ज्येष्ठ वदी	१४
१७ श्री कुन्थुनाथजी	श्रावण वदी	१०	वैसाख सुदी	१
१८ श्री अरहनाथजी	फाल्गुन सुदी	३	मंगसिर सुदी	१४
१९ श्री मल्लिनाथजी	चैत्र सुदी	१	मंगसिर सुदी	११
२० श्री मुनिसुव्रतनाथजी	श्रावण वदी	२	वैसाख वदी	१०
२१ श्री नमिनाथजी	आसोज वदी	२	आसाढ़ वदी	१०
२२ श्री नेमिनाथजी	कार्तिक सुदी	६	श्रावण सुदी	६
२३ श्री पार्श्वनाथजी	वैसाख वदी	२	पोष वदी	११
२४ श्री महावीरजी	आसाढ़ सुदी	६	चैत्र सुदी	१३

श्रावकों को नीचे लिखे दिनों में पूजन और स्वाध्याय करना चाहिये

तप		ज्ञान		मोक्ष	
चैत्र वदी	९	फाल्गुन वदी	११	माघ वदी	१४
माघ सुदी	१०	पौष सुदी	१४	चैत्र सुदी	५
मंगसिर सुदी	१५	कार्तिक वदी	४	चैत्र सुदी	६
माघ सुदी	१२	पौष सुदी	१४	वैसाख सुदी	६
चैत्र सुदी	११	चैत्र सुदी	११	चैत्र सुदी	११
कार्तिक सुदी	१३	चैत्र सुदी	१५	फाल्गुन वदी	४
ज्येष्ठ सुदी	१२	फाल्गुन वदी	६	फाल्गुन वदी	७
पौष वदी	११	फाल्गुन वदी	७	फाल्गुन सुदी	७
मंगसिर सुदी	१	कार्तिक सुदी	२	आसोज सुदी	८
माघ वदी	१२	पौष वदी	१४	आसोज सुदी	८
फाल्गुन वदी	११	माघ वदी	३०	श्रावण सुदी	१५
फाल्गुन वदी	१४	भादों वदी	२	भादों सुदी	१४
माघ सुदी	१४	माघ सुदी	६	आषाढ़ वदी	८
माघ वदी	१२	चैत्र वदी	३०	चैत्र वदी	४
माघ सुदी	१३	पौष सुदी	१५	ज्येष्ठ सुदी	४
ज्येष्ठ सुदी	१४	पौष सुदी	१०	ज्येष्ठ वदी	१४
वैसाख सुदी	१	चैत्र सुदी	३	वैसाख सुदी	१
मगसिर सुदी	१०	कार्तिक सुदी	१२	चैत्र सुदी	११
मगसिर सुदी	११	पौष वदी	२	फाल्गुन सुदी	५
वैसाख वदी	१०	वैसाख वदी	९	फाल्गुन वदी	१२
आसाढ़ वदी	१०	मगसिर सुदी	११	वैसाख वदी	१४
श्रावण सुदी	६	आसोज सुदी	१	आषाढ़ सुदी	८
पौष वदी	११	चैत्र वदी	४	श्रावण सुदी	७
मगसिर वदी	१०	वैसाख सुदी	१०	कार्तिक वदी	३०

श्री चौबीस तीर्थंकरों के चिह्न

वृषभनाथ का "वृषभ" जु जान। अजितनाथ के 'हाथी' मान।
संभव जिनके 'घोडा' कहा, अभिनन्दन पद 'बन्दर' लहा॥

सुमतिनाथ के 'चकवा' होय। पद्मप्रभु के 'कमल' जु जोय।
जिनसुपास के 'साथिया' कहा, चन्द्र प्रभु पद 'चन्द्र' जु लहा॥

पुष्पदन्त पद 'मगर' पिछान, 'कल्पवृक्ष' शीतल पद मान।
श्री श्रेयांस पद 'गेंडा' होय, वासुपूज्य के 'भैंसा' जोय॥

विमलनाथ पद 'शूकर' मान, अनन्तनाथ के 'सेही' जान।
धर्मनाथ के 'वज्र' कहाय, शान्तिनाथ पद 'हिरन' लहाय॥

कुन्थुनाथ के पद 'अज' चीन, अरजिन के पद चिह्न जु 'मीन'।
मल्लिनाथ पद 'कलश' कहा, मुनिसुव्रत के 'कछुआ' लहा॥

'लालकमल' नमिजिन के होय, नेमिनाथ-पद 'शङ्ख' जु जोय।
पार्श्वनाथ के 'सर्प' जु कहा, वर्द्धमान पद 'सिंह' हि लहा॥

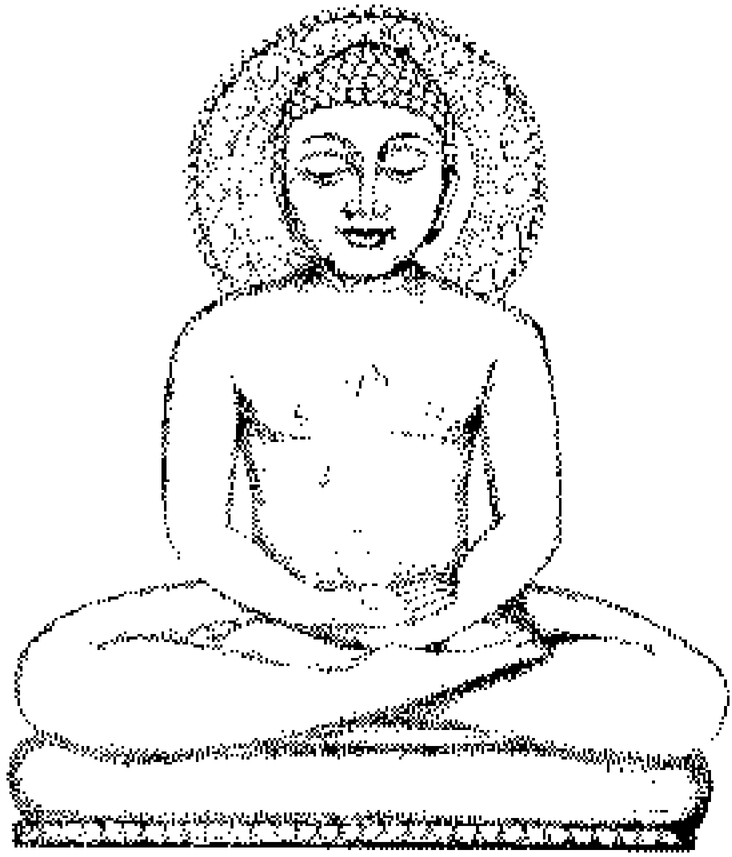

श्री सिद्ध अर्हद्भ्यो नमः

श्री १००८ आदिनाथ

अनादि अनन्त होते हुए भी संसार परिवर्तनशील है। "ससरणं संसारः" जो परिणमित होता रहे वह संसार है। इसका अभिप्राय यह है कि अनन्त संसार में स्थित पदार्थों में सतत उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक स्थिति होती रहती है। क्योंकि सत् का यही लक्षण है। चूंकि संसार भी सत्रूप है अतः परिवर्तन अनिवार्य है। यह परिवर्तन ६ भागों में विभक्त है। परिवर्तन की धुरा काल-द्रव्य है इसके मुख्य और व्यवहार से दो भेद हैं काल के दो भेद हैं......१—उत्सर्पिणी और २—अवसर्पिणी। प्रत्येक के ६–६.....भेद हैं। इनका समय १०-१० कोडाकोडी सागर काल है। २० कोडाकोडी सागर का एक युग कहा जाता है। अवसर्पिणी का प्रथम भाग सुखमा-सुखमा ४ कोडाकोडी सागर की है, दूसरा सुखमा ३ कोडाकोडी सागर, तीसरा सुखमा-दुःखमा २ कोडाकोडी सागर, चौथा दुःखमा-सुखमा ४२ हजार वर्ष कम १ कोडाकोडी सागर, पांचवां दुःखमा और छठा दुःखमा-दुःखमा प्रत्येक २१-२१ हजार वर्ष मात्र हैं। इस

काल में मनुष्यादि की अवगाहना, सुख, ऐश्वर्य, वैभव, बुद्धि, पराक्रम, बल-वीर्य, कला-विज्ञान आदि क्रमशः स्वभाव से कम-कम होते जाते हैं। तदनुसार वन-पर्वत, नदी आदि का प्रमाण भी उत्तरोत्तर कम होता जाता है। इसके विपरीत उत्सर्पिणी काल है जिसका क्रम इससे विपरीत होता है। १—दुःखमा-दुखमा, २—दुःखमा, ३—दुःखमा-सुखमा, ४—सुखमा-दुःखमा, ५—सुखमा और ६—सुखमा-सुखमा। इनके समय भी पूर्वोक्त प्रकार ही है। इस काल में जीवों का शरीराकार, आयु, बल, बुद्धि, पराक्रम, ज्ञानादि गुण कला-विज्ञान उत्तरोत्तर स्वभाव से वृद्धिगत होते रहते हैं।

नदी का वेग, पवन की गति किसी प्रकार रोकी जा सकती है परन्तु समय (काल) की चाल में पुरुषार्थ को हार मानकर ही बैठना पड़ता है। यह एक नैसर्गिक-प्राकृतिक प्रक्रिया है प्रयत्न साध्य नहीं। वर्तमान युग अवसर्पिणी चल रहा है। इसके प्रारम्भ (प्रथम काल) में जीवनोपार्जन का साधन दश प्रकार के कल्पवृक्ष थे। १. गृहांग (घर देने वाला), २. भोजनांग (भोजन दाता), ३. भाजनाङ्ग (पात्र दाता), ४. पानांग (मधुर रस दाता), ५. वस्त्रांग, ६. भूषणांग, ७. माल्यांग, ८. दीपांग, ९. ज्योतिरांग और १०. तूर्यांग (नाना प्रकार के वादित्र प्रदान करने वाले) सर्व युगलियाँ इन्हीं से जीवन चलाते थे। उत्तम भोगभूमि के समान सम्पूर्ण रचना थी। दूसरे सुखमा काल में मध्यम भोगभूमि और तीसरे सुखमा-दुःखमा काल में जघन्य भोगभूमि के समान व्यवस्था रही। इन कालों में युगलियाँ (स्त्री-पुरुष) एक साथ उत्पन्न होते और एक साथ ही संतान उत्पन्न कर छींक और जंभाई लेकर मरण को प्राप्त हो जाते। उस समय समाज, परिवार, राज्य आदि का संगठन नहीं था। सभी जीव कल्प वृक्षों से आवश्यक पदार्थ लेकर अपना जीवन-यापन करते थे।

कुलकरों की उत्पत्ति —

तृतीय काल में पल्य का आठवाँ भाग शेष रहने पर कल्पवृक्षों की शक्ति क्षीण हो गई। ज्योतिरङ्ग जाति के कल्पवृक्षों का प्रकाश मन्द होने से आषाढ़ सुदी पूर्णिमा के दिन सायंकाल पूर्वदिशा में सर्व प्रथम चन्द्र दर्शन हुआ और इसी समय पश्चिम दिशा में अस्ताचल की ओर जाता हुआ सूर्य दिखाई दिया। एकाएक अचानक इनका अवलोकन कर

समस्त जन-समूह आश्चर्य और भय से अभिभूत हो गया। वे सोचने लगे ये क्या सुवर्ण विमान है, या घड़े हैं, अथवा ग्रह हैं, कि वा राजा हैं ? हम पर क्या विपत्ति आ सकती है ? इनका भय निवारण करते हुए प्रथम मनु ने प्रजा को बोध प्रदान किया। हे सज्जनों ! आर्यो, आप डरो मत। ये भयंकर पदार्थ नहीं हैं न कोई नवीन ही उत्पन्न हुए हैं। अपितु, अनादिकालीन हैं. अभी तक कल्पवृक्षों के तीव्र प्रकाश के कारण इनका तेज छुपा था अब मन्द होने से दृष्टिगत होने लगे हैं ये चाँद और सूर्य हैं। इस प्रकार प्रजा को निर्भय बनाया इसीसे इनका नाम (१) प्रथम मनु "प्रतिश्रुति" प्रख्यात हुआ। पुन: क्रमश: भोगभूमि का प्रलय होने लगा और मनुओं की उत्पत्ति भी। तथा हि——

(२) सन्मति-नक्षत्र ज्योति से उत्पन्न भय को दूर करने वाला दूसरा मनु।

(३) क्षेमंकर——मृगादि (हिरण-गाय भैंसादि) शान्त स्वभाव को छोड़कर क्रूर स्वभावी होने लगे उनसे रक्षण करने का उपदेश दिया।

(४) क्षेमंधर—भयंकर-भीति उत्पन्न करने वाले सिंह व्याघ्र आदि को वश में करने के लिए लाठी, काठी का प्रयोग करना सिखाया।

(५) सीमंकर—कल्पवृक्षों के फलादि स्वल्प-कम हो जाने से प्रजा परस्पर झगड़ा करने लगी——मेरा-तेरा का भाव जाग्रत हो गया, तब कल्पवृक्षों की सीमा निर्धारित कर विरोध निवारण किया।

(६) सीमंधर——दिन प्रतिदिन कल्पवृक्षों की फलदान शक्ति कम होने लगी और परस्पर विरोध उग्रतर होने लगा। अत: इन्होंने परकोटा बाउण्ड्री लगाने का उपाय घोषित कर साम्य स्थापित किया।

(७) विमल वाहन——इसकी पत्नी का नाम "पद्मा" था। इसने हाथी, घोड़े आदि को वश में कर अंकुश, लगाम का प्रयोग सिखा कर सवारी करने का उपाय बताया।

(८) चक्षुष्मान्——इनके काल में युगल संतान का क्षणमात्र मुखावलोकन कर माता-पिता मरने लगे। अर्थात् पुत्र-पुत्री का मुख देखने से उत्पन्न भय को दूर किया।

(९) यशस्वान्—अब संतान कुछ अधिक काल तक रहने से उसे आशीर्वाद देने का उपदेश दिया। माता-पिता कुछ समय के लिए पुत्र से सुखानुभव करने लगे इसलिए इस मनु का भी यशोगान होने लगा।

(१०) अभिचन्द्र—इन्होंने बच्चों को चन्द्रमा, चन्दा-मामा दिखलाकर खेल-खिलाने का उपदेश दिया।

(११) चन्द्राभ—पुत्र पालन-पोषण की विधि बताई।

(१२) मरुदेव—पर्वतारोहन, नदी स्नान, आदि विशेष-क्रियाएँ सिखाई साथ ही बच्चों का सर्वाङ्गीण विकास पूर्वक लालन-पालन आदि की प्रक्रिया बतलाई।

(१३) प्रसेनजित—इनके काल में युगलियाँ जरायु में लिपट कर पैदा होने लगे। इस समय प्रजा को जरायु पटल चीरकर संतान को बाहर निकालने की प्रक्रिया बताकर उन्हें स्वस्थ और सुखी किया। प्रसेन का अर्थ है। "मल" गर्भमल से निकालने का उपाय बताने से इस मनु का नाम "प्रसेनजित" प्रसिद्ध हुआ।

(१४) नाभि—इनके काल में जन्म जात बच्चों के साथ नाल आने लगा उसे काटने का उपाय बताया इसीसे ये नाभिराज कहलाये। इनका शरीर ५२५ धनुष[1] ऊँचा था। आयु १ कोटिपूर्व[2] की थी। इस समय मेघों का घिरना, मयूरों का बोलना, नृत्य करना, चातक नृत्य, गर्जन, वर्षा आदि प्रारम्भ हो गई। कल्पवृक्ष समूल विलीन हो गये। चावल, यव, गेहूँ, राले, मांबे, हरीक, कांगनी, सांवा, कोदों, नीवार, तिल, मसूर, सरसों, जीरा, मूंग, उड़द, अरहर, चौला, चना, पावटा, कुलथी, डोढ़ा, इलायची, इत्यादि। ६० दिन में पकने वाले धान्य कपास आदि बिना बोये उत्पन्न हो गए। परन्तु इनका उपयोग करना प्रजा को ज्ञात नहीं था। इसलिए भूख-प्यास से व्याकुल हो 'नाभि' के पास उपस्थित हो निवेदन किया "हम किस प्रकार जीवन

नोट :— [1]साढ़े तीन हाथ का एक धनुष।

[2]८४ लक्ष वर्षों का १ पूर्वाङ्ग और ८४ पूर्वाङ्ग का १ पूर्व होता है। १ पूर्व में एक करोड का गुणा करने से एक कोटि पूर्व।

= ८४०००००×८४०००००=१ पूर्व ×१००००००० = एक कोटि पूर्व

धारण करें ?" मनु नाभि ने अवधिज्ञान से सकल वृतान्त जानकर उन्हें भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों की पहिचान और सेवन की प्रक्रिया बतलायी। इक्षु-दण्डादि को यन्त्र द्वारा पेलकर रसपान करना सिखाया। दांतों से चर्वण करना बताया। मिट्टी के पात्र बनाना, भोजन पकाना आदि सिखाया। स्मरणीय है ये सभी मनु पूर्वभव में विदेह क्षेत्र में क्षत्रिय सूरवीर राजा होते हैं सम्यक्त्व होने के पूर्व मनुष्यायु का बंध कर पुनः श्री जिनेन्द्र भगवान के चरण सान्निध्य में क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त कर श्रुतज्ञान का वैशिष्ट लिए यहाँ उत्पन्न होते हैं (आदि पु० प० ३ श्लो० २०६-२०६)। यहाँ उत्पन्न होने पर जाति स्मरण और अवधि के बल पर विदेह क्षेत्र के समान ही कर्मभूमि की रचना करते हैं। इसके लिए आदि पुराण श्लो० २०७ से २१२ तक देखना चाहिए।

प्रथम ५ मनुओं के समय अपराधी को 'हा' कहना मात्र दण्ड की व्यवस्था प्रारम्भ की। 'हा' मात्र सूक्ष्म दण्ड था। हा कहना अर्थात् अपराधी हो इतना मात्र ही पर्याप्त था। बुद्धि विकास के साथ अपराध-दोष भी बढ़ने लगे। अतः आगे के ५ मनुओं ने 'हा' 'मा' ये दो दण्ड स्थापित किये। इसका अभिप्राय "तुम अपराधी हो आगे ऐसा मत करना" हुआ।

पुनः शेष चार मनुओं और अंतिम मनु नाभिराय के पुत्र श्री वृषभ-देव स्वामी ने हा, मा, और धिक् ये तीन दण्ड स्थापित किये। इस समय सामान्य-साधारण अपराध ही होता था। नाभिराय के पुत्र श्री वृषभ कुमार के काल में भी यही दण्ड व्यवस्था रही। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मानव संस्कृति का वैज्ञानिक ढंग से क्रमिक विकास हुआ है। गुण और दोषों का समानरूप से प्रचार और प्रसार बढ़ता गया जिसके मध्य से मानवता और दानवता का अन्तर्द्वन्द होकर दानवता पर मानवता की विजय करने वाला भव्य जीव अपना सम्पूर्ण विकास कर अजर-अमर पद-मुक्ति पद प्राप्त करता है। यह क्रम अनादि से चला आया है और अनन्तकाल तक चलता ही रहेगा। परन्तु काल परिवर्तन के निमित्त से भोगभूमि से कर्मभूमि और पुनः कर्मभूमि से भोगभूमि का आविर्भाव और तिरोभाव के आधार पर हम एक के बाद दूसरे को नवीन युग की संज्ञा प्रदान करते हैं।

वर्तमान कर्मभूमि का युग है, जिसका श्री गणेश प्रथम तीर्थङ्कर श्री आदिप्रभु से माना जाता है। प्रत्येक उत्सर्पिणी के तीसरे और

अवसर्पिणी के चौथे काल में भरत क्षेत्र एवं ऐरावत क्षेत्र में २४-२४ तीर्थङ्कर--अवतरित हो धर्मतीर्थ का प्रणयन करते हैं। एक तीर्थङ्कर से दूसरे तीर्थङ्कर की केवलोत्पत्ति के पूर्व तक पहले तीर्थङ्कर का तीर्थ-काल माना जाता है।

कर्मभूमि का प्रारम्भ----

भोगभूमि का अन्त और कर्मभूमि का प्रारम्भ 'सन्धिकाल' कहा जा सकता है। इस समय समाज पूर्ण असंस्कृत, भोली, अज्ञानी और जड़ थी। रहन-सहन, खाना-पीना, पारस्परिक प्रेम-मेल-मिलाप आदि से पूर्णत: अनभिज्ञ थी। न समुचित राज्य था न योग्य प्रजा। सभी न्याय-नीति, कला-विज्ञान, आय-व्यय, अर्जन-खर्च की प्रक्रिया को जानते ही नहीं थे। खाद्य-सामग्री का अभाव बढ़ा और फलत: पारस्परिक झगड़े और वितण्डावाद भी उग्रतर होने लगा। यद्यपि "मनु" इस अव्यवस्था की रोक-थाम करते रहे किन्तु उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई। चारों ओर अराजकता का साम्राज्य छाया था, त्राहि-त्राहि मची हुयी थी। चातक जिस प्रकार मेघों की ओर दृष्टि गड़ाये रहता है उसी प्रकार जनता अपने रक्षक की ओर पलक पांवड़े बिछाये बैठी थी। इसी समय कर्मभूमि के सृष्टा, आदि ब्रह्मा अवतरित हुए।

गर्भावतरण----

आडम्बर विहीन, परिशुद्ध पदार्थों से अलंकृत, धार्मिक भावों से परिपूर्ण राजमहल रत्नों के सुखद प्रकाश से आलोकित है। गंध, पुष्पों से सुवासित कोमल शैया पर शयित मरुदेवी महारानी निद्रा के अंक में विराजमान हैं। रात्रि के तीन पहर व्यतीत हो चुके हैं। सिद्ध परमेष्ठी के निर्मल ध्यान करती हुयी महारानी भावी सुख का मानों आह्वान कर रही हैं। चारों ओर शान्त वातावरण है। टिम-टिम प्रदीप मुस्कुरा रहा है। यत्र-तत्र खद्योत का प्रकाश भी चमक रहा है। इसी प्रभात वेला में महारानी मरुदेवी ने १६ शुभ स्वप्न देखे। इससे छह मास पूर्व ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने भरत क्षेत्र के ठीक मध्य में ४८ योजन विस्तृत, सुन्दर अयोध्या नगरी की रचना की थी उसके मध्य में राजप्रासाद निर्मित किया। शुभ मुहूर्त में गृह प्रवेश कर प्रतिदिन चार समय अर्थात् प्रात:, मध्याह्न, सायंकाल एवं अर्द्धरात्रि को ३।।-३।। करोड़ रत्नों की वर्षा की थी, प्रतिदिन १४ करोड़ रत्न बरसने से धरा रत्नगर्भा

हो गई। इस चमत्कार का प्रत्यक्ष फल देने की सूचना रूप, ये मंगलकारी स्वप्न मानों माता को बधाई देने आये हैं। प्रथम ही गर्जना करता सफेद हाथी, २. सफेद बैल, ३. सिंह, ४. लक्ष्मी का सुवर्ण कलशों से गज अभिषेक करते हुए, ५. लटकती दो मन्दार मालाएँ, ६. पूर्ण चन्द्रमा, ७. उदय होता हुआ सूर्य, ८. सरोवर में क्रीडा करती हुई दो मीन, ९. सुवर्णमय मंगल कलश युगल, १०. पद्म-सरोवर, ११. उन्मत्त लहरयुक्त समुद्र, १२. रत्नजटित सिंहासन, १३. देव विमान, १४. धरणेन्द्र भवन, १५. प्रकाशित रत्नराशि और १६. निर्धूम अग्नि। स्वप्नों की पूर्ति के साथ ही अपने मुख में प्रविष्ट होता वृषभ देखा। बंदीजनों के मंगलगान, चारणों की वाद्य ध्वनि एवं पक्षियों के मधुर कलरव के साथ माँ श्री की निद्रा भंग हुई। इस समय उन्हें तन्द्रा तनिक भी नहीं थी वे स्वभाव से ही अप्रतिम सुन्दरी थीं, सौन्दर्य का सार पुंज थी फिर स्वप्नों के देखने से आनन्द और विस्मय से उनकी कान्ति द्विगुणित हो रही थी। समस्त सृष्टि उन्हें आनन्द विभोर प्रतीत हो रही थी। अत्यन्त प्रसन्न-चित्त महादेवी मङ्गल स्नानादि क्रिया कर अपने पतिदेव के पास आयीं मानों हृदय में नहीं समाते आनन्द को बांटना चाहती हों।

स्वप्न फल—

महाराज नाभि छत्र-चमरादि राजचिह्नों से मण्डित हो राज सिंहासन पर आसीन थे। सभा भरी थी। मन्द-मन्द गमन करती हुयी प्रसन्न वदना महारानी भी प्रविष्ट हो अर्द्धसिंहासन पर आ विराजी। विनयोपचार पूर्वक शिष्टता से मृदुवाणी में निवेदन करने लगी—"हे देव आज प्रातः मैंने सोलह शुभ स्वप्न देखे हैं, कृपया इनका फल वर्णन कर मेरी उत्कण्ठा का समाधान करें। स्वप्नों के नामानुसार महाराज नाभिराय अपने अवधि लोचन से बोले, हे देवी! गज देखने से तुम्हें उत्तम पुत्र लाभ होगा, वृषभ से सर्व श्रेष्ठ और ज्येष्ठ होगा, इसी प्रकार क्रम से स्वप्नों के अनुसार अनन्त बलधारी, धर्म तीर्थ प्रवर्तक, इन्द्रों द्वारा अभिषिक्त, संसार को सुखदाता, तेजस्वी, अति सुखी, शुभ लक्षणों से युक्त, जगद्गुरु, स्वर्ग से आनेवाला, अवधिज्ञानी, समस्त कर्मों का नाश कर मुक्ति पाने वाला अनुपम पुत्र रत्न होगा। सुनते ही रानी रोमाञ्चित हो उठी, मानों पुत्ररत्न गोद ही में आ गया।

जिस समय अवसर्पिणी के तीसरे काल में चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष साढ़े आठ महीने बाकी रहे थे उस समय आषाढ़ शुक्ला द्वितीया,

उत्तराषाढ़ नक्षत्र में वज्रनाभि चक्रवर्ती का जीव अहमिन्द्र सर्वार्थसिद्धि की ३३ सागर आयु पूर्ण कर च्युत हो जगन्माता मरुदेवी की कुक्षी में अवतरित हुआ। समस्त पुण्य राशि के सारभूत प्रभु, जिस प्रकार सीप में मोती रहता है उसी प्रकार देवियों द्वारा परिशुद्ध और सुगन्धित द्रव्यों से परिव्याप्त, स्वच्छ, निर्मल गर्भ में अवतरित हुए। जिन माता आहार करती हैं किन्तु उनके मल-मूत्र नहीं होता, न रजस्वला ही होती हैं। अतः उनका गर्भाशय स्वभाव से निर्मल होता है फिर देवियों द्वारा परम दिव्य गंधादि से संस्कृत होकर पूर्ण शुद्ध हो जाता है।

तीर्थङ्कर प्रकृति का महत्त्व......

समस्त कर्मों की १४८ प्रकृतियों में तीर्थङ्कर प्रकृति श्रेष्ठतम है। यह सातिशय पुण्य का चरम विकास है। लोक में साधारण गर्भवती नारी की भी परिचर्या कर उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा की जाती है, फिर त्रैलोक्याधिपति तीर्थङ्कर की जननी होने वाली माता की देवियां सेवा करें तो क्या आश्चर्य है। बे-तार का तार जिस प्रकार सूचना देता है उसी प्रकार स्वर्ग में पुण्य परमाणुओं का तार तीर्थङ्कर प्रभु के कल्याणकों की सूचना पहुँचाते हैं। कल्पवासी देवों के घंटा, ज्योतिषियों के सिंहनाद ध्वनि, भवनवासियों के शङ्खनाद और व्यन्तरों के पटह-तासे की ध्वनि स्वभाव से ही होने लगती है। आसन कंपित होने लगता है जिससे अवधिज्ञान जोड़कर गर्भादि कल्याणों को अवगत कर लेते हैं। अस्तु, इन्द्रादि चतुर्निकाय के देव-देवी गण समन्वित हो नाभिराजा के आंगन में आ पहुँचे। सौधर्मेन्द्र ने सकल देवों सहित संगीत प्रारम्भ किया, शचि, देवियां नृत्य करने लगी, कोई मंगलगान गाने लगी। नाना प्रकार के उत्सव कर स्व स्थान को चले गये। किन्तु इन्द्र की आज्ञानुसार दिक्कुमारियां और षट् कुलाचल वासिनी श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी देवियां दासी के समान जिन माता की सेवा में तत्पर हुयीं। श्री देवी ने मां का सौन्दर्य बढ़ाया, ह्री ने लज्जागुण, धृति ने धैर्य, कीर्ति ने यश, बुद्धि ने तर्कणा-विचार शक्ति और लक्ष्मी ने विभूति को वृद्धिगत किया। कोई दर्पण दिखाती तो कोई ताम्बूल लाती, कोई वस्त्र लिए खड़ी रहती तो कोई आभूषण, कोई पंखा झलती, सेज बिछाना, चौक पूरना, पांव दबाना, उठाना, बैठाना, आहार-पान आदि की व्यवस्था करना आदि कार्य करतीं। कोई स्नान मञ्जन, उबटन द्वारा

माता की सेवा में रत रहतीं । कोई तलवार लिए रक्षा में तत्पर रहती । अभिप्राय यह है कि देवियां अहर्निश माता की सेवा में रत रहतीं । माता को जो कुछ रुचता वही-वही कार्य करतीं, वही पदार्थ देतीं एवं उसी प्रकार आचरण करतीं । माता भी शुश्रूषा से परम आनन्दानुभव करती ।

वनक्रीड़ा, जलकेलि, उद्यान पर्यटन, नृत्य, गान, वाद्य, वीणावादन आदि मनोरंजक साधनों से मरुदेवी माँ का मन बहलातीं । कथा-कहानी सुनातीं, पहेलियां पूछतीं, प्रश्न करतीं, उत्तर पाकर आश्चर्य चकित हो माँ की स्तुति करतीं । जिनमें गूढ़ अर्थ है, क्रिया और पाद गूढ़ हैं, बिन्दु, मात्रा, अक्षर छूटे हुए हैं ऐसे श्लोकों से माता का मनोरंजन बढ़ातीं । माता उन गूढ़ संधियों को समझातीं, अक्षर मात्राओं की पूर्ति कर गर्भस्थ बालक का चमत्कार प्रकाशित करतीं ।

देवियों के माता के साथ प्रश्नोत्तर—

गर्भस्थ बालक की वृद्धि के साथ माता का विवेक, मतिज्ञान और बुद्धि उत्तरोत्तर बढ़ रही थी परन्तु उदर (पेट) नहीं बढ़ा—त्रिवली भंग नहीं हुई । प्रमाद और शिथिलता के स्थान मे उत्साह और स्फूर्ति बढ़ गई थी । वह सतत सावधान चित्त थीं । देवियां नाना प्रश्न करतीं । देखिये किस प्रकार पहेलियां बुझाती है माता ।

हे माते ! पिंजरे में कौन रहता है ? कठोर शब्द किसका होता है ? जीवों का आधार कौन है ? च्युत अक्षर होने पर भी पढ़ने योग्य क्या है ? सभी प्रश्नों का "क:" के साथ अलग-अलग शब्द जोड़कर उत्तर देती हैं । क्रमश: 'शु' लगाकर शुक:, 'का' जोड़कर "काक:" 'लो' मिलाकर "लोक:" और 'श्लो' जोड़कर "श्लोक:" होता है । चारों प्रश्नों के कितने ठोस संक्षिप्त और यथार्थ उत्तर हैं । इसी प्रकार अन्य देवियों ने पूछा, हे जगन्मात ! "धान्य में क्या छोड़ दिया जाता है ? घट कौन बनाता है ? वृषान्—अर्थात् चूहों को कौन खाता है ? इनका उत्तर आदि अक्षर को बदलते हुए बतलाइये ? माता ने प्रत्युत्पन्न बुद्धि से 'ल' शब्द को रखकर क्रमश: "पलाल" 'कुलाल' (कुम्भकार) और "बिडाल" उत्तर दिया । अन्त का अक्षर सब में 'ल' है । इसी प्रकार के अनेकों प्रश्नोत्तरों से गर्भस्थ बालक का गौरव प्रकट होता । अनेकों देवियां प्रच्छन्न रूप से भी माता की सेवा-सुश्रुषा करतीं । पुन: प्रश्न करतीं हे देवी ! आपके किस अङ्ग की कैसी रेखाएं प्रशंसनीय है ?

हथनी का दूसरा नाम क्या है ? दोनों प्रश्नों का एक ही उत्तर दीजिये । माता बोली, "करेणुका" अर्थात् 'करे' हाथ में "अणुका" सूक्ष्म रेखाएँ प्रशंसनीय होती हैं और हथिनी का नाम "करेणुका" भी है । अन्य देवियाँ बोलीं, हे पिकवयणी माँ ! सीधे, ऊँचे और छाया सहित वृक्षों के समूह को क्या कहते हैं ? आपका सबसे मनोहर अङ्ग कौन-सा है ? दोनों प्रश्नों का एक उत्तर चाहती हैं हम । माता तत्काल बोली, "सालकानन" । सालवृक्षों के वन को "सालकानन" कहते हैं और स+अलक+आनन अर्थात् केशपाश सहित मुख मेरे अङ्गों में सबसे

गर्भ में जिन भगवान कैसे थे ?

भगवान अपने सातिशय पुण्यानुसार गर्भ में सीधे ही रहते हैं । वहाँ मल-मूत्र रक्तादि अपवित्र वस्तुओं से अलिप्त रहते हैं । अंग संकोचनजन्य पीड़ा उन्हें नहीं होती । धर्मशर्माभ्युदय में बड़ा सुन्दर भावपूर्ण विवेचन किया है "वे जिन भगवान गर्भावास में रहकर भी मल से अकलंक थे, मति श्रुत और अवधि ज्ञानत्रय के धारक थे । उन्नत उदयाचल के गहन शिखर में छिपा हुआ भी तिग्मरश्मि अर्थात् सूर्य क्या कभी अपने तेज को छोड़ सकता है ? ६—६ ।

मनोहर है । माता की दूरदर्शिता और सूक्ष्म विचार शक्ति से देवियाँ भी पराजय मानतीं । न केवल राजा-रानी ही हर्षोत्फुल्ल थे अपितु समस्त नगरी (अयोध्या) साकेता ही परमानन्द में निमग्न थी । लगभग १५ मास से दिव्य रत्नों की वर्षा से भूमि 'रत्नगर्भा' नाम से अलंकृत हो गई । यत्र-तत्र सर्वत्र याचकों का अभाव सा हो गया । सृष्टि का प्रथम कर्त्ता उत्पन्न होने जा रहा है तो भला धरा क्यों न अपने को धन्य समझती । अनेकों प्रकार के फल-फूल, धान्य आदि से हरी-भरी हो आनन्द नर्तन करने लगी । परन्तु भोली-अनभिज्ञ जनता उसके अभिप्राय को न जानने से उस आनन्दोपभोग में सहयोगी नहीं हो पा रही थी ।

प्रसवकाल—क्षण-क्षण पल-पल घड़ियाँ बीतने लगीं । दिन के बाद रात्रि और पुनः सवेरा, इसी क्रमशः पक्ष और मास आने-जाने लगे ।

सभी की दृष्टि भावी पुत्र रत्न का मुखावलोकन करने को आतुर हो रही थी। माँ का आनन्द तो असीम था। उसे एक-एक पल भारी हो रहा था अपने लाल का मुखचन्द्र निहारने के लिए। जिस प्रकार चातक स्वाति-नक्षत्र की मेघ बिन्दु की प्रतीक्षा करता है, मयूर मेघ गर्जन की ओर कान लगाये रहता है, कोकिला बसन्त का आह्वान करने को आतुर रहती है, साधुजन नि:शेष कर्म निर्जरा की प्रतीक्षा करते हैं उसी प्रकार माता मरुदेवी अपने पुत्रोत्पत्ति की बेला की प्रतीक्षा करने लगी। समय जाते देर नहीं लगती। फिर सुख की घड़ियाँ कब और कैसे निकल जाती हैं यह आभास भी नहीं हो पाता। धीरे-धीरे नव मास पूर्ण हो गये और लो वह शुभ घड़ी आ ही तो गई।

तीर्थङ्कर आदि प्रभु का जन्म

ऋतुओं का राजा बसन्त आया। पीली-पीली सरसों की फुलवाड़ी विहँस उठी। पादपों ने नव-पल्लव परिधान धारण किया। रसाल वृक्ष मंजरियों से लद गये। कोकिलाएँ पञ्चम स्वर से गाने लगीं। मन्द-सुगन्ध बहने लगा। लगता था मानों बसन्त अपना सारा वैभव लिए आदिप्रभु का जन्मोत्सव मनाने आया है। ठीक ही है देव, इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र सभी उस मंगलबेला को पलक-पाँवड़े बिछाये तत्पर हैं तो भला बसन्त क्यों वंचित रहता? सारी प्रकृति दुलहिन सी सज गई। इसी समय चैत्र कृष्णा नवमी के दिन सूर्योदय के समय उत्तराषाढ़ नक्षत्र (अंतिमपाद अभिजित) और ब्रह्म महायोग में श्री वृषभदेव प्रथम तीर्थङ्कर अवतरित-उदित हुए अर्थात् जन्मे। मति, श्रुत और अवधि-तीन ज्ञानों से सहित स्वयंबुद्ध भगवान की कान्ति से मरुदेवी का आंगन प्रकाशित हो उठा। प्रभु जन्मे परन्तु माता को प्रसव वेदना नहीं हुई। समस्त सृष्टि हर्ष मयी थी। जल-थल और आकाश में सर्वत्र हर्षोल्लास छाया था। जिस प्रकार अत्यन्त प्रियजन के परदेश में होने पर उसके शुभ कार्य सूचक चिह्न-नेत्रों का फड़कना, अंगूठे में खुजली चलना, हिचकी आना आदि चिह्न हो जाते हैं उसी प्रकार आदिप्रभु के जन्म का ज्ञापक इन्द्रासन कम्पित हो उठा। घंटा, शङ्ख, केहरिनाद, पटह-ध्वनि होने लगी। चतुर्निकाय के देवों ने अपने-अपने चिह्नों से जन्म काल ज्ञात कर लिया। ये चिह्न किस प्रकार से होते हैं क्या कोई वैज्ञानिक समाधान है? यदि कोई ऐसा प्रश्न करे तो उसका समाधान इस प्रकार है—जिनागम में पुद्गल का महास्कंध जगद्व्यापी माना गया है और

दूसरा सूक्ष्म। आज के भौतिकवादी वैज्ञानिकों ने एक "ईथर" नाम का तत्त्व माना है जिसके माध्यम से हजारों-लाखों मील का शब्द रेडियो यंत्र द्वारा सुनाई पड़ता है। इस विषय में आगम का यह आधार ध्यान देने योग्य है। पुद्गल के शब्द, बंध आदि पर्याय भेदों में सूक्ष्मता के साथ स्थूलता भी बताया है। तत्त्वार्थ राजवार्तिका में श्री अकलंक देव स्वामी ने लिखा है "द्विविधं स्थौल्यमवगन्तव्यंतत्रान्त्यं जगद्व्यापिनि महास्कन्धे" (अ० ५ सूत्र २४) पुद्गल की अंतिम स्थूलता, जगत् भर में व्याप्त महास्कंध में है, इसी के द्वारा जिन जन्म की सूचना तत्क्षण समस्त लोक ऊर्ध्व, मध्य और अधो लोक में ज्ञात हो जाती है। अस्तु समस्त देव देवियाँ इन्द्र इन्द्राणी सहित जिन भगवान का जन्मोत्सव मनाने के लिए सौधर्म की सुधर्मा सभा में सम्मिलित हो जाते हैं। यहीं से इन्द्र राजा अपने वैभव के साथ जुलूस प्रारम्भ करता है।

इन्द्र की सेना......

यद्यपि स्वर्गलोक में सभी देव हैं, सभी के देवगति नाम कर्मोदय है तो भी हीन पुण्य होने से किल्विषक जाति के देवों को इन्द्र की आज्ञानुसार विविध वाहन रूप धारण करना पड़ता है। इसी प्रकार किल्विषक देव भी अशुद्ध पिण्ड नहीं होने पर भी क्षीण पुण्य के कारण शूद्रों के समान अन्य देवों से अलग रहकर गमन करते हैं।

सात प्रकार की सेना—

१. गजरूप धारी देवों की सेना।
२. तुरंग—घोड़ेरूप धारी देव सेना।
३. रथरूप धारी देव सेना।
४. पैदलरूप धारी देव सेना।
५. वृषभरूप धारी देव सेना।
६. गंधर्व—गान-गायक रूपी देव
७. नृत्य कारिणी देव सेना।

समस्त देव देवी गण निषाद स्वर में तीर्थङ्कर भगवान के छियालीस गुण और उनके पुण्य जीवन का मधुर गुणानुवाद एवं जय-जयकार करते हुए आते हैं।

इन्द्र का हाथी—

(ऐरावत)—यह एक लाख योजन का होता है। इसके १०० मुख होते हैं। प्रत्येक मुख में आठ-आठ दाँत होते हैं। प्रत्येक दाँत पर एक-एक सरोवर होता है। एक-एक सरोवर में १२५ कमलिनी (कमल-लता) होती हैं। प्रत्येक कमलिनी पर पच्चीस कमल होते हैं। एक-एक कमल की एक सौ आठ पंखुड़ियाँ होती हैं। प्रत्येक कली पर एक-एक अप्सरा नृत्य करती है। इस प्रकार १ × १०० × ८ × १२५ × २५ × १०८ × १ = २७०००००००० अप्सराएँ नृत्य करती हैं।[1]

इसी पर इन्द्र शची सहित बैठकर अनेकों देवों से समन्वित होकर आता है। इस गज का वर्णन भी अद्भुत रस जगाता है। दैविक चमत्कार का अद्वितीय रूप है यह। विक्रिया शक्ति से देवों में कल्पनातीत योग्यता रहती है। इस प्रकार घम-घमाती, गाती-बजाती, उछलती-कूदती हर्षोत्फुल्ल इन्द्र सेना ने अयोध्या की तीन प्रदक्षिणा दीं। चारों ओर बारह करोड़ बाजों की ध्वनि गूंज उठी। जय-जय नाद से भू-नभ निनादित हो गये। नृत्य, वाद्य एवं गीतों की लय में सारी सृष्टि खो गई। हर्षोन्माद में झूमते नर-नारी कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं स्वयं को ही भूल से गये। कभी पृथ्वी पर देखते तो कभी गगनांगण में निहारते। इन्द्र की सेना जल प्रवाह की भांति तरंगित हो रही थी। आकाश सागर-सा जान पड़ता था। समस्त देवगण अपने-अपने वाहनों पर चढ़-कर आकाश को व्याप्त कर रहे थे मानों स्वर्ग के ६३ पटल धरा पर ही उतर कर आना चाहते हैं। उत्कृष्ट ऋद्धियोंधारी देव सेना धीरे-धीरे अयोध्या में उतर कर श्री नाभिराय के आंगन में आ गई।

तीर्थङ्कर बालक का प्रथम दर्शन

इन्द्राणि का कर्त्तव्य—

बड़भागिनी शचि का पुण्यांकुर बढ़ा। रुन-झुन पैजनियाँ बजाती, थिरकती उल्लास भरी प्रसूति गृह में प्रविष्ट हुई। प्रभु के अलौकिक रूप, शरीर से निकलती मनोहर सुरभि, पसेव रहित, मल-मूत्रादि रहित शरीर की अनुपम छवि को देखते ही रह गयी। आनन्दातिरेक से धीरे-

[1] (आ० पु० पृ० ८३९)

धीरे तीन प्रदक्षिणा कर माता की मंगलमय स्तुति करी। हे माते ! तुम धन्य हो, आपका ही माता बनना सार्थक है। जिस प्रकार आपका बालक संसार में अद्वितीय है उसी प्रकार आप भी अद्वितीय माता हैं। महाभागे आपके गुणों का क्या वर्णन करूँ ? ऋषि-मुनि भी आपकी प्रशंसा करते हैं। आज आप तीन लोक की माँ हो गई है। नाना स्तुति (गुप्तरूप में) कर माता को माया निद्रा में सुला दिया जिस प्रकार आज-कल रोगी को टेबलेट देकर नींद में सुला देते हैं। माँ को पुत्र के वियोग से कष्ट न हो इसके लिए मायामयी एक बालक भी बगल में सुला दिया और उस सद्योजात तीर्थङ्कर बालक को उठा लिया। कर युगल में लिए इन्द्राणी की प्रसन्नता असीम थी। मानों तीनोंलोक का वैभव ही मिल गया हो। वह सोचती "जिस प्रकार सूर्य को जन्म देने का अधिकार पूर्व दिशा को ही है और तीर्थङ्कर को जन्म देने का भाग्य इस माता को है उसी प्रकार प्रथम बालक का सुखद स्पर्श करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जिनमाता और जिन प्रभु की भक्ति-पूजा और सेवा से अवश्य ही मैं एक भव धारण कर सिद्ध पद पाऊँगी।"

भगवान का रक्त दूध के समान सफेद था। ठीक ही है एक बालक-पुत्र पर स्नेह करने वाली माता के स्तनों का रक्त दूध रूप में परिणत हो जाता है तो प्राणी मात्र के प्रति स्नेही, दयालु, परमोपकारी प्रभु का सर्वाङ्ग रक्त दूध रूपी होना ही चाहिए। समचतुरस्र संस्थान और वज्रवृषभ नाराच संहननधारी भगवान की रूप राशि का कौन वर्णन कर सके ? परमानन्द से विभोर शची प्रसूतिगृह से बालक लेकर बाहर निकली। चारों ओर प्रकाश फैल गया मानों निशा तिमिर का संहार कर बाल रवि उदित हुआ हो।

इन्द्र के सहस्रनेत्र—

दीर्घ प्रतीक्षा के बाद अभीष्ट सिद्धि विशेष आनन्दकारी होती है। तेज भूख में भोजन का माधुर्य द्विगुणित हो जाता है। इन्द्र पलक पाँवड़े बिछाये शची देवी के आगमन की प्रतीक्षा कर ही रहा था कि परम पुनीत सौन्दर्य सारभूत बालक को गोद में छिपाये इन्द्राणी उपस्थित हुयी। इन्द्राणी के आगे-आगे देवियाँ छत्र, ध्वजा, कलश, चमर, सुप्रतिष्ठ (ठोना) झारी, दर्पण, ताडका पंखा इन आठ मंगल द्रव्यों को लिए हुए आ रही थीं। अत्यन्त वैभव के साथ अति उमंग से शची

देवी ने मुकुलित बालक को इन्द्र के हाथों में समर्पित किया। इन्द्र जैसे तेजस्वी, प्रतापी की आँखें भी उस सौन्दर्य-पुञ्ज के तेज से चकमका गई। वह लावण्य सुधा के पान से तृप्त ही नहीं हुआ। अन्ततः अपनी विक्रिया ऋद्धि का प्रयोग कर एक हजार नेत्र बनाकर देखा। यद्यपि इससे भी अघाया नहीं। सम्भवतः इससे अधिक उसकी शक्ति ही नहीं होगी। नानाप्रकार से प्रभु का गुणानुवाद किया। अन्त में इन्द्र की आज्ञानुसार "हे देव आप जयवन्त हों, सदा आनन्द स्वरूप रहें," जय-घोष से आकाश को गुंजाते हुए देवगण गगन मार्ग से चल पड़े। ऐरावत हाथी पर आसीन इन्द्र इन्द्राणी भगवान को लिए अतिशय धन्य अपने को मानने लगे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। गंधर्व देवों ने गान प्रारम्भ किया। किन्नर देव गुणगान करने लगे। ऐशान इन्द्र ने सफेद छत्र लगाया था। सानतकुमार और महेन्द्र दोनों क्षीरसागर की तरंगों के समान चमर ढुला रहे थे।

सुमेरुगिरि—

मेरुपर्वत पर्यन्त देवगणों का समूह छाया हुआ था। कितने ही मिथ्यादृष्टि देवों को इन जिनेन्द्र भगवान के जन्मोत्सव के वैभव को देखकर श्रद्धा उत्पन्न हो गई। अर्थात् सम्यग्दृष्टि हो गये। मेरुपर्वत पर्यन्त इन्द्रनील मणि की सीढ़ियाँ बनाई गयी थीं। अनुक्रम से ज्योतिर्मण्डल पार कर इन्द्र ऊपर पहुँचा निन्यानवें हजार योजन ऊँचे गिरिराज पर आये इसकी चूलिका ४० योजन की है और ऋजुविमान (प्रथम स्वर्ग) से मात्र १ बाल प्रमाण ही नीचे है। प्रथम ही भूमि पर भद्रसाल वन सघन छाया से सुशोभित है। इससे ५०० योजन ऊपर नन्दन वन है पुनः सौमनस वन ६२५०० योजन पर है। अनन्तर पाण्डुक वन शिखर पर्यन्त ३६०० योजन पर सुशोभित है। प्रत्येक वन की हर एक दिशा में १-१ अकृत्रिम जिनालय है इस प्रकार सब १६ जिन भवन हैं। यहाँ चारणमुनि सतत विहार करते हैं। विद्याधर लोग निरंतर क्रीड़ा करते हैं। उत्तर कुरु और देवकुरु क्षेत्र को गजदंत रूप शाखाओं से रक्षित रखता है। इसकी गुफाएँ इतनी रमणीक हैं कि स्वर्ग के देव और भवन-वासी असुरकुमार भी अपने-अपने स्वर्ग विमान और भवनों को छोड़कर यहाँ क्रीडार्थ आया करते हैं। पाण्डुकवन में जिनाभिषेक करने की निर्मल स्फटिकमणि की शिलाएँ हैं। इनमें एक पाण्डुक नाम की शिला उत्तर दिशा में अर्द्ध चन्द्राकार सिद्ध शिला के समान है। यह सौ योजन

लम्बी, पचास योजन चौडाई, और आठ योजन ऊँची कही है। इसके ऊपर एक उत्तम और ऊँचा सिंहासन है इसके दोनों ओर दो सिंहासन हैं जिन पर सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के इन्द्र खड़े होकर भगवान का अभिषेक करते हैं। यहाँ देवगण सतत पूजा करते हैं जिससे यह भी पवित्र हो गई है।

श्री आदि प्रभु का जन्माभिषेक—

स्फटिक मणि शिला स्वयं स्वच्छ थी तो भी इन्द्र ने क्षीर सागर के जल से सैंकड़ों बार उसे धोया। समस्त दर्शक देव-देवी गण इसे घेर कर यथा स्थान बैठ गये। दिक्‌पाल जाति के देव समस्त दिशाओं में यथो चित स्थान पर आसीन हुए। देवों की सेना भी गगन से आ उतरी। उस समय सुमेरु की छटा से प्रतीत होता था कि स्वर्ग ही आ गया है। सौधर्म इन्द्र ने भगवान बालक को पूर्वाभिमुख कर मध्यस्थ सिंहासन पर विराजमान किया। चतुर्दिक वादित्र बज रहे थे, जय-जय घोस गूंज रहा था, सुगंधित धूप घनघटा से घिरा था। देवगण चारों ओर से अक्षत, पुष्प और जल सहित अर्घ चढ़ा रहे थे। इन्द्रों ने अतिविशाल मंडप बनाया था। सर्व प्रथम सौधर्म इन्द्र ने भगवान की स्तुति कर अभिषेक का कलश उठाया दूसरा ऐशान इन्द्र ने लिया। देवों की पंक्ति पांचवें क्षीर सागर तक लगी थी जो हाथों हाथ कलश दे रहे थे। ये कलश ८ योजन गहरे, मुख एक योजन और उदर चार योजन प्रमाण था। वे सुवर्ण कलश मणियों से जड़ित थे। पत्रों और पुष्पों से सुसज्जित थे। मालाएँ लटक रहीं थीं। एक साथ अनेक कलशों से अभिषेक करने की इच्छा से उन्होंने अनेकों भुजाएँ बना ली थीं। प्रथम धारासौधर्म इन्द्र ने छोड़ी। इन्द्रों के अनन्तर देव, देवियों ने भी इन्द्राणी सहित श्री प्रभु का अभिषेक किया। (हरिवंश पु० ८ सर्ग) उस समय अभिषेक का जल उछलता हुआ आकाश से उतरती हुयी गंगा के समान दिशा-विदिशाओं में प्रवाहित होने लगा। जलाभिषेक के अनन्तर सुगंधित चूर्ण मिश्रित पवित्र जल से अभिषेक कर सुगंधित चन्दन लेपन किया तथा इन्द्राणी ने देवियों सहित दधि दूर्वा रखकर रत्न-दीपक से आरती उतारी। स्वच्छ वस्त्र से अङ्ग पोंछा।

वस्त्राभूषण पहनाये—

शची देवी ने सम्यक् प्रकार से प्रभु के सुकोमल शरीर को पोंछकर सौधर्म ऐशान स्वर्ग के करण्डों से लाये हुए सुन्दर, अमूल्य वस्त्राभूषण

नाये। भगवान के कान स्वभाव से छिदे रहते हैं। कुण्डल, मुकुट, हार, अङ्गद आदि पहना कर निरंजन प्रभु की आँखों में अंजन अगाया, तिलक लगाया। पुन: दृष्टि दोष निवारणार्थ नीराजना की। देवेन्द्रों ने सुगंधित चूर्ण एक दूसरे पर डालकर महोत्सव की मानों वृद्धि की (होली खेली)।

चिह्न—

भगवान के शरीर पर १००८ लक्षण और ९०० व्यञ्जन होते हैं। इनमें से दाहिने पैर के अंगूठे में जो चिह्न होता है वही लाञ्छन या चिह्न मान लिया जाता है।

पूर्ण सुसज्जित प्रभु को इन्द्र की गोद में बिठाकर उनकी रूपराशि को बारम्बार निरखने लगी इन्द्र ने तो एक हजार नेत्र बनाकर देखा। अपूर्व आनन्द से भरे इन्द्र, इन्द्राणी देव देवियों ने नाना प्रकार से मंगल नाम्यों, वाद्यों, जयनादों से भगवान की स्तुति की, गुनगान किया।

पुन: अयोध्या लौटे...

जिस उत्सव, सम्भ्रम और वैभव से लाये थे उसी प्रकार वादित्र-घोष, जयनाद के साथ ऐरावत हाथी पर आसीन प्रभु को अयोध्या लाये। ध्वजा, पताका, छत्र, चामर, गीत, नृत्य आदि धूम-धाम से वह गजेन्द्र नाभिराज के आंगन में आ उतरा। अयोध्या नगरी स्वयं कुबेर द्वारा निर्मित, ध्वजा, पताकाओं से सज्जित, मणिखचित सुवर्ण शिखरों से मण्डित थी। इन्द्र के वैभव से द्विगुणित छवि हो गई। अमूल्य रत्नों से पूरित नाभिराजा के आंगन में प्रवेश कर इन्द्र ने प्रभु को सिंहासन पर बिठाया। इन्द्राणी ने माता की माया निद्रा समेटी। नाभिराय का रोम-रोम उल्लसित हो गया। माता जैसे निद्रा से उठी कि रोमाञ्चित हो प्रभु को निहारने लगीं। वे दम्पत्ति आनन्दविभोर, विस्मययुक्त कभी इन्द्र इन्द्राणी को देखते कभी प्रभु को और कभी देव सेना को। तदनन्तर पूर्वदिशा के समान शोभित माता और पिता की इन्द्र ने अनेकों वस्त्रा-लंकारों से पूजा की तथा नाना प्रकार से स्तुति की। भगवान को माता-पिता को अर्पण कर शचि सहित इन्द्र ने "ताण्डव नृत्य" किया।

अयोध्या में जन्मोत्सव —

इन्द्र द्वारा मनाये जन्मोत्सव की कथा सुनकर माता-पिता ने आनन्द से इन्द्र की सम्मति पूर्वक अयोध्या निवासी स्वजन-परिजनों के साथ पुत्र जन्मोत्सव मनाया। अयोध्या दुलहिन-सी सजाई गई। नर-नारी मंगल गान, संगीत, वाद्य, नृत्य आदि में संलग्न हो शरीर की सुध-बुध ही भूल गये। कौन देव देवांगनाएँ हैं या मनुज, नारी भेद ही मालूम नहीं होता था। नारियाँ अप्सरा और किन्नरियों को भी अपने नृत्य और गान से परास्त कर रहीं थीं। कहीं मैं पीछे न रह जाऊँ सोच कर ही मानों इन्द्र ने आनन्द नाटक प्रारम्भ किया जिसके रस में उभय लोक (मध्य और ऊर्ध्व) डूब गये। उस समय साढ़े बारह करोड़ जाति के वादित्र बज रहे थे। प्रथम ही इन्द्र ने धर्म, अर्थ और काम का द्योतक गर्भावतरण अभिनय किया, पुनः जन्माभिषेक का महत्व दर्शाया, तदनन्तर महाबल, वज्रजंघ आदि के १० भवों का अभिनय किया। क्षण में परमाणु जैसा सूक्ष्म और क्षण में सर्वव्यापी जैसा विशाल रूप बनाता। इन्द्र के अतिशयकारी नृत्य से भूमि और समुद्र भी शोभित हो गये।

नाम करण —

पोरी-पोरी मटका कर नृत्य कर इन्द्र ने अपने को धन्य माना। माता मरुदेवी और पिता नाभिराय को परमाश्चर्य एवं असीम आनन्द हुआ। इन्द्रों ने माता-पिता की खूब प्रशंसा की। अन्त में "ये स्वामी संसार में सर्वोत्तम हैं, जगत के हितकर्ता हैं। धर्मामृत की वर्षा करेंगे। इसलिए इनका 'वृषभदेव' सार्थक और अन्वर्थक नाम प्रख्यात किया। 'वृष' शब्द का अर्थ धर्म होता है। ये पूज्य धर्म से सुशोभित होंगे इसीलिए इन्द्र ने "वृषभस्वामी" नाम दिया। जन्माभिषेक और नामकरण कर इन्द्र सपरिवार अपने स्वर्ग को चले गये।

प्रभु की बालक्रीड़ा —

भगवान माँ का स्तनपान नहीं करते। इन्द्र भगवान के अंगुष्ठ में अमृत स्थापित कर देता है उसे ही चूसते हैं। इन्द्र की आज्ञा से अनेकों देव समवयस्क बालक बनकर खेलते थे। अनेकों देवियाँ धाय बनकर दूध पिलाना, स्नान कराना, मज्जन कराना, वस्त्रालंकार पहनाना,

खिलौना देना, उँगली पकड़ाना आदि कार्य कराते। भगवान बालक्रीड़ा, घुटरुन चलना, मुकुलाना, ठुन-ठुन चलना आदि क्रियाओं से माता-पिता को तो हर्षित करते ही थे समस्त जनों को भी चन्द्रमा के समान आह्लादित करते थे। स्वर्ग से आया दिव्य भोजन ही प्रभु करते थे। प्रतिदिन इन्द्र नवीन-नवीन कपड़े एवं गहने लाकर पहनाता। उसे अवधिज्ञान नेत्र से प्रतिदिन बढ़ते बालप्रभु की वृद्धि ज्ञात होती थी। इसीलिए उनके माप से निर्मित नित नये वस्त्राभूषण लाता था। बाल-चन्द्रवत प्रभु बढ़ने लगे। भगवान का मनोहर शरीर, मधुरवाणी, सौम्य चितवन, मन्द हास्य, संसार को संतुष्ट करता।

भगवान की विद्या—

वे स्वयं बुद्ध थे। जन्म से ही मति, श्रुत, अवधि तीन ज्ञान के धारी थे। जन्मजात शरीर की भांति ये विद्याएँ भी स्वयमेव वृद्धिगत हो गई। उन्हें किसी स्कूल, युनिवर्सिटी या आश्रम आदि में विद्याध्ययन की आवश्यकता नहीं हुयी। स्वभाव से समस्त विद्याओं के ईश्वर थे। जन्मान्तर के दृढ़ संस्कारों से बहुत-सी स्मृतियाँ अनायास स्वयं जाग्रत हो गईं। तभी तो विदेह क्षेत्र के समान यहाँ भी कर्मभूमि-सृष्टि के कर्ता बने। कला, विज्ञान, शिल्प, लिपि, व्याकरण, साहित्यादि समस्त ५०० महा-विद्याएँ और ७०० क्षुल्लक विद्याओं के अधिष्ठाता हुए। वे सरस्वती के अवतार वाचस्पति थे। अतः जगद्गुरु हो गये। आगमज्ञान होने से वे स्वभाव से शान्त थे। मन्द कषायी थे। ज्ञान के साथ कषाय मन्दता अनिवार्य है। इस प्रकार माता-पिता, कुटुम्ब एवं संसार को तुष्ट करते हुए बढ़ने लगे।

भगवान का जीवनकाल (आयु)—

प्रभु की आयु ८४ लाख पूर्व की थी। कदलीघात से रहित और निर्बाध सुख से सहित थी। वे दीर्घायु के साथ दीर्घदर्शी और दीर्घभुज थे। संसार आपके गुणों का अनुकरण करता था। "काव्य शास्त्र विनोदेन कालो याति धीमताम्" के अनुसार आप छन्द शास्त्र, अलंकार शास्त्र, नष्टोदिष्ट विचार, व्याकरण शास्त्र, विज्ञान शास्त्र आदि के मनन, चिन्तन, पठन, पाठन, में ही आपका सुखद जीवन अंजुलिगत जल की जलबिन्दुवत् व्यतीत होने लगा। कभी गान कला, कभी नृत्य

कला, वाद्यगोष्ठी करते थे। देवगण शुक का रूप बनाकर आते उन्हें सुललित, सुस्पष्ट श्लोक रटाकर शुद्ध उच्चारण कराते। हंस वेश धारी देवों को कमल दण्ड स्वयं अपने कर से खिलाते। इसी प्रकार गज, अश्व, क्रौंच मल्ल आदि के रूप में आये देवगणों के साथ नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करते। वन क्रीड़ा, जल क्रीड़ा आदि देवों के साथ ही करते। वे ही उन्हें हार, मुकुट, पुष्पमाला, गंध, वस्त्रादि लाते थे। अमृत समान आहार-भोजन भी देवों द्वारा ही लाया जाता था। इस प्रकार २० लाख पूर्व बाल्यकाल के पूर्ण कर प्रभु यौवन काल में प्रविष्ट हुए। सुख–वर्ष पल के समान और दुःख–पल वर्ष के समान बीतते हैं। सर्व सुखी ऋषभदेव का समय तेजी से दौड़ रहा था और उनके शरीर का सौन्दर्य आंगोपांगों से होड़ लगाये संसार को चकित कर रहा था।

देवातिशायि प्रभु के उमड़ते यौवन ने पिता के मानस पर एक गम्भीर रेखा खींची। वे चौंक उठे। आनन्द से उछल पड़े। कितना सुहाना रूप, कितना सलौना गात? क्यों न इस कल्पद्रुम के सहारे कल्प-लता चढ़ाऊँ? अर्थात् वृषभ कुमार का विवाह इनके ही अनुकूल सुन्दर गुणवती माननीय उत्तम वंश की कन्या से करना चाहिए। यद्यपि कुमार इस रूपराशि में भी निर्विकार हैं, भोगेषणाएँ नहीं के बराबर हैं, कषाय अत्यन्त मन्द है, तो भी प्रस्ताव रखकर उनकी सम्मति प्राप्त करना चाहिए। क्या वह मेरा प्रस्ताव अस्वीकृत करेगा? नहीं! वह जगन्नाथ होकर भी विनयी और पितृभक्त भी है। भला अपने पिता को कष्ट हो, माँ को पीड़ा हो ऐसा वह करेगा? नहीं, नहीं। चलूँ आज निर्णय कर इस कामना को साकार रूप दे ही दूँ।

विवाह प्रस्ताव—

उषाकालीन रवि रश्मियाँ जिस प्रकार प्रसरित होती हैं उसी प्रकार नाभिराजा का मनोरथ सूर्य नाना सुखद कल्पनाओं के साथ बढ़ रहा था। वे बड़ी उमंग, प्रीति वात्सल्य और भक्ति से प्रभु के पास पहुँचे। वृषभ स्वामी की चेष्टाओं से उनका हृदय दोलायमान हो रहा था। एक ओर विश्व कल्याण, शिवपथ दिखाई पड़ रहा था, दूसरी ओर लोक-व्यवहार का प्रणयन। धैर्य से पहुँच ही गये प्रभु के पास। बोले हे देव! आप जगनायक हैं, मोक्ष मार्ग के पथिक हैं तो भी मैं कुछ प्रार्थना करता हूँ। गृहस्थाश्रम के बिना आत्माश्रम-मोक्ष मार्ग की सिद्धि

असम्भव है। संसार पूर्वक ही मुक्ति है। अस्तु, गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट हो लोक को सन्मार्ग पर आरूढ़ करें। संसार मार्ग चलावें। उभय धर्म की परम्परा के अभिनायक बनें। संसार आपका अनुकरण करने को लालायित है। आप किसी इष्ट कन्या से विवाह कर लोक पद्धति चलायें प्रजासंतति से ही धर्म संतति भी अविच्छिन्न रूप से चलती रहेगी। धीर-वीर नाभिराय के युक्तियुक्त वचनों को ध्यान से सुना और स्मित आनन से "ॐ" शब्द उच्चारण कर अपनी स्वीकृति प्रदान की।

प्रभु का विवाह—

आशाओं का तांता पूरा नहीं होता। जब कभी कोई आशा पूर्ण हो जाती है तो मन बांसों उछलता है आनन्द से, और निराशा हुयी तो पंगु-सा बैठ जाता है निकम्मा-सा। माता मरु देवी के हर्ष का क्या कहना? असीम आनन्द से नाच उठी महाराज नाभिराय के मुख से पुत्र विवाह की वार्ता सुनकर।

महाराज ने इन्द्र की सम्मति से उच्चकुलोत्पन्न कच्छ महाकच्छ की परम सुन्दरी युवती, कलागुण सम्पन्न योग्य यशस्वती और सुनन्दा के साथ वृषभदेव का पाणिग्रहण करना निश्चित किया था। विशाल मण्डप तैयार हुआ। जहाँ स्वयं इन्द्र सपरिवार कार्य करे वहाँ के साज-सज्जा का क्या कहना? सुवर्ण मालाएँ, तोरण, वन्दनवार, मोतियों की झालर, स्फटिक के खम्भे एवं मध्य में रत्न-जड़ित वेदी तैयार की। नर-नारियों के साथ देव-देवांगनाएँ भी परम आनन्द से नृत्य, गीत, वादित्र, नेक-चार में संलग्न थे। जैसे अत्युत्तम वर वैसी ही अनिंद्य सुन्दर कन्याएँ थीं। सर्वाङ्ग सुन्दर वर-वधू की छवि देखते ही बनती थी। स्वयं वृहस्पति ने इन्द्र की आज्ञानुसार विवाह विधि-विधान सम्पन्न किया। कर्मभूमि की रचना यहीं से चलनी है। अतः युक्तियुक्त आगम पद्धति, आर्षविधि से प्रत्येक क्रिया-कलाप कराया गया था। जो वर-वधू को देखता यही कहता "इन्होंने पूर्वभव में अवश्य ही कठोर व्रतोपवास रूप तप किया है।" स्वाभाविक रूपराशि विविध अलंकारों से विशेष-अद्भुत हो उठी थी। सघन बादलों के बीच विद्युत सी नव वधुएँ और मेघाच्छन्न बाल रवि से प्रभु सुशोभित हो रहे थे। अनेकों वाद्य एक साथ बज उठे। मंगल पाठों से मण्डप गूंज उठा। स्वास्तिक-वचनों से चारों ओर गूंज मच गई। हवन धुआं आकाश में जाकर बिखर गया।

युगल देवियों सहित प्रभु साक्षात् कामदेव को भी तिरस्कृत करते हुए शोभने लगे ।

भोगकाल—

काम भी एक नशा है । जो इसकी ओर ताका कि उन्मत्त हो गया । स्वभाव से विरक्त चित्त प्रभु का मन पञ्च कामबाणों से बिंध गया । युगल पत्नियों की रूपराशि में उलझ गया । कमल पराग से मत्त भ्रमर जैसी दशा हो गई । वर्षों गुजर गये । अग्नि तो ईंधन मिलने पर जलती है और नहीं मिलने पर बुझ जाती है, किन्तु मोहाग्नि उभयत्र प्रज्वलित रहती है । फिर भोगोपभोग की असीम सामग्री रहने पर यह क्यों चुप बैठती । समय जाता रहा । आनन्दोत्सव बिखरते गये ।

चक्रवर्ती का जन्म—

महादेवी यशस्वती स्वनाम धन्या थी । उसके सौभाग्य का यश पराग चारों ओर अभिव्याप्त था । एक दिन शयनकक्ष में सोते हुए रात्रि के पिछले प्रहर में चार शुभ स्वप्न देखे । प्रथम—मेरु पर्वत समस्त भू-मण्डल को निगल रहा है । दूसरे—सूर्य, चन्द्र सहित सुमेरु । तीसरे—हंस सहित सरोवर और चौथे—कल्लोलयुक्त सागर देखा । तत्क्षण बन्दीजनों द्वारा मंगलपाठ सुनकर निद्रा भंग हुई । जगाने वाले नगाड़े बज रहे थे । चारों ओर मंगल आशीर्वाद की ध्वनि गूंज रही थी । यशस्वती महादेवी बड़े हर्ष से प्रफुल्ल, आलस्य रहित उठीं । शीघ्र ही पंचपरमेष्ठी का ध्यान कर नित्य क्रिया से निवृत्त हो अपने प्राणनाथ श्री वृषभदेव स्वामी के पास आ अर्द्धसिंहासन पर विराजमान हुई । क्यों न होती नारी का अधिकार नर से कम नहीं, यह बताना था प्रभु को । पुन: विनम्र कर युगल जोड़ रात्रि के स्वप्नों का फल पूछा । स्मितानन प्रभु ने कहा क्रमश: चरम-शरीरी, संसारातीत अवस्था पाने वाला, इक्ष्वाकु कुल का तिलक, सौ पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र होगा । मानों गोद में सलौना चाँद-सा पुत्र आ गया हो; इतना हर्ष हुआ, स्वप्न फल सुनकर रानी को ।

सर्वार्थसिद्धि का अहमिन्द्र च्युत होकर श्री सुनन्दा देवी के गर्भ में आ विराजा । शनैः शनैः गर्भ वृद्धिगत होने लगा । पलक मारते नवमास पूर्ण हो गये । परिमण्डल से मण्डित सूर्य के समान तेजस्वी, प्रतापी पुत्र

अपने पिता के जन्म दिन, लग्न, नक्षत्र, योग और राशि में उत्पन्न हुआ। महोदययुत पुत्र को देखकर दादा-दादी, माता-पिता को परमानन्द हुआ। साधारण पुत्र का आनन्द ही अपरिमित होता है फिर षट्-खण्डाधिपति पुत्र हो तो कहना ही क्या ? जातकर्म के साथ अनेक प्रकार जन्मोत्सव मनाया। बाल चन्द्रवत् बढ़ने लगा। बालक का नाम "भरत" धरा जिसके नाम से आर्यक्षेत्र भारतवर्ष कहलाया। भरत के ९९ भाई और हुए।

प्रथम कामदेव—

द्वितीय महारानी श्री सुनन्दा देवी ने पूर्वदिशा के समान कामदेव पद धारी पुत्र रत्न को जन्म दिया। ये २४ कामदेवों में प्रथम कामदेव हुए। आपका बल, प्रताप और बुद्धि जैसी विलक्षण थी उतना ही अनुपम शरीर सौन्दर्य भी था। मानों सम्पूर्ण रूपराशि का सार ही हो। आजानु बाहु होने से इनका नाम बाहुबलि या भुजबली प्रसिद्ध हुआ।

तीर्थङ्कर के कन्या रत्न—

सामान्यत: तीर्थङ्करों के कन्या की उत्पत्ति नहीं होती। भगवान वृषभदेव के श्री नन्दा (यशस्वती) महारानी से "ब्राह्मी" और श्री सुनन्दा देवी से "सुन्दरी" नामक कन्याएँ हुयीं। दोनों कन्याएँ अद्भुत, अनिंद्य सुन्दरी और विलक्षण बुद्धियुक्त थीं। कन्याओं का होना हुडाव सर्पिणी काल का प्रभाव था।

कला एवं विद्याओं का उपदेश —

सुख की घड़ियाँ किधर जाती हैं पता नहीं चलता। एक दिन वृषभ स्वामी सिंहासन पर सुखासीन थे कि सहसा उनके चित्त में कला और विद्याओं के उपदेश करने की भावना जागृत हुयी। "जहाँ चाह वहाँ राह" के अनुसार उसी समय ब्राह्मी एवं सुन्दरी दोनों किशोरियाँ अपनी लावण्य बिखेरती उपस्थित हुयीं। दोनों ही विनयगुण से मण्डित थीं। उन्हें देखने पर दिक्कन्यका, नागकन्या, लक्ष्मी या सरस्वती का भ्रम होता था। दोनों ही नतमस्तक, विनयपूर्वक पिता के सम्मुख आयीं। भगवान ने बड़े प्रेम से दोनों को गोद में बिठाया, कण्ठ से लगाया एवं कुछ क्षण विनोद किया। तदनन्तर मन्द मुस्कानयुत

बोले, "तुम्हारा शरीर, अवस्था और अनुपम शील यदि विद्या-विभूषित किया जाय तो ही सार्थक है। स्त्री का शिक्षित, विद्यायुक्त होना परमावश्यक है। विद्या, हित-कल्याण एवं समस्त सुख सौभाग्य को देने वाली होती है। महिलाओं को विदुषी होना पुरुष से भी अधिक आवश्यक है। अस्तु, आओ तुम्हें सुख की सार विद्या सिखाऊँ। इस प्रकार कह सुवर्णपट्ट लेकर दाहिने हाथ से लिपि—अ, आ, इ, ई, आदि अक्षर लिखे और बाँये हाथ से इकाई, दहाई आदि अंकों द्वारा संख्या लिखी। "नमः सिद्धं" उच्चारण कर सिद्ध मातिका—वर्णमाला अकार से हकार पर्यन्त, विसर्ग, अनुस्वार, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय एवं योगवाह पर्यन्त अक्षरावली अतिशय बुद्धिमती ब्राह्मी को धारण कराया—सिखाया तथा सुन्दरी ने संख्या ज्ञान किया। गणित शास्त्र में नैपुण्य प्राप्त किया। व्याकरण, छन्द, अलंकार आदि का संशय, विपर्यय रहित अध्ययन कराया। नारी की महत्ता स्थापित की। गुरु के अनुग्रह और ब्रह्मचर्य के तेज से समस्त विद्याएँ स्वयं आजाती हैं फिर स्वयं सरस्वती की अवतार स्वरूपा ये क्यों न विद्या प्रकाश से प्रकाशित होतीं? बड़ी पुत्री ब्राह्मी के नाम से ही ब्राह्मी लिपि प्रख्यात चली आ रही है। चूंकि पुरुष की अपेक्षा कन्याओं का उत्तरदायित्व अधिक होता है इसीलिए प्रभु ने प्रथम कन्याओं को सुशिक्षित कर पुनः पुत्रों को विद्याध्ययन कराया।

ज्येष्ठ पुत्र भरत को नीति-शास्त्र, नृत्य-शास्त्र पढ़ाया, वृषभसेन को गंधर्व-शास्त्र—गाने बजाने की कला-शास्त्र, अनन्त विजय को चित्र-कला विद्या, सूत्रधार—मकान बनाने की कला सिखलायी तथा प्रथम कामदेव श्री बाहुबलि पुत्र को काम शास्त्र, वैद्यक शास्त्र, धनुर्वेद, अश्व गजादि परीक्षा, रत्न परीक्षा आदि शास्त्रों का सम्यक् उपदेश दिया अर्थात् अध्ययन कराया। संसार में जितनी कला, विद्या हो सकती हैं सभी प्रभु ने अपने बच्चों को सिखलाकर नैपुण्य प्राप्त कराया।

प्रभु से आजीविका की प्रार्थना—

अनुकूल दाम्पत्य सौख्य और सन्तति आमोद-प्रमोद में बहुत-सा काल व्यतीत हो गया। काल की गति के साथ जीवन के साधनभूत बिना बोये धान्यादि पदार्थों के रस, औषधि रूप शक्तियाँ, स्वाद आदि नष्ट प्रायः हो गये। फलतः प्रजा भूख-प्यास की पीड़ा के साथ रोगादि व्याधियों से भी आक्रान्त हो गई। व्याकुल चित्त प्रजा महाराज नाभि-

राज की शरण आई और अपना दुःख निवेदन किया। महाराज ने प्रजा को शान्त्वना देते हुए वृषभदेव के समीप जाने की आज्ञा दी। तदनुसार समस्त प्रजा मस्तक नवा, हाथ जोड़ प्रभु से प्रार्थना करने लगी "भगवन्, हम क्षुधा-तृषा से पीड़ित अनेक रोगों के शिकार हो गये हैं क्योंकि अब धान्य उगते नहीं जो थे वे सूख गये उनका रस भी सूख गया। अब हम क्या करें? किस प्रकार जीवन धारण करें? कल्पवृक्ष समूल नष्ट हो ही गये। अब तो आपकी ही शरण है, आप ही कल्पतरु हैं। हमें जीवन-दान दीजिये। अब हमारा क्या कर्त्तव्य है? आपकी आज्ञा प्रमाण है।

जीवनोपाय---

पिता को जिस प्रकार सन्तान प्रिय और प्रतिपाल्य होती है उसी प्रकार राजा को प्रजा भी। भगवान आदीश्वर ने प्रजा की पुकार सुन अपने विशद अवधिज्ञान से निर्णय किया कि "पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह में जिस प्रकार की स्थिति है वही स्थिति आज यहाँ भी होना चाहिए। वही इनके जीवन रक्षण का उपाय होगी।" अस्तु, प्रभु ने स्मरण किया और उसी क्षण वहाँ इन्द्र आ उपस्थित हुआ। आदीनाथ स्वामी (राजा) ने इन्द्र को असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या और वाणिज्य इन षट्कर्मों की प्रवृत्ति आरम्भ करने का आदेश दिया। आज्ञा पाते ही इन्द्र अपने कर्त्तव्य में रत हुआ।

इन्द्र ने देखा यह दिन शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्त, शुभ लग्न और शुभ ग्रहादि से युक्त है अतः प्रथम मंगल क्रिया कर सर्व प्रथम अयोध्या के मध्य भाग में जिन मन्दिर की रचना की। क्योंकि धर्म पुरुषार्थ के आश्रित ही अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ सिद्ध हो सकते हैं। पुनः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, और उत्तर में क्रमशः जिनालयों की रचना की। तदुपरांत ५२ देशों की रचना कर अन्य अनेकों विभाग निर्धारित किये। नगर, शहर, गाँव, गली, मकान, कोट, खाई, बाड़ (कांटेदार वृक्ष), नदी, नाले, सिंचाई आदि की व्यवस्था की। राजा और राज्य निर्धारित किये। दण्ड, कर वसूल, खेती, व्यापार, पठन-पाठन एवं निम्न छः कर्मों का यथायोग्य उचित विभाजन एवं प्रयोग करना प्रभु ने सिखाया। १. शस्त्र धारण कर सेवा करना असि कर्म है। २. लिखकर जीविका करना मसि कर्म है। ३. पृथ्वी को जोतना-बोना, धान्यादि पैदा करना कृषि कर्म है। ४. शास्त्र अर्थात् नृत्य गानादि

कर आजीविका करना विद्या कर्म है। ५. व्यापार करना वाणिज्य कर्म है और ६. कुशलता से जीविका चलाना शिल्प कर्म है। इसी समय भगवान ने तीन वर्ण भी प्रकट किये—जो शस्त्र धारण कर स्व-पर रक्षण में लगे या जीविका चलाने लगे वे 'क्षत्रिय' हुए। जो खेती, व्यापार, पशुपालनादि से जीविका करने वाले थे वे वैश्य और जो क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा सुश्रुषा कर जीवन निर्वाह करने वाले थे वे शूद्र कहे जाने लगे। इस प्रकार १. क्षत्रिय, २. वैश्य और ३. शूद्र ये तीन वर्ण स्थापित या प्रकट किये। इसी प्रकार जाति व्यवस्था निर्धारित कर अपनी-अपनी जाति में विवाहादि सम्बन्ध करने की प्रथा निर्धारित की। प्रजा प्रभु की आज्ञानुसार अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन करती और प्रभु विदेह क्षेत्र की पद्धति के अनुसार अनादि परम्परा के अनुरूप सनातन, पाप-रहित, समीचीन मार्ग निर्देशन करते। इस प्रकार प्रथम युग का प्रारम्भ प्रथम ब्रह्मा श्री आदीश्वर महाराज ने किया। इसका नाम 'कृतयुग' भी है। यह दिन आषाढ़ कृष्णा पडिवा का दिन था। इस प्रकार षट्कर्मों में संलग्न हो प्रजा सुखी सम्पन्न और धर्म कार्य संलग्न हो गई। भगवान द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से प्रजा को अपूर्व आनन्द हुआ, वे भगवान को ही राजा मानने लगे। अब सब सुबुद्ध हो गये और वृषभ स्वामी हमारे नायक हों इसकी इच्छा करने लगे।

प्रभु का राज्याभिषेक—

पिता अपने योग्य पुत्र को राज्याधिपत्य प्रदान करता है। परन्तु भगवान का प्रथम इन्द्र ने सविभूति राज्याभिषेक किया। प्रजा जीवन सामग्री पाकर फूली न समायी। धर्म नीतिपूर्वक अपने कर्त्तव्य में जुट गई तो भी उनका नियंता कोई होना ही चाहिए इसलिए राजा प्रजा और इन्द्र ने विचार-विमर्श कर वृषभ स्वामी को राजपट्टासीन करने का निश्चय किया। स्वर्ग लोक और भूलोक दोनों ही आनन्द से भर गये। नाना प्रकार की सज्जा, अनेकों प्रकार के बाजे, विविध रस भरे नृत्य और मंगलगान होने लगे। अयोध्या तो नवोढ़ा-सी सज गई। चारों ओर आमोद, प्रमोद, हर्ष, उल्लास सजीव हो उठा। अप्सराएँ चमर ढुला रही थीं।

प्रथम ही देवगण गंगा, सिन्धु नदियों के उदय स्थान से तीर्थजल लाए। सुवर्णघट भर कर सजाये। गंगाकुण्ड, सिन्धुकुण्ड, नंदीश्वर द्वीप

की वापिकाओं, क्षीर सागर एवं स्वयंभूरमण समुद्र का जल भी लाया गया। इस स्वच्छ निर्मल पवित्र जल से देवेन्द्र एवं देवों ने राज्याभिषेक किया। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानों प्रभु के पावन शरीर का स्पर्श पाकर ही यह जल पवित्र हो गया है। श्री, ह्री एवं धृति देवियों ने पद्म, महापद्म और तिगिञ्छ सरोवरों से जल लाकर प्रभु का अभिषेक किया। पुन: कुंकुम, कपूर, अगरु, चंदन, आदि सुगंधित पदार्थों से मिले कषाय जल से अभिषेक किया। तदनन्तर पानी में पुष्पों का सार निकाल कर अभिषेक किया। अन्त में रत्नादि द्रव्यों से अभिषेक किया। अंगपोंछन कर दिव्य नवीन वस्त्रालंकार धारण कराये और नीराजना उतारी। दिव्य रत्नखचित सिंहासनारूढ़ होने पर नाभिराज बोले, "अब समस्त मुकुटबद्ध राजाओं के अधिपति ये वृषभकुमार हैं, मैं नहीं।" इस प्रकार कह कर अपना मुकुट प्रभु के सिर पर धारण कराया अर्थात् स्वयं हाथ से बांधा। राज्यलक्ष्मी का पट्ट बन्धन किया। तिलक लगाया। इसके सिवाय माला, कुण्डल, कण्ठहार, करधनी एवं यज्ञोपवीत भी प्रभु ने धारण किये। इस समय वे साक्षात् कल्पवृक्ष जैसे प्रतीत हो रहे थे। जय-जयकार और मंगलवादन से भू-अम्बर गूंज उठा। उसी समय इन्द्र ने हर्षित हो आनन्द नाटक किया।

पिता से राज्य प्राप्त कर सर्व प्रथम प्रजा की सृष्टि की। पुन: आजीविका के नियम बनाये तथा मर्यादा का उल्लंघन न हो इसके लिए नियम निर्धारित किये। स्वयं दोनों हाथों में शस्त्र धारण कर शस्त्र-विद्या सिखाई। यही क्षत्रिय धर्म है सबल से निर्बलों की रक्षा करे। पुन: अपने पैरों से यात्रा कर वाणिज्य विद्या वैश्यों को सिखायी। क्षत्रिय, वैश्यों की नाना प्रकार सेवा करना शूद्रों को सिखाया। सबको अपने-अपने कर्त्तव्य का दत्तचित्त होकर पालन करना चाहिए। कोई भी मर्यादा का अतिक्रमण न करें। विजाति विवाह न करें क्योंकि इससे वर्णसंकर दोष होता है जिससे क्षत्रिय, वैश्यादि भी शूद्र समान गिने जाते हैं इत्यादि मान-मर्यादा का उपदेश दिया। अब पूर्णत: कर्मभूमि प्रारम्भ हुयी।

सर्व प्रथम हरि, अकम्पन, काश्यप और सोमप्रभ क्षत्रियों को बुलाया तथा यथोचित्त आदर-सम्मान कर राज्याभिषेक कर उन्हें महा-मण्डलीक राजा बनाया। १-१ हजार राजा इनके अधीन होने चाहिए

इसलिए ४ हजार छोटे राजा बनाये। सोमप्रभ कुरुवंशाधिपति, हरि, हरिवंश का प्रवर्तक, अकम्पन नाथवंश नायक एवं काश्यम उग्रवंश का नेता घोषित किया। इसी प्रकार अपने पुत्रों को भी यथायोग्य छोटे-बड़े राज प्रदान किये।

इक्ष्वाकु वंश—

भगवान ने प्रजा को इक्षुरस निकालने का उपदेश दिया इसलिए इनका वंश इक्ष्वाकु वंश कहलाया। "इक्षून्" आकथयतीति "इक्ष्वाकुः" अर्थात् जो ईक्षु-ईख खाने का उपदेश दे उसे "इक्ष्वाकुः" कहते हैं। अस्तु प्रभु का वंश इक्ष्वाकु हुआ।

राज्यकाल—

भगवान का सम्पूर्ण शासन काल ६३ लाख पूर्व वर्षों तक रहा। अगाध और असीम पुण्योदय से प्राप्त नाना विभूतियों, सन्ततियों के मध्य से गुजरता काल क्षणमात्र के समान व्यतीत हो गया। प्रभु भोगों की तराई में अपनी तराई को भूल से गये। सुखोपभोग का नशा ऐसा ही विचित्र है। जो महापुरुषों को भी बर्गला देता है।

भगवान को वैराग्य का निमित्त—

पञ्चेन्द्रिय विषय न मिलने पर जितना कष्ट देते हैं उससे भी अधिक मिलने के बाद दुःखदायी हो जाते हैं। इसके प्रभाव से अनुरंजित बुद्धि परमार्थ की ओर से विमुख हो जाती है। वृषभ स्वामी का भी यही हाल था। मेरा राज्यभोग में कितना समय पार हो गया और शेष आयु कितनी रह गयी है, इसमें मुझे क्या करना है? यह सब भूल से गये। परोपकारी धर्म बन्धु इन्द्र को चिन्ता हुयी। "म्याऊँ (बिल्ली) का मुंह कौन पकड़े" वाली दशा थी। किन्तु "बुद्धिर्यस्यबलं तस्य"। इन्द्र ने प्रभु को संसार, भोगों से विरक्त करने की युक्ति सोच निकाली। वह सपरिवार अप्सराओं को लेकर सभा में उपस्थित हुआ। अल्पायु वाली "नीलांजना" का नृत्य प्रारम्भ कराया। कुछ ही क्षणों में सारी सभा विभोर हो मुग्ध हो गई। उसी समय वह अप्सरा भी मरण को प्राप्त हो—विलीन हो गई। इन्द्र ने तत्क्षण उसके अनुरूप अन्य नीलांजना निर्मित कर दी। इस परिवर्तन को कोई भी दर्शक समझ न सका परन्तु

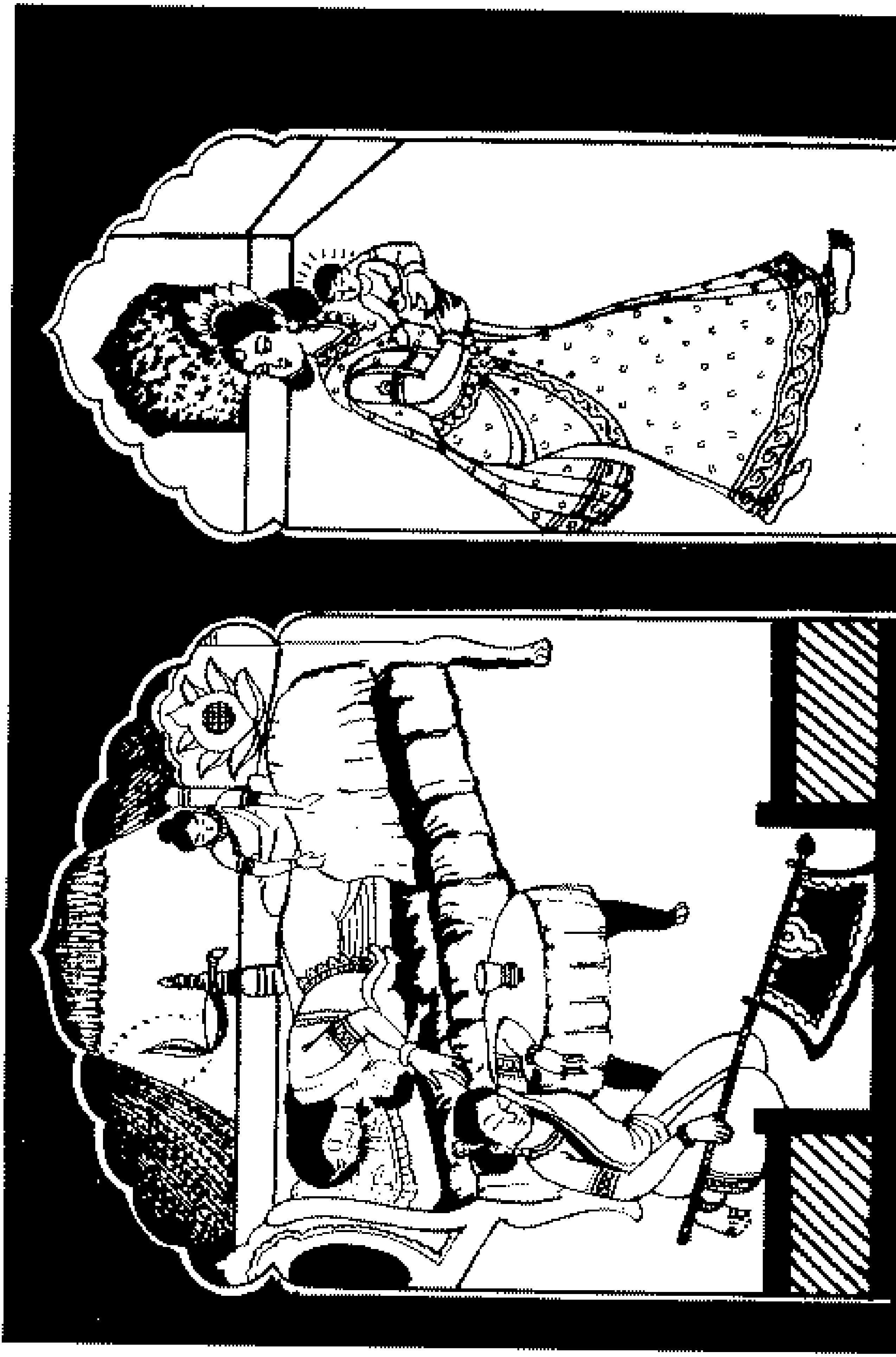

निद्रा में सोयी माता के पास से मायामयी बालक को सुलाकर भगवान ऋषभनाथ को ले जाते हुए—शचि इन्द्राणी

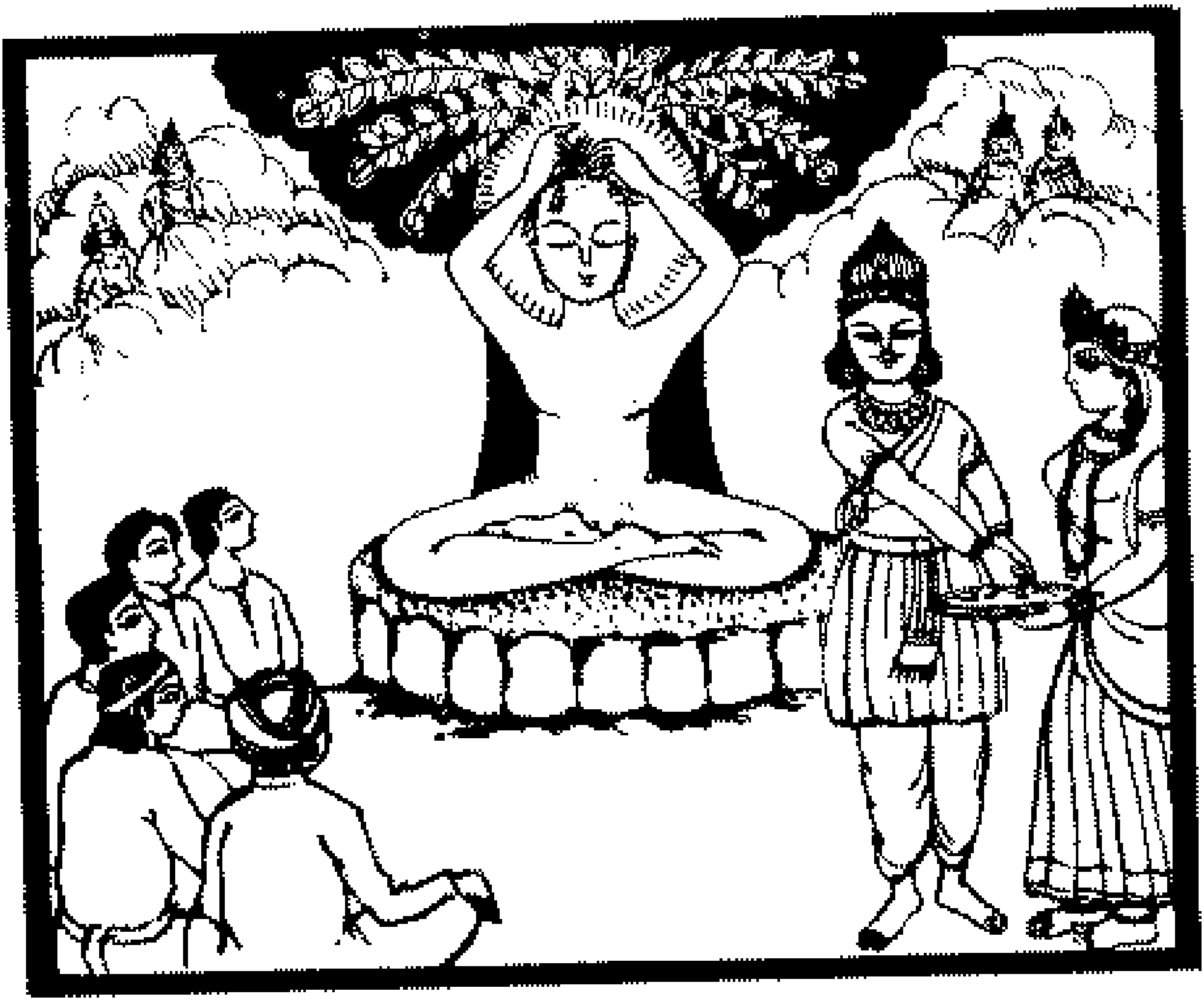

भगवान के निश्चित केशों को इन्द्र इन्द्राणी के हाथ में रखे रत्नकरण्ड में रखते हुए।

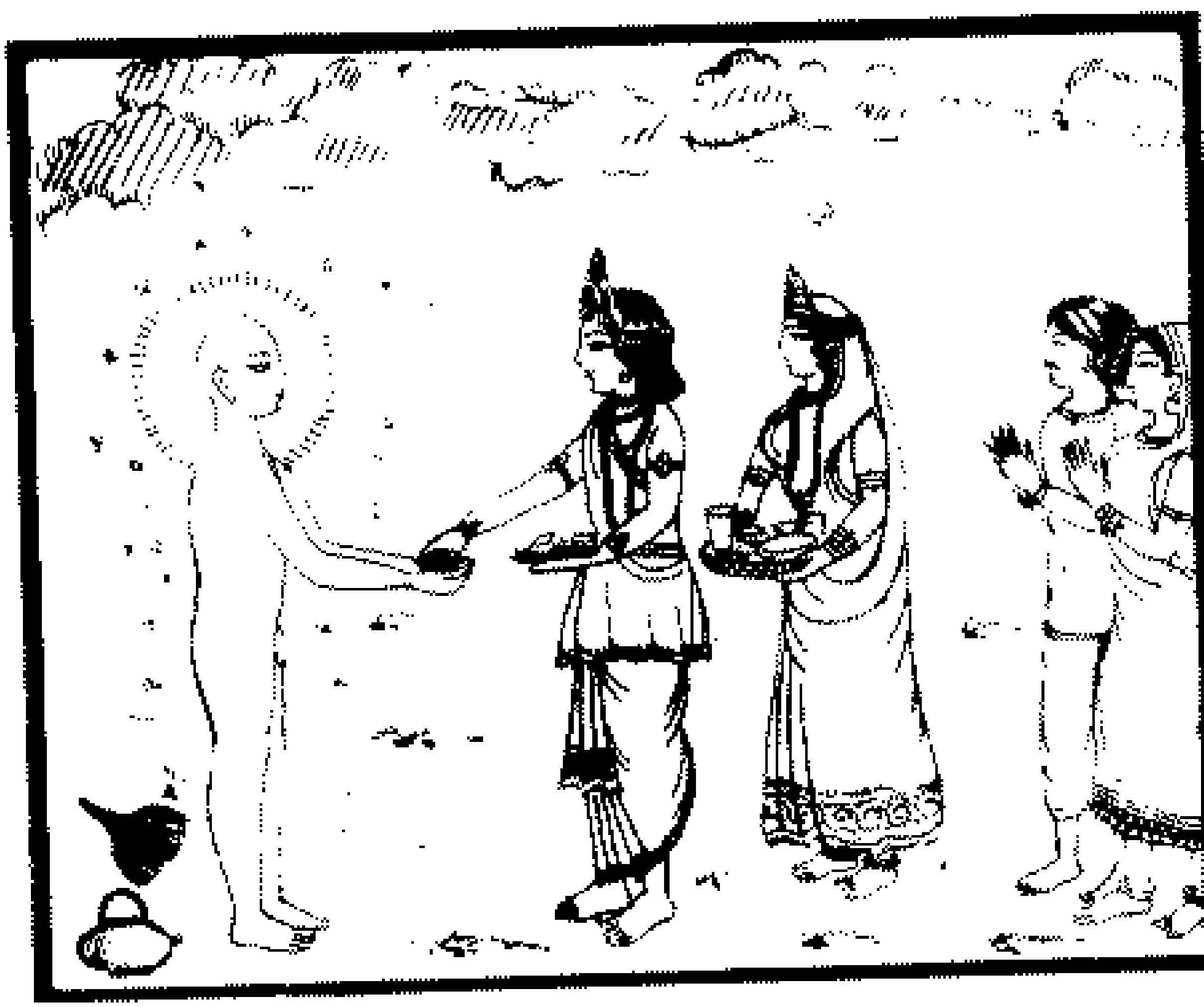

1008 भगवान श्री आदिनाथ को आहार देते हुए राजा रानी

भगवान की दिव्य दृष्टि क्यों चूकती ? उसी समय उनके सामने संसार की असारता क्षणभंगुरता झलक उठी । "वे विचारने लगे, यह जीवन, धन, यौवन, विभूति, सब प्रात:कालीन ओस बिन्दुओं के समान हैं, बिजली के सदृश नाशवान और मेघों से चंचल हैं । एक मात्र आत्मा ही शास्वत है । मुझे अविनाशी पद प्राप्त करना चाहिए । मैं मूढवत् भोगों में आपाद मस्तक डूबकर अपने स्वरूप को भूल गया । अब क्षणभर भी नहीं रह सकता । मुझे शीघ्र ही आत्म सिद्धि करना चाहिए ।

बाल ब्रह्मचारी देवों (लौकांतिक) की प्रशंसा—

निश्चल वैराग्य धारा होते ही, इसकी सूचना स्वर्ग लोक में फल गयी । वायरलैस जो है वहाँ । पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग में रहने वाले देवगण आ पहुँचे और नमस्कार कर प्रभु के वैराग्य की पुष्टि करने लगे, "हे प्रभो आप तीर्थङ्कर हैं, धर्म तीर्थ के प्रवर्तक हैं, आपके द्वारा इस कर्म-भूमि युग में मोक्ष मार्ग खुलेगा । अत: यह उत्तमोत्तम विचार सराहनीय है आप शीघ्र दीक्षा धारण कर मोक्षपथ के नेता बनें ।" इस प्रकार संबोधन कर अपने स्थान पर चले गये । ये देव निष्क्रमण—दीक्षा कल्याणक के समय ही आते हैं ।

प्रभु द्वारा दीक्षा ग्रहण—

अलौकिक नाट्यशाला है यह संसार । एक ओर वृषभ स्वामी का दीक्षा-कल्याण मना रहा है इन्द्र और दूसरी ओर भरत का राज्याभिषेक की तैयारियाँ हो रही हैं । एक ओर इन्द्राणियाँ देवांगनाएँ, अप्सराएँ, मंगलगान, नृत्य, मण्डप मंडन, चौक पूरन आदि क्रियाओं में संलग्न हैं दूसरी ओर महारानी यशस्वती एवं सुनन्दा सपरिवार पुत्रों के राज्याभिषेक के लिए तैयारियाँ कर रही हैं । सर्वत्र आनन्द, उत्साह और वाद्य ध्वनि गूंजने लगी । प्रथम ही प्रभु को स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान कर इन्द्र ने क्षीर सागर के जल से दीक्षाभिषेक किया । नवीन-नवीन वस्त्रालंकार धारण कराये । पुन: सौभाग्यवती स्त्रियों ने नाना सुगन्धित द्रव्यों से भरत और बाहुबलि का मंगलाभिषेक किया । विविध बहुमूल्य वस्त्रालंकार पहनाये । तदनन्तर वृषभ स्वामी ने समस्त प्रजावर्ग के सम्मुख अपना राजमुकुट भरत पुत्र के सिर बांधा अर्थात् भरत को सम्पूर्ण लोक का राज्य प्रदान किया तथा बाहुबलि को युवराज बनाया । अन्य अर्ककीर्ति, वृषभसेन आदि पुत्रों को भी यथायोग्य राज्य

प्रदान कर समस्त राज्य को सुव्यवस्थित कर प्रजा को संतुष्ट किया । इस प्रकार वृषभ स्वामी समस्त राज्यलक्ष्मी से विरक्त हो वन जाने को उद्यत हुए । सर्वप्रथम समस्त कुटुम्ब परिवार परिजन-पुरजन से आज्ञा मांगी । उसी समय इन्द्र "सुदर्शना" नामक पालकी ले आया । नाना वेष-भूषा से सुसज्जित प्रभु शिविका में विराजमान हुए । इन्द्र पल्यंक उठाने को तैयार ही था कि मनुष्यों ने विरोध किया । वे बोले, भगवान हमारे हैं, हमारी पर्याय में हैं इसलिए हम पालकी प्रथम उठायेंगे । विषम समस्या थी इन्द्र के सामने । बुद्धि सम्पन्न जनों का निर्णय था "जो प्रभु के समान संयम धारण कर सके वही प्रथम पालकी उठाये" बेचारा इन्द्र क्या करे ? समस्त इन्द्र का ऐश्वर्य देकर भी मानव पर्याय नहीं पा सका एक क्षण को परास्त होना पड़ा ।

सर्व प्रथम भूमिगोचरी राजाओं ने शिविका उठायी, सात पैंड लेकर गये, पुनः विद्याधर राजा ७ पैंड ले गये, तदन्तर देव, इन्द्र आदि आकाश मार्ग से ले चले । कुछ ही क्षणों में सिद्धार्थ वन में जा पहुँचे । उनके पीछे पूरा रनवास उमड़ा चला आ रहा था । नाभिराज, मरुदेवी माता, यशस्वती, सुनन्दा, भरतेश्वर, बाहुबलि, मन्त्री, पुरोहित सभी चले आ रहे थे प्रभु का निष्क्रमण महोत्सव देखने के लिए । हर्ष-विषाद की लहरों में उतरते जन-समूह ने भी उस वन में प्रवेश किया ।

इन्द्र द्वारा स्थापित चन्द्रकान्त मणि की शिला पर प्रभु विराजमान हुए । "नमः सिद्धेभ्य" कह कर वस्त्रालंकारों का त्याग किया । अन्तरंग विषय कषायों का सर्वथा त्याग कर—२४ प्रकार के बाह्याभ्यंतर परिग्रह रहित हुए । स्वयं पञ्चमुष्ठी लोंच किया । उस समय इन्द्राणी द्वारा रत्न चूर्ण से मण्डित शिला पर प्रभु शोभायमान नहीं हुए अपितु प्रभु की कान्ति से वह शुभ्र शिला कंचनवर्णी हो रम्य हो गई । केशों को इन्द्र ने रत्न पिटारे में संजोया । भगवान ने पाँच महाव्रत ५ समितियाँ, पञ्चेन्द्रिय निरोध, षडावश्यक एवं ७ शेष गुण इस प्रकार २८ मूलगुण धारण कर जैनेश्वरी दीक्षा धारण की और अखण्ड मौनव्रत ले तप में लीन हो गये । यह चैत्र कृष्णा नवमी का दिन था । समय सायंकाल, उत्तराषाढ़ नक्षत्र, शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न की वेला थी ।

इन्द्र ने केशों को रत्न पिटारी में रख सफेद वस्त्र से बांधा और क्षीर सागर में जाकर क्षेपण किया । ठीक ही है महापुरुषों की संगति में

निकृष्ट वस्तु भी उत्कृष्ट हो जाती है। पूज्य पुरुषों के आश्रय से नीच भी पूज्य हो जाता है।

देखादेखी—

नाना प्रकार पूजा, भक्ति कर इन्द्रादि देव सपरिवार अपने-अपने स्थान को लौट गये। अनेकों नर-नारी भी चले गये। तो भी चार हजार राजा वहीं रह गये। उन्होंने सोचा ये भगवान हमारे नेता हैं, पालक हैं इसलिए इन्हें जो इष्ट है वही हमें भी मानना चाहिए।" दीक्षा, तप, साधना से अनभिज्ञ वे भी प्रभु के समान नग्न हो, बाह्य वेष धारण कर उन्हीं के समान ध्यान मुद्रा धर खड़े हो गये। उनका एक ही अभिप्राय था कि सच्चे सेवक स्वामी के अनुसार चलते हैं अतः हमें भी यही करना योग्य है।

भरत द्वारा पिता ऋषभदेव की पूजा—

इन्द्र द्वारा विविध प्रकार स्तोत्र और अनेक द्रव्यों से पूज्य प्रभु प्रातःकालीन सूर्य के समान शोभित हो रहे थे। उनके नग्न शरीर से स्वाभाविक कान्ति बिखर उठी। उस समय राजा भरत ने भी परमगुरु पिताजी की अनेक प्रकार स्तुति कर बड़ी भक्ति से सुगंधित जल की धारा, चन्दन, अक्षत, पुष्प, दीप, धूप तथा पके हुए मनोहर सुस्वादु रसीले आम, जामुन, कैथ, पनस, बिजौरा, केला, अनार, सुपारियों के सुन्दर गुच्छे और नारियलों से भगवान के चरण कमलों की पूजा की। आनन्दाश्रुवर्षण करते हुए भरत ने श्रद्धा, भक्ति और विनय से साष्टांग बार-बार नमस्कार किया। हर्ष-विषाद से भरा भरत सपरिवार पुनः पुनः प्रभु का वन्दन कर अयोध्या लौटे तथा अपने पिता के अनुरूप ही नीति से प्रजा पालन करते हुए श्रावक धर्म में तत्पर हुए।

तपोलीन भगवान—

आत्मा का स्वभाव ज्ञान है। ज्ञान का चरम विकास ही मोक्ष है। ज्ञान की पूर्ण अभिव्यक्ति रूप पर्याय का नाम ही केवलज्ञान है। केवलज्ञान के पूर्व समस्त ज्ञान की पर्यायें अपने में अधूरी हैं यह दशा "छद्मस्थ" कहलाती है। स्वयं अपने में अपूर्ण अशेष पदार्थों का यथार्थ उपदेष्टा नहीं हो सकता। इसीलिए तीर्थङ्कर तपकाल में अखण्ड मौन से ही

साधना करते हैं। महामौनी, महाध्यानी, धीर-वीर प्रभु ने दीक्षा धारण कर ६ महीनों का उपवास लिया और सकल चित्तवृत्तियों, विकल्प जालों को छोड़, मन इन्द्रियों का निरोध कर एकाग्र ध्यान में कायोत्सर्ग से खड़े हो गये। दोनों पैरों के बीच चार अंगुल का अंतराल था। दोनों भुजायें नीचे लटक रहीं थीं। नासाग्र दृष्टि, सर्व अंग निश्चल थे। मन्द-मन्द श्वास की सुगंध से मंडराते मधुकर ऐसे जान पड़ रहे थे, मानों अशुभ लेश्याएँ निराश्रय हो बाहर भटक रही हों। उत्तरोत्तर शुभ भाव बढ़ रहे थे, अशुभ कट रहे थे। चारों ज्ञानों का दीप जल रहा था, दोष रूपी चोर यत्र-तत्र भागने की चेष्टा में लग रहे थे। प्रति समय अनन्त गुणी कर्मों की निर्जरा हो रही थी। आत्मस्थ प्रभु स्वसंवेदन-जन्य आनन्दामृत का पान करने लगे। जटायें बढ़ गईं किन्तु कर्म जटाएँ छिन्न-भिन्न हो रही थीं। एक ही स्थान पर अचल अकम्प अडोल खड़े थे भगवान।

सह दीक्षित राजागण-----

दो-तीन महीनों में ही कच्छादि चार हजार राजाओं का धैर्य छूट गया। भगवान का मार्ग इतना कठिन होगा, यह उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। वे क्या जानते थे कि हमें खाने-पीने को भी नहीं देंगे। भगवान तो परम दयालु थे, पर अब जाने क्या सोचकर ये मौन लिए खड़े हैं। हम तो भूख-प्यास से मरे जा रहे हैं। क्या करें, लौट कर जायेंगे तो राजा भरत दण्ड देंगे, रहते हैं तो भूख-प्यास से मरे जा रहे हैं। "इधर गिरें खाई उधर गिरें कुआ।" बुरी दशा है और कुछ नहीं तो न सही पर भोजन मात्र ही करा देते तो भी हम रह सकते थे पर ये तो न खाते हैं न खिलाने का ही संकेत करते हैं। ये तो समर्थ हैं तो क्या हम असमर्थ इनके साथ मरे ? ये क्यों हमें ताप में लगाये हैं ? चलो अब हम भूख-प्यास नहीं सह सकते ? अरे वन में बहुत से फल-फूल हैं इन्हें खाकर जीवन निर्वाह क्यों न करें ? नाना तर्कों में झूमने वाले कितने ही असक्त भगवान के चरणों से लिपट गये, कितने ही प्रदक्षिणा करने लगे, कितने ही जाने की आज्ञा मांगने लगे, किन्तु उत्तर कौन देता ? हताश हो वन में बन्दरों की भाँति फल-भरित वृक्षों पर जा चढ़े और फल तोड़कर खाने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु अचानक जिन-शासन प्रिय वनदेव प्रकट हो उन्हें ताड़ना देते हुए बोला, हे भव्यों ! यह परम अरहंत लिंग सर्वोत्कृष्ट है, पूज्य और पवित्र है इस वेष में आप

फल-फूल स्वयं लेकर नहीं खा सकते। अप्रासुक जल भी नहीं पी सकते। देवता के वचन सुनकर वे डर गये और शरीर रक्षार्थ भिखारी की भाँति छाल, पत्ते, चिथड़े आदि जो मिला उसे ही लपेट कर वेष परिवर्तन किया, तथा फल-फूल, कन्द खाने लगे सरोवरों का जल पीने लगे।

जटायें बढ़ालीं। डण्डे रखने लगे। कान फाड़ लिए। रुद्र मालाएँ पहन लीं। तिलक-छापे लगा लिए। स्वेच्छानुसार परिव्राजक, सन्यासी, एक दण्डी, दो दण्डी आदि पाखण्डी साधु हो गये। ये फल, पुष्प और जल से भगवान के चरण कमलों की पूजा करने लगे। भगवान का पोता मरीची कुमार जो भरत का पुत्र था वह भी सन्यासी हो गया उसने योग, नैयायिक और सांख्य शास्त्रों का प्रचार किया। पाखण्डियों का नेता बना। फलतः ३६३ प्रकार के मिथ्यात्व यहीं से प्रारम्भ हुए।

भगवान का तपोतिशय—

भगवान ने पाँच महाव्रत—१—अहिंसा महाव्रत, २—सत्य महाव्रत, ३—अचौर्य महाव्रत, ४—ब्रह्मचर्य महाव्रत और ५—अपरिग्रह महाव्रत धारण किये। पाँच समितियाँ—१—ईर्या, २—भाषा, ३—एषणा, ४—आदान निक्षेपण और ५—उत्सर्ग का पालन करते थे। पञ्चेन्द्रिय और मन को सर्वथा जीत लिया था। तीन गुप्ति ही उनका किला था। षडावश्यक पूर्वक ही उनका परिणमन था। अनशनादि ६ बाह्य और प्रायश्चित आदि ६ अन्तरङ्ग तपों से देदीप्यमान थे। सात शेष गुणों के पालन में सावधान थे। इस प्रकार कठोर तप करते छः माह पूर्ण हो गये। भगवान निर्भीक सिंहवत्, मेरुवत् अचल थे, उनके आत्मतेज से सिंहादि क्रूर प्राणी भी शान्त हो गये थे। ६ माह उपवास कर भी प्रभु की शरीर कान्ति ज्यों की त्यों थी, उनका नामकर्म गजब का था। अथवा कोई दिव्य अतिशय था। शिरीष कुसुम से भी अधिक कोमल भगवान इस समय तप करने में वज्र से भी अधिक कठोर हो गये थे। हिरण, सिंह, व्याघ्र, गायें, चमरी गायें, नेवला, सर्प आदि जाति विरोधी मृगगण वैर त्याग निवास करते थे। पलक मारते ही भगवान का छः महीने का प्रतिमा योग समाप्त हुआ।

विनमि और नमी की याचना—

भोगी और योगी का युद्ध चला। योगीराज वृषभ स्वामी मेरुवत् अचल ध्यानारूढ़ थे। अपने में ही उनका संसार सिमट चुका था। उन्हें

संसार और नश्वर भोगों के प्रति न रुचि थी न आशा और न आकांक्षा। उनका तो एक मात्र उद्देश्य स्व-दर्शन, आत्म दर्शन था। परन्तु भोगी क्या जाने इस रहस्य को? विचित्र घटना है। राजा महाकच्छ के पुत्र नमि और विनमि अर्थात् भगवान के साले एक दिन ध्यानी प्रभु के पास आये और चरणों में लिपट कर प्रार्थना करने लगे। "हे प्रभो! हम पर प्रसन्न हूजिये। हमारा दुःख निवारण करिये। आपने योग साधना लेने के पूर्व अपना राज्य पुत्र-पौत्रों को बांटा पर हमें एकदम भुला दिया। हमको भी कुछ दीजिये। हम आपके चरणों में पड़ते हैं।" इस प्रकार कह कर भगवान को जल, पत्र, पुष्प आदि चढ़ाकर विविध प्रकार से पूजा करने लगे। हमें कुछ न कुछ देना ही होगा, इस प्रकार बार-बार आग्रह करने लगे। उन्हें क्या मालूम था वीतरागी प्रभु के पास तिल तुष मात्र भी कुछ नहीं है। अज्ञानवश, विषयासक्त विरक्त प्रभु को रक्त बनाने की व्यर्थ चेष्टा कर उपसर्ग करने लगे। प्रभु के असीम पुण्योदय से धरणेन्द्र का आसन कम्पित हुआ। उसने अवधिज्ञान से नमि-विनमि के दुराग्रह को जानकर भगवान का उपसर्ग दूर करने के लिए पाताल लोक से आया।

सर्व प्रथम नागेन्द्र ने अनेकों दिव्य द्रव्यों से मुनिराज प्रभु की अष्ट-विध अर्चना कर स्तुति की। तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया। पुनः अपना रूप छिपा कर बड़ी युक्ति से उन दोनों कुमारों से कहा, "आप कौन हैं? इस शान्त, निरापद वन में शस्त्रबद्ध मृत्यु के समान भयंकर आप लोगों का रहना उचित नहीं। ये भगवान परम वीतरागी हैं इन्हें राज्य से, भोगों से अब कोई प्रयोजन नहीं है। तुम भोगों में आसक्त विवेक शून्य, बुद्धि विहीन इनसे व्यर्थ ही विषयों की चाह कर रहे हो? यदि आप को राज्य सम्पत्ति ही चाहिए तो राजा भरत के पास जाओ। उनसे मांगो वे दे सकते हैं। यहां व्यर्थ अरण्य रोदन करने से क्या लाभ? सच है याचक की विवेक शक्ति नष्ट हो जाती है। उचित अनुचित का उसे भान नहीं रहता? "मूर्खता छोड़ो" सुनते ही दोनों की कोपाग्नि भड़क उठी। वे बोले—

हां, हां हम तो मूर्ख हैं, पर आप क्यों दूसरों के बीच में बोलते हैं? आपको किसने बुलाया न्याय करने और उपदेश देने को। आप बुद्धिमान हैं तो चुपचाप अपने घर जाइये। हमारे योग्य अयोग्य को हम जानते हैं आपको इससे क्या प्रयोजन? क्या बाल सफेद होने से बड़े हो गये

आप ? वृद्धावस्था में बुद्धि छोड़कर भाग जाती है। बिना पूछे ताछे दूसरों के कार्य में दखल डालना क्या मूर्खता नहीं ? आपका तत्त्वज्ञान, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र आप ही के पास रहने दीजिये। भगवान हमारे गुरु हैं गुरु की प्रसन्नता उभय लोक में सुख देने वाली है। हम अपने गुरु को प्रसन्न कर रहे हैं। महासागर को छोड़कर साधारण तालाब के पास क्यों जायें ? कल्पवृक्ष का त्याग कर बबूल के पास क्या जाना ? चिन्तामणि को छोड़कर कांच के टुकड़े को लेना क्या बुद्धिमानी है ? आप व्यर्थ कष्ट न करें। अपना रास्ता देखें। हम स्वयं भगवान से निपटलेंगे। आप पधारिये।

धरणेन्द्र इनके भोले और मीठे बोलों को सुनकर तथा भगवान के प्रति उनकी अटूट भक्ति और अप्रतिम श्रद्धा को देखकर मन ही मन आनन्दित हो रहा था इनके स्वाभिमान पर वह न्योछावर था। प्रसन्न होकर वह बोला, कुमार हो ! आप तरुण होकर भी बुद्धि कौशल से वृद्ध समान हो। तुम्हारे धीर, वीर, निष्कपट आचरणों से मैं प्रसन्न हूँ, मैं नागकुमार जाति के देवों का इन्द्र हूँ। मेरा नाम धरणेन्द्र है। मैं भगवान ऋषभदेव का सेवक हूँ। "प्रभु ने मुझे आज्ञा दी है कि ये कुमार बड़े भक्त हैं इसलिए इन्हें इच्छानुसार भोगोपभोग की सामग्री दे दो।" अतः आपको इच्छित राज्य देने आया हूँ आप मेरे साथ आइये। विश्वास दिलाकर कि मैं भगवान की आज्ञानुसार ही दे रहा हूँ। उन्हें लेकर विमान द्वारा आकाश मार्ग से शीघ्र ही विजयार्द्ध पर्वत पर पहुँच कर विद्याधर लोक को देखा। यह पर्वत मूलभाग में बड़े योजन से ५० योजन चौड़ा, २५ योजन ऊँचा, और ६। (सवा छ) योजन पृथ्वी में गड़ा था। १०० योजन लम्बा था। धरणेन्द्र ने वहाँ के अकृत्रिम जिनालय, कोट, खाई, वन, नदी आदि को दिखलाया, किन्नर-किन्नरी समान विद्याधर-विद्याधरियों से इनका परिचय कराया। उनसे कहा, देखो ये दोनों राजकुमार हैं, भगवान वृषभदेव स्वामी की आज्ञा से आये हैं ये आपके राजा हैं। आप इनकी आज्ञानुसार प्रवृत्ति करें। "भगवान की आज्ञा है" यह सुनकर सभी ने इनको राजा स्वीकार किया। विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी में ५० नगरियाँ हैं इनका अधिपति 'नमि' को बनाया और उत्तर की ६० नगरियों का राजा 'विनमि' को बनाया। स्वयं धरणेन्द्र ने इनका पट्टाभिषेक किया दो विद्याएँ दीं और विद्याओं की सिद्धि का क्रम बतलाया। समस्त विद्याधरों ने भी इन्हें

अपना स्वामी स्वीकार कर उत्सव मनाया। सच्ची भक्ति का फल अवश्य मिलता है। जिन भक्ति सदा सुखदायी है।

आहार-चर्या मार्ग—

षट्मास का योग समाप्त हुआ। भगवान ने विचार किया कि यद्यपि मेरा शरीर बिना आहार के भी चल सकता है, किन्तु आगे अन्य हीन संहनन वाले साधुओं को चर्या मार्ग प्रवर्तन करना आवश्यक है। "अस्तु, वे निस्पृह मुनिराज आहार के लिए चार हाथ प्रमाण आगे देखते हुए मध्यमगति से निकले। अनभिज्ञ प्रजा-जन प्रभु को नगर की ओर आते देखकर नाना प्रकार की भेंट लिए अगवानी को आने लगे। कोई रत्न, हीरा, मोती लाया तो कोई हाथी, घोड़े, बैल आदि। कोई वस्त्राभूषण लाये तो कोई कन्या रत्न लिए मुनिराज को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगे। कितने रथ, पालकी भेंट करते। मुनिराज प्रतिदिन चर्या को आते और बिना आहार किये वन में लौट जाते। कारण कि उस समय किसी को पडगाहन विधि, नवधाभक्ति करने का ज्ञान ही नहीं था। साधु मार्ग से सब अनभिज्ञ थे। श्रावक धर्म भी नहीं जानते थे। सबको महती चिन्ता हो रही थी। क्या करें? नाना प्रकार के भोज्य पदार्थ लाकर सामने रखते। प्रार्थना करते, प्रभो हमारे अपराध क्षमा करो, हम पर प्रसन्न होओ। जो चाहो ग्रहण करो। किन्तु उत्तर कौन देता। प्रभु तो मौन थे। विधि के अभाव में आहार भी नहीं ले सकते थे। कितने ही पानक, इलायची, लवंग लाते और रो-रो कर प्रभु से खाने का आग्रह करते। सब हैरान थे क्या करें क्या नहीं। स्वयं राजा भरत भी इसमें सफल न हो सके। इस प्रकार जगत को चकित करने वाली गुप्त चर्या से विहार करते हुए ७ महीने ८ दिन और बीत गये परन्तु किसी को भी आहार दान विधि ज्ञात न होने से भगवान का आहार नहीं हुआ।

दानतीर्थ प्रवर्तन—

युवराज श्रेयान् आज अतिशय प्रसन्न थे। प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त हो आनन्द से सभा में जा पहुँचे। महाराज सोमप्रभ भाई का तेज देखकर हर्ष से बोले, कुमार आज क्या बात है, तुम्हारी कान्ति अनोखी दिखलाई पड़ रही है। विस्मय और आनन्दकारी घटना क्या

है ? बड़े भाई को विनयपूर्वक कुमार श्रेयान् कहने लगे "प्रभो, आज रात्रि के पिछले प्रहर में मैंने अद्भुत स्वप्न देखें हैं, तभी से मेरा हृदय अपूर्व उल्लास से उछल रहा है न जाने कौन अलौकिक फल होगा।" अच्छा, तो सुनाओ भाई वे स्वप्न ? सुनिये, प्रथम विशाल सुमेरु पर्वत देखा है, दूसरा लटकते हुए आभूषणों से युक्त शाखा वाला कल्पवृक्ष देखा, तीसरे स्वप्न में केशरी-सिंह देखा, चौथे किनारे को उखाड़ता बैल, पाँचवें चन्द्रमा और सूर्य, छठवें समुद्र, सातवें अष्ट मंगल द्रव्य धारण की हुई व्यंतर देवों की मूर्तियाँ देखी हैं। इनका क्या फल होगा यह आप बतलाइये। स्वप्न सुनते ही राजा ने पुरोहित जी से फल पूछा।

पुरोहित निमित्त लगाकर बोला, हे कुरुजांगल देशस्थ गजपुर नरेश ! महामेरु के देखने से मेरुवत उन्नत और मेरु पर जिसका अभिषेक हुआ हो ऐसा कोई महापुरुष अवश्य ही आपके घर आज पधारेगा। उनके द्वारा आपको महान् पुण्योदय प्राप्त होगा। आज हस्तिनागपुर नगर जग प्रसिद्ध होगा। बड़ी भारी सम्पत्ति लोगों को प्राप्त होगी, हम धन्य होंगे इसमें सन्देह नहीं। अन्य स्वप्न भी उस महापुरुष के सर्वोत्तम गुणों के सूचक हैं। हे राजन् ! उस नरोत्तम का स्वागत श्रेयान् द्वारा ही होगा। यह तत्त्व वेत्ता और विनयशील है, अवश्य ही आज कोई महती परम्परा प्रारम्भ होगी। अवश्य कोई नर रत्न आने वाला है। इस प्रकार दोनों भाई भगवान के विषय की कथा कर रहे थे। दोनों ही अति प्रसन्न थे।

इधर नगरी में कोलाहल होने लगा। लोग इधर-उधर दौड़ने लगे। दर्शकों की भीड़ लग गई। कोई कह रहा था अरे हमें नमस्कार तो करने दो, कोई बोला देखो सनातन प्रभो राजपाट छोड़कर वन में चले गये थे अब हम पर अनुग्रह कर लौट आये हैं, हाँ, ये अब हमारा पालन-पोषण करेंगे, ये तीनों लोकों के स्वामी हैं, हाँ, हाँ सब परिग्रह के त्यागी हैं, अरे तन पर तार नहीं तो भी तेज फूटा पड़ रहा है, कितना धैर्य है निर्भय अकेले ही विहार करते हैं, किसी की परवाह नहीं, थकावट भी तो नहीं है, खाना-पीना छोड़ने पर भी शरीर शिथिल नहीं है, अरे ऐसे पुनीत स्वामी का दर्शन तो करने दो, हाँ नमस्कार करना चाहिए। पूजा करनी चाहिए। सामने आना चाहिए। इस प्रकार भगवान का गुनगान करते स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध चारों ओर से आने लगे। इस कोलाहल में भी वे संयमी जिनमुनि, संवेग और वैराग्य का चिन्तवन

कर रहे थे। जगत और काय से विनश्वर स्वभाव का विचार करने में लगे थे। मैत्री, प्रमोद, माध्यस्थ और करुणा भावनाओं में निमग्न थे। यथायोग्य 'ईर्यापथ' शुद्धि से प्रत्येक घर के सामने से विहार करते हुए राज मन्दिर में प्रविष्ट हुए। दूर ही से देखकर द्वारपाल दौड़ा और अपने भाई श्रेयान् के साथ बैठे राजा सोमप्रभ को प्रभु के आगमन की सूचना दी। दोनों भाई परम भक्ति, विनय से रणवास, सेनापति और मन्त्री के साथ आंगन के बाहर आये और भगवान को अति विनय से नमस्कार कर रत्नचूर्ण मिश्रित जल का अर्घ दिया। प्रदक्षिणा दी। दोनों भाई खड़े हो प्रभु से कुछ कहना ही चाहते थे कि उसी क्षण श्रेयान् कुमार को जातिस्मरण हो गया। पूर्व भव में महारानी श्रीमती की पर्याय में अपने पति वज्रजंघ के साथ जो दो चारण मुनियों को आहार दान दिया था वह दृश्य प्रत्यक्ष उनके सामने आ गया। श्रद्धा, भक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा, शक्ति और त्याग इन सात दाता के गुणों से युक्त श्रेयान् करबद्ध शिरोनत हो बोल उठा "हे स्वामिन् अत्र अत्र, तिष्ठ तिष्ठ, नमोस्तु प्रभो ! मन, वचन, काय, शुद्धि पूर्वक आहार जल शुद्ध है। शास्त्रोक्त विधि से तीन प्रदक्षिणा देकर पड़गाहन किया, उच्च स्थान दिया, पाद प्रक्षालन कर पूजा की और मन, वचन, काय एवं आहार शुद्धि पूर्वक प्रभो के कर पात्र में सर्व प्रथम प्रासुक इक्षुरस का आहार दिया। इसी प्रकार राजा सोमप्रभ ने भी अपनी पत्नी लक्ष्मीमती महारानी के साथ नवधाभक्ति पूर्वक इक्षुरस का आहार दिया।

पञ्चाश्चर्य—

भगवान का १३ महीने ६ दिन बाद निरंतराय प्रथम आहार सम्पन्न हुआ। तत्क्षण देवों द्वारा आकाश से १—रत्न वर्षा होने लगी। २—अति सुगंधित पुष्पों की वर्षा प्रारम्भ हुयी, ३—देव दुन्दुभी बजने लगी ४—मन्द-मन्द प्यारा-प्यारा सुगंधित पवन बहने लगा और ५—अहो, धन्य यह दान, धन्य यह पात्र और धन्य यह दाता, जय हो, जय हो नाद आकाश में गूंज उठा। इस प्रकार पञ्चाश्चर्य होने लगा।

दोनों भाई फूले नहीं समाये। उन्होंने अथाह पुण्य संचय किया। अन्य अनेक लोगों ने इस दान की अनुमोदना कर महान् पुण्यार्जन किया। कौतूहल से भरे दोनों भाइयों ने बार-बार भगवान को नमस्कार किया। भगवान भी आहार कर वन की ओर प्रस्थान कर गये। पीछे-

पीछे दोनों भाई कुछ दूर तक चले पुन: एक स्थान पर खड़े हो भगवान के चरण चिह्न देखते रहे। उस भूमि को बार-बार नमन किया। नगर में चारों ओर श्रेयान् महाराज का यशोगान होने लगा। तीर्थङ्कर को प्रथम पारणा कराने वाला उसी भव में मोक्ष जाता है अथवा तीसरे में। चारों ओर से आये जन-समूह उन दोनों भाइयों को घेर कर नाना स्तुति करने लगे।

अक्षय तृतीया---

भगवान आदिनाथ के प्रथम पारणा का दिन था वैशाख शुक्ला तीज। इस दिन आहार देने के बाद श्रेयांस राजा ने समस्त श्रावकजनों को आहार दान देने का उपदेश दिया, विधि-विधान समझाया। उस समय देवों ने भी बड़े आश्चर्य से इस दान का महत्व प्रकट करते हुए श्रेयांस महाराज की भक्ति से अभिषेक पूर्वक पूजा की। देवों द्वारा प्रकाशित महात्म्य को सुनते ही महाराज भरत भी दौड़े आये और बड़े आदर से श्रेयांस कुमार से इस रहस्य को जानने का कारण पूछा। हे महान् दानपते! मौनी भगवान के इस अभिप्राय को आपने कैसे जान लिया? आज आप हमारे वृषभ स्वामी के समान ही पूज्य हो। दान-तीर्थ के प्रवर्तक सबसे बड़े पुण्यवान आप ही हो। सत्य कहो, यह रहस्य किस प्रकार विदित हुआ? श्रेयांस बोले, हे राजन्! श्री वृषभ स्वामी के दर्शन मात्र से मेरा चित्त अतिशय निर्मल हो गया, मुझे बड़ी भारी प्रसन्नता हुयी, मेरा समस्त कालुष्य धुल गया, इस भाव शुद्धि से उसी क्षण मुझे जातिस्मरण--(पूर्वभव का स्मरण) हो गया। जिससे भगवान का अभिप्राय जान लिया। महाराज भरत यह सुनकर परमानन्दित हुए। वस्तुत: यह दिन अक्षय दानतीर्थ का प्रवर्तक है। इसीलिए आज तक "अक्षय तृतीया" त्यौहार चला आ रहा है।

आहार न मिलने का कारण---

प्रत्येक कार्य अपने हेतु पूर्वक रहता है। बिना निमित्त के कार्योत्पत्ति नहीं होती। भगवान मुनि चीरचर्या को निकले और ७ माह ८ दिन तक घूमते रहे इसका बाह्य कारण तो लोक का आहार दान विधि नहीं जानना था किन्तु अन्तरङ्ग कारण क्या हो सकता है? यह प्रश्न स्वाभाविक है। धर्म तीर्थ प्रवर्त्तक साक्षात् तीर्थङ्कर होने वाले इस

प्रकार भिक्षुक बने घर-घर घूमते रहे, अवश्य इसका कोई विशेष कारण होना चाहिए। जैनागम में कर्म सिद्धान्त अपना विशेष महत्व रखता है। इसका कार्य निष्पक्ष, समदर्शी और बिना किसी घूस बाजी के चलता है। भगवान ने राज्यावस्था में प्रजा की पुकार सुन, उनके दु:ख निवारण के लिए उपदेश दिया था कि "तुम्हारा धान्यादि खाने वाले बैल, गाय, भैंस, बछड़ा आदि के मुख में मछीका लगा दो। बस उनका अन्न-पान निरोध कराने से ही तीव्र भोगान्तराय कर्म बंध गया जिसने मौका पाते ही अपना दाव चुक लिया। तीर्थङ्कर को भी कर्मफल ने नहीं छोड़ा तो अन्य की क्या बात? अत: प्रति समय परहित के साथ स्वहित को दृष्टि में रखकर कार्य करना परम विवेक पूर्ण है।

केवलज्ञानोत्पत्ति—

मोक्ष मार्ग प्रकाशक उग्रोग्र घोर तपस्वी महा-मुनिराज भगवान कर्मों की होली जलाने में सन्नद्ध हुए। अपने पंच महाव्रतों को शुद्ध करने के लिए सतत् उनकी पच्चीस भावनाओं का चिन्तवन करते थे। १२ प्रकार का तप, १० प्रकार धर्म और चार प्रकार आराधनाओं में सदा सावधान थे। तीनों गुप्तियां उनके आस्रव को रोकने वाली दृढ़ अर्गला थीं। वे भगवान जिनकल्पी थे। जिसके व्रत, संयम, नियम, यम ध्यान में किसी प्रकार का दोष न लगे, अर्थात् प्रतिक्रमण, छेदोपस्थापना जिनके न हो, जो मात्र सामायिक चारित्र में ही लीन रहें, उन्हें जिन-कल्पी कहते हैं। वे स्वभाव से ही पंचाचारों का पालन करते थे। वर्षा योग अभ्रावकाश योग, वृक्षमूलादि-वास योग, बेला, तेला, पंच, पंचदश, मासोपवास, आदि द्वारा वृहद् सिंह निष्क्रीडित, कनकावली, रत्नावली आदि व्रतों द्वारा काय क्लेश करते हुए आत्म शक्ति का पोषण करने लगे। एक मात्र सिद्ध पर्याय रूप होना ही जिनका लक्ष्य था, वे भगवान १ हजार वर्ष तक घोर तप: साधना में संलग्न रहे। तपश्चरण रूपी अग्नि में कर्म रूपी ईंधन धांय-धांय जल रहा था। प्रति समय असंख्यात गुण श्रेणी निर्जरा हो रही थी। आत्मा रूपी सुवर्ण कुन्दन पर्याय में आ रहा था। इसी का ध्यान था उन्हें। वे एकान्त, निर्जन प्रदेश में ध्यानस्थ हो कई दिन बिताते थे। आत्म-स्वभाव में तल्लीन प्रभु निश्चय स्वाध्याय करते थे। शान्ति शीत उष्ण, निरापद—पशु-पक्षी रहित, निर्जन्तुक स्थानों का सेवन करते थे। परमोपेक्षा संयम को शिर का कवच बनाया, तथा अपहृत संयम को शरीर का कवच बनाया। परिणामों की विशुद्धि

कम न हो इसके लिए ज्ञान रूपी मंत्री, परम विशुद्ध परिणाम सेनापति के स्थान पर नियुक्त किये। गुण रूपी योद्धाओं की सेना बनायी। मोह राजा की सेना राग-द्वेषादि पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। बस, गुण श्रेणी निर्जरा के बल से कर्म रूपी सेना छिन्न-भिन्न हो गयी, खण्ड-खण्ड हो गई। अशुभ प्रकृतियाँ शुभ रूप परिणत हो गईं। अशुभ कर्मों की स्थिति अनुभाग शक्ति मृत प्राय: हो गई। इस प्रकार कर्मोद्यान को दलन-मलन करते प्रभु अप्रमत्त सातिशय गुणस्थान में जा पहुँचे। मोक्ष महल की सीढ़ी समान क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए। अन्तर्मुहूर्त में अध: प्रवृत्त करण कर अपूर्व करण, अनिवृत्ति करण गुणस्थान में जा पहुँचे। यहाँ पृथक्त्व वितर्क नामा प्रथम शुक्लध्यान धारण कर मोह-राजा का कवच तोड़ डाला, चारित्र मोह की धज्जी उड़ायी और चारित्र पताका फहराते बढ़ने लगे। स्थिति काण्डक, अनुभाग कांड घात, गुण श्रेणी निर्जरा और गुण संक्रमण से बलवान शत्रुओं को निर्बल कर अनुक्रम से सूक्ष्म साम्पराय नामा दसवें गुणस्थान में पहुँच एकत्व वितर्क शुक्लध्यान का आलम्बन लिया। यहाँ सूक्ष्म लोभ को भी समाप्त कर बारहवें क्षीण-कषाय में कदम जा धरा। यहाँ मोहनीय के निश्शेष हो जाने से स्नातक संज्ञा प्राप्त की। पुन: एक साथ ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अत्यन्त उद्धत अन्तराय कर्म को जड़ से जलाकर भस्म कर दिया। इस प्रकार एकत्व वितर्क शुक्ल ध्यानानल से चारों घातिया कर्मों की इति श्री कर भगवान ने ज्ञान की सर्वोत्कृष्ट पर्याय—केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। वे अनन्त चतुष्टय—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य के धनी तथा क्षायिक नव लब्धियों के भोक्ता बन गये। इस प्रकार वृषभदेव फाल्गुन कृष्णा एकादशी उत्तराषाढ़ नक्षत्र में केवली भगवान हुए। समस्त दिग्मंडल प्रकाशित हो उठा। ज्ञान स्वभाव का पूर्ण प्रकट हो जाना ही केवलज्ञान है।

केवलज्ञान कल्याण महोत्सव –

ऋषभदेव वस्तुत: त्रैलोक्याधिपति हुए। राजा का कर्तव्य प्रजा को सुखी करना है। भगवान द्वारा भी तीनों लोक सुखी होना चाहिए। अस्तु, प्रभु केवली हुये। विद्युत् संचार हुआ। सौधर्मेन्द्र के विमान में रिंग बज उठी। कल्प वासियों के घंटा नाद, ज्योतिषियों के सिंहनाद, व्यंतरों के नगाड़े की ध्वनि और भवन वासियों के यहाँ सबको जाग्रत करने वाला शङ्खनाद गूंज उठा। सभी अपनी-अपनी सेना विभूति और

माला पूजा सामग्री लेकर समवसरण में जाने को उद्यत हुए। इन्द्र की आज्ञानुसार समस्त स्वर्ग लोक के दिव्य अष्टद्रव्य संजोकर भक्ति, श्रद्धा, विनय से चल पड़े। देवों का मूल शरीर तो अपने विमान में ही रहता है। अन्यत्र उनकी विक्रिया ही जाती है। प्रथम इन्द्र ने सिंहासन छोड़कर वहीं से नमस्कार किया। पुनः पृथ्वी पर आने को चल पड़ा।

आकाश मण्डल जय-जयकार से गूंज उठा। दिव्य पुष्प वृष्टि होने लगी। दिशाएँ एवं आकाश निर्मल हो गया। सर्व ऋतुओं के फल-पुष्प एक साथ फलित हो गए मानों प्रभु चरणों की अर्चना की स्पर्धा कर रहे हों। आकाश मण्डल में चारों ओर सुर विमान उतरते-चढ़ते नजर आ रहे थे। आने वाले देव, इन्द्र बड़ी भक्ति से भगवान को नमस्कार कर रहे थे। नभ से सुगंधित गंध वृष्टि, गंधोदक वृष्टि हो रही थी, मानों समवसरण की भूमि का शोधन ही करती हो। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने भगवान की धर्म सभा—समवसरण की अनूठी रचना की। जिसमें बैठकर प्रथम इन्द्र ने और फिर चक्रवर्ती आदि नरेशों ने अपने-अपने परिवार सहित तीन लोक के नाथ आदिब्रह्मा श्री वृषभदेव की महापूजा की।

समवसरण मण्डप—

केवलज्ञान होने के पूर्व भगवान मौन से तप करते रहे। अब समस्त जीवों के कल्याण हेतु उपदेष्टा हो गये। उपदेश भवन होना आवश्यक है भगवान विराजमान हों आगत भव्यात्मा, सम्यग्दृष्टि प्राणियों को धर्मामृत पिला सकें। अतः कुबेर ने इन्द्र की आज्ञानुसार नीलमणि रत्न की भूमि बनाकर उस पर १२ सभाओं से युक्त अधर-आकाश में समवसरण की रचना की। यह १२ योजन लम्बा और इतना ही चौड़ा था अर्थात् ४८ कोस लम्बा-चौड़ा था। गोलाकार था। पृथ्वी से ५०० योजन ऊपर था। ऊपर जाने को २०,००० सीढ़ियाँ रत्नजड़ित सुवर्ण की थीं। बाहरी भाग में सर्व प्रथम रत्नों की धूलि से बनाया धूलिसाल कोट था। यह नाना मणियों के चूर्ण से व्याप्त था। कहीं लाल, कहीं पीला, सफेद, नीला, काला, केसरिया, हरा आदि रूपों में समकला मयूर, तोता, कोकिला आदि का भ्रम पैदा करता था। कहीं इन्द्र धनुष और कहीं चन्द्रिका की शोभा बिखेरता था। इस धूलिसाल के भीतर कुछ दूर जाने पर गलियों के बीचों बीच चारों दिशाओं में

चार मानस्थम्भ शोभित हो रहे थे। इन मानस्थम्भों को घेर कर तीन कोट थे। प्रत्येक कोट में चारों दिशाओं में चार-चार दरवाजे थे। तीनों कोटों के भीतर एक पीठिका थी, वह अरहंत देव के अभिषेक के जल से पवित्र थी। उस पर चढ़ने को सुवर्ण की १६ सीढ़ियाँ बनी थीं। इन पीठिकाओं पर मानस्थम्भ थे। जिनके दर्शन मात्र से मिथ्यादृष्टियों का अभिमान शीघ्र नष्ट हो जाता था। ये सुवर्ण के थे। इन्हें इन्द्रध्वज भी कहते हैं इनके नजदीक निर्मल जल से भरी बावड़ियाँ थीं। उनमें लाल, सफेद, नीले कमल खिले थे। ये १६ थीं। प्रत्येक दिशा में चार-चार थीं। इनके किनारों पर पादप्रक्षालन को दो-दो कुण्ड बने थे। इससे कुछ दूर जाने पर जाने का मार्ग छोड़कर जल से परिपूर्ण खाई थी। इसमें मीनें किलोल कर रहीं थी। इसके बाद लता वन था जिसमें षड्ऋतुओं के पुष्प खिल रहे थे। इससे कुछ दूर आगे जाकर एक सुवर्ण कोट था जो समवसरण का प्रथम कोट कहलाता है। रंग-बिरंगे लाल, मोती, मणियों से जड़ित था और इन्द्र धनुष की शोभा धारण करता था। वर्षाकाल का दृश्य उपस्थित करने वाले इस कोट के चारों दिशाओं में १-१ विशाल द्वार था। प्रत्येक द्वार पर देवगण, गान, नृत्यादि कर रहे थे एवं १०८ मंगल द्रव्य भी शोभित थे। मणियों के १०० तोरण बंधे थे। शंख, पद्मादि नवनिधियाँ रक्खी थीं। प्रत्येक द्वार के पास तीन मंजिल की २-२ नाट्यशालाएँ थीं। इनकी शोभा अद्भुत थी। प्रत्येक नाट्यशाला में दो-दो धूप घट थे। इससे कुछ आगे मार्ग रूप-बगल में चार वन थे। प्रथम अशोक वृक्षों से, दूसरा सप्तपर्ण वृक्षों से, तीसरा चम्पक वृक्षों से और चौथा आम के वृक्षों से भरे थे। यत्र-तत्र तालाब, बावड़ियाँ आदि बनी थीं। नाना प्रकार के पुष्पों से सज्जित थे। प्रत्येक वन में अपने नामानुसार अर्थात् अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र नाम के बहुत ऊँचे चार चैत्य वृक्ष थे। उनके मूल भाग में जिन प्रतिमा विराजमान थी। ये पृथ्वीकाय अर्थात् मणि निर्मित थे। इनको घेरकर वन वेदिका थी। इस पर ध्वजाएँ फहरा रही थीं। चैत्य वृक्ष, वेदी कोट, खाई, सिद्धार्थ वृक्ष, स्तूप, तोरणयुत मान स्थंम्भ और ध्वजाओं के खम्भ इन सबकी ऊँचाई तीर्थङ्करों के शरीर की ऊँचाई से बारह गुनी होती है। चौड़ाई और मोटाई भी इतनी ही होती है। ध्वजाओं में, माला, वस्त्र, मयूर, कमल, हंस, गरुड़, सिंह, बैल, हाथी और चक्र के चिह्न होते हैं। प्रत्येक दिशा में एक-एक चिह्न की १०८ ध्वजाएँ अर्थात् सब १०८० थीं।

इस ध्वजाकोट के बाद पुनः एक चाँदी का कोट था जिसमें १० प्रकार के कल्प वृक्ष सुशोभित थे। इनके मध्य भाग में सिद्धार्थ वृक्ष थे जिनका आकार-प्रकार चैत्य वृक्षों के समान था। गोपुर के अन्त में दोनों पार्श्वों में अनेक समुन्नत मकान बने थे। मध्य में रागपद्ममणि से बने नौ स्तूप थे। इन पर अरहंत और सिद्धों की प्रतिमाएँ विराजमान थीं। यह कोट भी प्रथम कोट के समान था।

प्रथम कोट के द्वारों पर व्यंतर देव, दूसरे कोट के द्वारों पर भवनवासी देव, तीसरे कोट के द्वारों पर कल्पवासी देव हाथों में गदा, तलवार आदि लेकर खड़े थे। तीसरा कोट स्फटिक मणि का था। इसके आगे १२ गलियां थीं। १६ दिवालें थीं। इनमें से चार दिवालें छोड़कर १२ सभाएँ बन जाती हैं। मध्य में एक योजन लम्बा-चौड़ा श्रीमण्डप था। इसके अन्दर बैठे सुर, असुर, मनुष्य, तिर्यंचों को एक दूसरे से कोई बाधा नहीं होती थी यह महात्म्य था। इसकी प्रथम पीठिका वैडूर्यमणि की बनी थी। इनके मस्तक पर धर्मचक्र लिए यक्षों की मूर्तियां बनी थीं। एक हजार आरे प्रत्येक धर्मचक्र थे। इस पीठिका के ऊपर दूसरा कञ्चन का पीठ था। इस पर सुन्दर महाध्वजाएँ फहरा रहीं थीं। इसके ऊपर तीसरा पीठ समस्त रत्नों से निर्मित था। इसकी तीन कटनी थीं। इस ही पीठ पर मध्य में चार धनुष ऊँचे मणिमय सिंहासन पर चार अंगुल अधर अन्तरिक्ष में प्रभु देवाधिदेव आदीश्वर विराजमान थे।

गंधकुटी—

तीसरे पीठ पर विस्तार और सौन्दर्ययुक्त गंधकुटी स्वर्ग विमानों को भी तिरस्कृत कर रही थी। कुबेर जिसका कारीगर है उसकी शोभा का क्या वर्णन हो? यह ६०० धनुष लम्बी और ६०० धनुष ही चौड़ी थी एवं कुछ अधिक ऊँची थी। प्रभु के शरीर की सुगंधी और नाना पुष्पों की सुगंध तथा उत्तम धूप की गंध से प्रपूरित इसका "गंधकुटी" नाम यथार्थ था। इसके मध्य में सुवर्ण सिंहासन की कान्ति चारों ओर व्याप्त थी। इस पर अन्तरिक्ष में विराजे भगवान की देवेन्द्र, नरेन्द्र सभी पूजा, भक्ति, स्तुति, वन्दना, नमस्कार कर रहे थे।

८ प्रातिहार्य—

१—बारह योजन की भूमि में देवों द्वारा दिव्य पुष्प वृष्टि हो रही थी, २—भगवान के समीप ही अशोक वृक्ष था, ३—सिर पर सफेद

तीन छत्र त्रैलोक्याधिपतित्व का द्योतित कर रहे थे। ४—भगवान के दोनों ओर ३२–३२ यक्ष खड़े ६४ चमर ढुलाते थे। ५—आकाश में देव दुंदभि बजा रहे थे। ६—भगवान की शरीर कान्ति से बना प्रभामण्डल सूर्य की कान्ति को तिरस्कृत करता था। इसमें दर्शक अपने-अपने ७ भवों को देखते थे। ७—मेघ गर्जना के समान भगवान की दिव्य-ध्वनि हो रही थी तथा ८—आकाश में देवों द्वारा जयघोष हो रहा था। ये ही आठ प्रातिहार्य कहे जाते हैं।

दिव्य-ध्वनि—

सर्वज्ञ–तीर्थङ्कर प्रभु की वाणी को "दिव्य-ध्वनि" कहते हैं। यह निरक्षरात्मक एवं एक रूप होती है, किन्तु वर्षाजल जिस प्रकार एक होकर भी भूमि, वृक्ष, सीपादि के संयोग से अनेक रूप हो जाता है, उसी प्रकार भगवान की वाणी भी श्रोताओं के कर्णों में पहुँच कर उन-उन की भाषा के रूप में परिणमित हो जाती है। गणधर के रहने पर ही भगवान की दिव्यवाणी प्रकट होती है।

समवसरण में इन्द्र इन्द्राणी—

सुरों से परिवेष्टित इन्द्र और अप्सराओं एवं देवांगनाओं से परिमण्डित इन्द्राणी ने दूर ही से भगवान को देखते ही बड़ी भक्ति से नमस्कार किया। दोनों ने शुद्ध भावों से जल, चन्दन, अखण्ड दिव्य अक्षत, पारिजात, मोगरादि अनेक सुगंधित पुष्पमालाएँ, घृतादि से निर्मित नाना प्रकार के नैवेद्य, रत्नमय ज्योति युत दीप, सुगंधित दशांग धूप और आम्र, जाम्बू, कदली, पिस्ता, बादाम आदि फलों से श्री जिन-देव की सातिशय पूजा-अर्चना की। इन्द्राणी ने अनेक भाँति के रत्न चूर्णों से भगवान के सामने उत्तम अति मनोहर मण्डल पूरा था। सुवर्ण थाल में दीपकों से वेष्टित अमृत पिण्ड से भगवान की पूजा की। यद्यपि भगवान वीतराग हैं, उन्हें इस पूजा के करने और नहीं करने से कोई प्रयोजन नहीं, परन्तु तो भी भक्त अपनी श्रद्धा भक्ति और परिणाम शुद्धि के अनुसार सातिशय पुण्यार्जन करता ही है, यह महान आश्चर्य है।

भवनवासियों के ४०, व्यन्तरों के ३२, कल्पवासियों के २४, ज्योतिषियों के चन्द्र-सूर्य २, मनुष्यों का १ चक्रवर्ती और तिर्यञ्चों का १ सिंह इस प्रकार ये १०० इन्द्र हैं। सभी ने सपरिवार भगवान की

नाना प्रकार से स्तुति, वन्दना कर अपने-अपने कर्म बन्धन को शिथिल बनाया। अनन्तर अपने-अपने कोठे में यथायोग्य स्थान पर बैठ गये।

बारह सभाएँ—

श्री प्रभु स्वभाव से पूर्वाभिमुख विराजते हैं, परन्तु उनका दिव्य मुख चारों ओर स्पष्ट दिखाई देता है। इससे प्रत्येक दिशा में बैठे भव्यगण समझते हैं कि भगवान हमारी ओर मुख कर विराजे हैं। समवसरण की रचना गोलाकार होती है। सभाएँ भी गोलाकार रचित होती हैं।

प्रदक्षिणा रूप से १. प्रथम कोठे में गणधर आदि मुनिराज विराजते हैं। २. दूसरे में कल्पवासिनी देवियाँ, ३. तीसरे में आर्यिकाएँ एवं श्राविकाएँ, ४. चौथे में ज्योतिष्क देवांगनाएँ, ५. पाँचवें कोठे में व्यन्तरी देवांगनाएँ, ६. छठवें में भवनवासिनी देवियाँ, ७. सातवें में भवनवासी देव, ८. आठवें में व्यन्तर देव, ९. नवें में ज्योतिष्क देव, १०. दसवें में कल्पवासी देव, ११. ग्यारहवें में चक्रवर्ती आदि राजा महाराजा एवं साधारण मनुष्य और १२. बारहवें में तिर्यञ्च समुदाय बैठता है। इस प्रकार भगवान के चारों ओर श्रोतागण बैठते हैं। मध्यस्थ गंधकुटी में केवलज्ञान लक्ष्मी से विभूषित भगवान शोभित हो भव्यजनों के अज्ञानान्धकार को हरने वाला पुनीत धर्मोपदेश देते हैं।

भरत चक्रवर्ती द्वारा केवलज्ञान पूजा—

संसार के समस्त सारभूत भोगों का निर्बाध रूप से सेवन करते हुए भरत चक्रवर्ती को काल के बीतने का भान भी नहीं था। वह शम दम में ऋषियों के समान था। एक दिन धर्म का फल रूप भगवान के केवलज्ञानोत्पत्ति का समाचार, अर्थ पुरुषार्थ का फल रूप आयुधशाला में चक्रोत्पत्ति और काम पुरुषार्थ का फल पुत्रोत्पत्ति का समाचार एक साथ ज्ञात हुए। वह विवेकशील विचार कर प्रथम धर्म का फल पूज्य है, इसलिए भगवान की केवलज्ञान पूजा महोत्सव सम्पन्न करना चाहिए। धर्म से अर्थ और अर्थ से काम होता है। अतः आनन्दभेरी गूंज उठी। सर्व प्रथम चक्री ने समाचार वाहक—वनमाली को अपने वस्त्रालंकार उतार कर दे दिये। पुनः सिंहासन से ७ पैंड चलकर भगवान को परोक्ष नमस्कार किया। समस्त प्रजा को समवसरण में चलने की आज्ञा दी।

धूम-धाम, सज्जा, परिवार, सेना आदि सहित उमड़ते सागर की भांति जय जय नादों सहित चक्रवर्ती भरत राजा समवसरण के पास आ पहुँचा। वह हाथी से उतर कर राजचिह्नों को छोड़ पैदल ही समवसरण में प्रविष्ट हुआ।

सर्व प्रथम समवसरण की तीन प्रदक्षिणा (परिक्रमा) दीं। पुनः मानस्थम्भों की पूजा की। तदनन्तर बड़े संभ्रम और आश्चर्य से खाई, लतावन, कोट, उपवन, ध्वजाओं, कल्पवृक्ष, स्तूपों की शोभा निहारता श्री मण्डप के द्वार पहुँचा। वहाँ द्वारपालों का सत्कार कर उनकी अनुज्ञा से अन्दर प्रवेश किया। प्रथम पीठिका पर स्थित चारों धर्मचक्रों की पूजा की, द्वितीय पीठिका पर ध्वजाओं की पूजा कर तीसरी पीठिका पर मध्यस्थ सिंहासन पर आसीन श्री जिनराज का पावन दर्शन किया। भगवान के दाहिनी ओर गोमुख यक्ष, बांयीं ओर चक्रेश्वरी देवी, मध्य में क्षेत्रपाल, आजू-बाजू श्रीदेवी, श्रुतदेवी और सरस्वती देवी आदि जिनशासन वत्सल भक्त अपने-अपने उचित स्थानों पर आसीन थे। सर्व प्रथम भरतेश्वर ने प्रभु को साष्टांग नमस्कार किया नाना द्रव्यों से पूजा की। पुनः नाना प्रकार स्तुति की। पुनः पुनः आनन्दविभोर हो नमस्कार कर यथायोग्य (मनुष्यों के कोठे में) स्थान पर बैठकर, करबद्ध हो प्रभु से जीवादि तत्त्वों का स्वरूप सुनने, जानने और समझने की प्रार्थना की। तदनुसार प्रभु ने अपनी अनुपम, अलौकिक वाणी से तत्त्वोपदेश प्रारम्भ किया।

उस समय भगवान के कण्ठ, ओठ, तालु, जिह्वा, दांत आदि कोई भी उच्चारण स्थान नहीं हिल रहे थे। मुख पर कोई भी विकार नहीं हुआ। इन्द्रियों के प्रयत्न बिना ही वाणी दिव्य-ध्वनि खिरती थी।

"हे आयुष्मन्, भव्यात्मन्! जीव को लेकर, पुद्गल धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ द्रव्य हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। इनमें पुण्य, पाप को मिलाने पर नव पदार्थ हो जाते हैं। ६ द्रव्यों में से काल द्रव्य को निकालने पर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये पांच अस्तिकाय कहलाते हैं। इनसे तीनों लोक भरे हैं। इन सब में जीव द्रव्य ही प्रमुख है। जीव और पुद्गल अनादि से अशुद्ध हैं। अपने-अपने पुरुषार्थ से दोनों शुद्ध हो सकते हैं। जीव का पुरुषार्थ क्रियात्मक है परन्तु पुद्गल का स्वभाव से गलन-पूरण

रूप परिणमन होता रहता है। यह शुद्ध परमाणु रूप होकर भी पुनः अशुद्ध-स्कंध रूप हो जाता है, परन्तु जीव की अशुद्धि का कारण आठ कर्मों का संयोग है। जीव स्वयं अपने द्वारा इस सम्बन्ध को आमूल छेद-कर पूर्ण शुद्ध हो सकता है। एक बार शुद्ध होने पर जीव पुनः कभी भी अशुद्ध नहीं होता। जीव की इस अवस्था का नाम ही मोक्ष है।

प्रत्येक वस्तु उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभाव लिए है। ये तीनों एक ही समय में रहते हैं। जहाँ सत् है वहाँ ये तीनों हैं ही। गुण-पर्यायों का समुदाय ही द्रव्य है। ये गुण पर्याय भी द्रव्य से कोई अलग पदार्थ नहीं हैं।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र इन तीनों का एकमेक रूप ही आत्मा है। इनको रत्नत्रय कहते हैं। रत्नत्रय ही आत्मा है और आत्मा ही रत्नत्रय है। इस स्वरूप को पाना ही मुक्ति है, जिसे प्रत्येक भव्य जीव स्वपुरुषार्थ से व्यक्त कर मेरे जैसा हो शाश्वत, अविनाशी मुक्ति धाम को पा लेता है। इसके पाने का पुरुषार्थ दो प्रकार है—यति धर्म और गृहस्थ धर्म। प्रथम गृहस्थ धर्म पालन कर यति धर्म स्वीकार कर कर्म काट अमर बन सकता है।

गणधर—

जिस प्रकार चाँद के बिना चंद्रिका, सीप के बिना मोती, मेघाभाव में वर्षा, धर्म बिना सुख नहीं होता, उसी प्रकार गणधर के बिना अर्हन्त परमेष्ठी की दिव्यध्वनि भी नहीं खिरती। अस्तु, भरत राजा का छोटा भाई जो पुरिमताल का राजा था, जिसका नाम वृषभसेन था, भगवान की वाणी सुनकर संसार, शरीर भोगों से विरक्त हो, दीक्षा धारण की। उसी क्षण चौथा मनः पर्यय ज्ञान प्रकट हुआ एवं सप्त ऋद्धियाँ प्राप्त हुई। ये प्रथम गणधर बने। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि गणधर हुए बिना भगवान की वाणी नहीं खिरती फिर उपदेश कहाँ से सुना? ठीक है, परन्तु वृषभदेव स्वामी की दिव्यध्वनि चक्रवर्ती भरत के निमित्त से खिरी थी। राजा सोमप्रभ श्रेयांस् आदि ८४ गणधर हुए।

आर्यिका ब्राह्मी सुन्दरी—

पुरुष के समान नारी भी यथाशक्ति आत्मकल्याण करने में स्वतन्त्र और योग्य है। अतः भगवान के अनुग्रह से उन्हीं की पुत्री ब्राह्मी ने

संसार विरक्त हो दीक्षित होने की प्रार्थना की तथा शिक्षा ग्रहण की तब प्रभु की अनुज्ञा से आर्यिका दीक्षा धारण कर सर्व प्रथम मुख्य-गणिनी

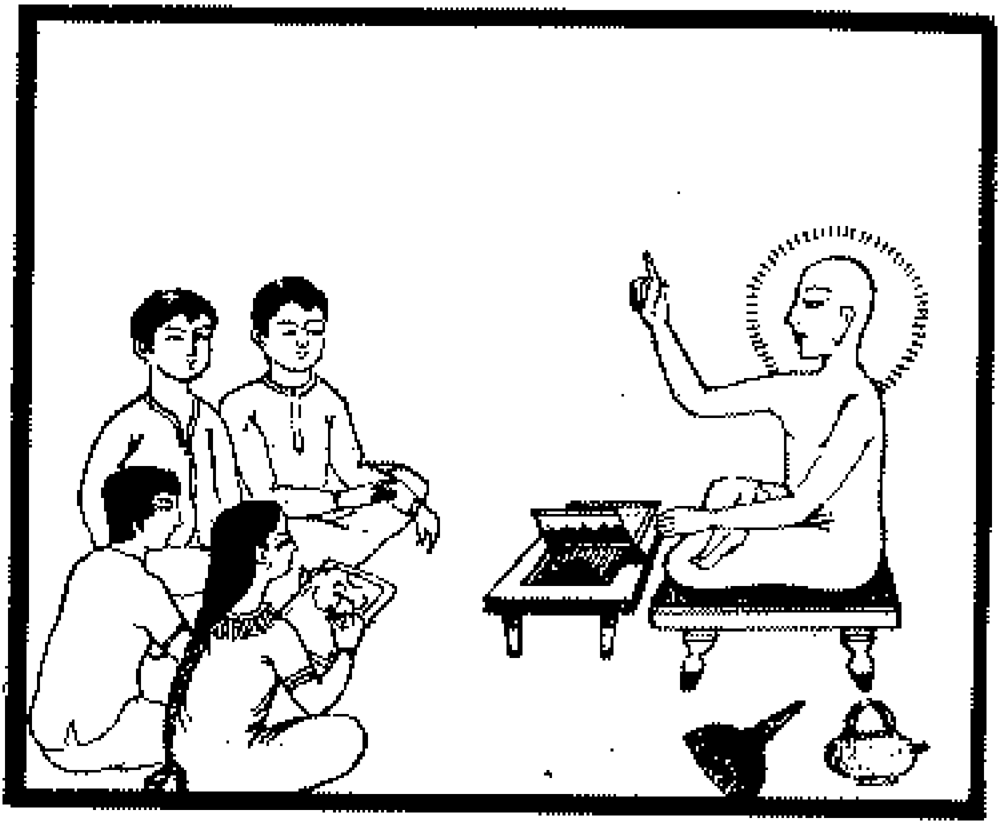

दीक्षापूर्व ब्राह्मी सुन्दरी शिक्षा ग्रहण करते हुए तथा कुमार भरत एवं बाहुबली कला विज्ञानोपदेश सुनते हुए

पद धारण किया। उपचार महाव्रत मण्डित इनकी देवों ने महापूजा की। उसी समय दूसरी पुत्री सुन्दरी वैराग्य रस पूरित संसार शरीर भोगों का त्याग कर दीक्षित हुयी। ये दोनों ही श्रेष्ठ तपारूढ़ हो कर्मजाल काटने में लीन हुयीं। अन्य भी अनेकों राज-कन्याओं ने ब्राह्मी से दीक्षा ले आत्मशोधन का प्रयत्न किया।

भगवान का श्री विहार—

चार घातिया कर्मों के सर्वथा नाश से उत्पन्न केवलज्ञान लक्ष्मी के धारक वृषभ देव की इन्द्र ने १००८ नामों से स्तुति की। पुनः तीर्थ विहार करने को प्रार्थना की कि "हे भगवन हे दयानिधे, हे जगपालक", आप अपनी दिव्यध्वनि रूप मेघ की धर्मामृत वर्षा कर, चातक समान भव्यों का कल्याण करें। अर्थात् सर्वत्र विहार कर धर्मोपदेश दें जिससे

अज्ञानान्धकार में डूबा लोक—भव्यात्मा आत्मस्वरूप को समझकर आपके समान समस्त तत्त्वज्ञानी बन सकें।

विहार काल में इन्द्र ने भगवान के चरणों के नीचे आकाश ही में अधर परागरंजित, सुगंधित, मनोहर सुवर्ण के कमलों की रचना की। प्रभु के चरणों के नीचे १, आगे ७, और पीछे ७ इस प्रकार १५। पुनः दोनों पार्श्वों (बगल) में ७—७=१४ कमल थे। चारों दिशाओं के अन्तराल—विदिशाओं में भी ७—७ होने से २८ कमल रचे थे। पुनः इन आठों अन्तरालों में ७—७ = ७ × ८ = ५६ कमल थे। पुनः १६ अन्तरालों में प्रत्येक में ७—७ कमल इसलिए १६ × ७ = ११२ कमल हुए। सब मिलाकर १५+१४+२८+५६+११२ = २२५ कमलों की रचना करता जाता था। आकाश मण्डल चतुर्णिकाय देवों से एवं जय घोषों, वादित्रों से व्याप्त था। वह दृश्य अपने में अपने ही समान था अर्थात् उपमा रहित था। भगवान का विहार वर्षाऋतु के समान था। इस प्रकार उन वीर वीर प्रभु ने काशी, अवंती, कुरुजांगल (हस्तिनागपुर), कौशल-अयोध्या, सुह्म, पुंड्र, चेदि, अंग, बंग (बंगाल), मगध (बिहार), आंध्र, कलिंग, मद्र-मद्रास (तमिल), पंचाल मालवा, दशार्ण, विदर्भ आदि अनेक देशों में विहार कर धर्मामृत—धर्मोपदेशामृत पिलाकर भव्यों को संतुष्ट किया।

ब्राह्मण वर्ण की उत्पत्ति और उसका फल —

महाराज भरत ने यजन-याजन, पूजन-विधान, दान-दाता, पढ़ना-पढ़ाना आदि का क्रम अनुबद्ध—सतत चलता रहे इस अभिप्राय से क्षत्रिय और वैश्यों की परीक्षा ली। सबको भोजन के लिए आमंत्रित किया। अपने आंगन में कीचड़, अंकुर और धान बिखरवा दिये। जो लोग इनको खूंदते हुए आ गये वे अव्रती कहलाये और जिन्होंने इन्हें जीव कहकर उन पर से आना स्वीकार नहीं किया वे व्रती कहलाये। भरत महाराज ने इनका यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण संस्कार कराया और इनका वर्ण "ब्राह्मण" निश्चित किया।

एक दिन भरत ने रात्रि के पिछले प्रहर में १६ स्वप्न देखे। जिनका फल कुछ दुःखोत्पादक था। यद्यपि भरत जी ने अपने ज्ञान से यह जान लिया कि इनका परिणाम आगामी काल में कटुरूप होगा, तो भी पूर्ण निश्चयार्थ श्री आदि भगवान के समवसरण में गये। विधिवत् श्री मंडप

में पहुँच कर भगवान को अत्यन्त भक्ति एवं विनय से सपरिवार पूजा, नमस्कार, स्तवन कर मनुष्यों के कोठे में यथास्थान बैठ गये। धर्मोपदेश सुनकर बोले—

हे भगवन्! आज पिछली रात्रि में मैंने १. सिंह, २. सिंह का बच्चा, ३. हाथी का बोझ लादे घोड़ा, ४. सूखे पत्ते खाते बकरे, ५. हाथी सवार वानर, ६. अनेक पक्षियों से पीड़ित उल्लू, ७. भूतों का नृत्य, ८. चारों ओर सूखा किन्तु मध्य में पानी भरा तालाब, ९. धूल से मलिन रत्न राशि, १०. नैवेद्य खाता कुत्ता (सोने के थाल में), ११. तरुण बैल, १२. परिवेश सहित चन्द्रमा, १३. लड़ते हुए दो बैल, १४. मेघों से ढका सूर्य, १५. छाया रहित सूखा वृक्ष एवं १६. पुराने वृक्षों का समूह स्वप्न में देखे हैं। हे देव इनका फल क्या होगा? मैं सुनना चाहता हूँ।

उत्तर में वचनामृत से सभा को सिंचित करते हुए प्रभु बोले, हे नरोत्तम, तुमने साधुओं के समान इन द्विजों की पूजा की है यह बहुत अच्छा है। परन्तु इसमें कुछ दोष भी है। अब तक चतुर्थ काल है ये अपनी मान-मर्यादा के अनुसार उत्तम चारित्र धारण कर कर्त्तव्यनिष्ठ रहेंगे, परन्तु कलियुग-पञ्चम काल के आने के समय अहंकारी होकर सदाचार से भ्रष्ट हुए मोक्षमार्ग के— जैन धर्म के कट्टर विरोधी हो जायेंगे। "हम सबसे बड़े हैं" इस मिथ्याभिमान से सम्यक्त्वरत्न को छोड़कर मिथ्यात्व का सेवन करेंगे। धर्म के शत्रु हो जायेंगे। अहिंसा धर्म का त्याग कर हिंसा रूप कुधर्म का प्रचार और प्रसार करेंगे। यह तो ब्राह्मण रचना के विषय में है। इसी प्रकार स्वप्नों का फल भी १. महावीर भगवान के शासन में मिथ्या नयों और शास्त्रों की उत्पत्ति, २. कुलिंगी भेषधारी अधिक होंगे, ३. साधु कठिन तप नहीं करेंगे, ४. उच्चकुल वाले शुभाचार का त्याग करेंगे, ५. क्षत्रियों का राज्य नहीं होगा, ६. धर्मात्माओं का अपमान होगा, ७. कुदेवों की पूजा होगी, ८. उत्तम तीर्थों में धर्म का अभाव और हीन तीर्थों में सद्भाव होगा, ९. शुक्ल ध्यान का अभाव, १०. कुपात्रों का आदर, सत्पात्रों का अपमान, ११. तरुण और तरुणी दीक्षा लेंगे, १२. अवधि, मनः-पर्यय ज्ञानी नहीं होंगे प्रायः, १३. संघ में न रहकर एकलविहारी मुनि होंगे, १४. केवलज्ञान का अभाव, १५. प्रायः दुश्शीली स्त्री पुरुष होंगे, १६. औषधियाँ नीरस होंगी। इस प्रकार ये फल आगे पंचम काल में होंगे।

भरत महाराज प्रभु द्वारा प्रश्नोत्तर सुन विशेष रूप से धर्म ध्यान में दत्तचित्त हुए । राजा प्रजा दोनों ही षट्कर्मरत हुये ।

स्वयम्बर प्रथा का प्रारम्भ—

हस्तिनागपुर का राजा सोमप्रभ था । इसकी रानी लक्ष्मीमती से "जय" नाम का पुत्र हुआ । सोमप्रभ ने कारण पाकर अपने भाई श्रेयान् कुमार के साथ श्री वृषभ स्वामी के समक्ष दीक्षा ले परम मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त की । जयकुमार राजा हुआ ।

बनारस के राजा अकम्पन की रानी सुप्रभा से उत्पन्न सुलोचना नाम की अत्यन्त मनोहर कन्या थी । यौवन में प्रविष्ठ देख अकम्पन ने विचार-विमर्श कर सर्व प्रथम 'स्वयम्बर' प्रथा को चलाया । सुलोचना ने फाल्गुन मास की अष्टाह्निका में श्री जिनेन्द्र देव की पूजा की तथा अत्यन्त आनन्द विभोर हो शेषा लेकर अपने पिता के समक्ष गई । इसे युवती देख, राजा कुछ चिन्तित हुए । मन्त्रणा कर "स्वयम्बर मण्डप" करने का निर्णय किया ।

देश देशान्तर के राजा आये । जयकुमार भी उपस्थित हुए । सुलोचना कन्या ने अपने अनुरूप उत्तम गुणधारी जयकुमार के गले में वर माला डाली । यहीं से "स्वयम्बर" प्रथा प्रारम्भ हुयी । समवसरण में यतियों एवं श्रावकों का प्रमाण—

भगवान श्री वृषभ देव के समवसरण में ८४ गणधर मुनिराज, २०००० (बीस हजार) सामान्य केवली, ४७५० पूर्वधारी, ४१५० उपाध्याय-पाठक या शिक्षक, १२७०५ विपुलमति मन: पर्ययज्ञानी, २०६०० विक्रिया ऋद्धिधारी, ६००० अवधि ज्ञानी, १२७५० वादी इस प्रकार सम्पूर्ण ८४००० थी । प्रमुख गणिनी आर्यिका ब्राह्मी को लेकर ३५०००० आर्यिकाएँ थीं, भरत चक्री को लेकर ३ लाख श्रावक और ५ लाख श्राविकाएँ थीं तथा देव, देवी एवं तिर्यञ्च असंख्यात थे । भगवान की शासन यक्षी चक्रेश्वरी एवं यक्ष श्री गोमुख था ।

उपदेश काल—

भगवान ने १ हजार वर्ष १४ दिन कम १ लाख पूर्व काल तक धर्मोपदेश दिया ।

योगनिरोध—

आयुष्य के १४ दिन शेष रहने पर दिव्यध्वनि बन्द हो गई। भगवान पूर्ण योग निरोध कर ध्यानस्थ हो गये।

निर्वाण स्थान—श्री कैलाश पर्वत से मुक्तिधाम सिधारे।

समय—मुक्ति प्रयाण काल अपराह्न काल था।

आसन—पद्मासन।

सहमुक्ति पाने वाले—१०,००० मुनि थे।

मुक्ति तिथि—

माघ कृष्णा चतुर्दशी के दिन सूर्योदय के शुभ मुहूर्त और अभिजित नक्षत्र में, पूर्वाभिमुख पर्यंकासन से अ, इ, उ, ऋ, लृ, इन ह्रस्व स्वर के उच्चारण करने के काल मात्र १४वें गुण स्थान में ठहर मुक्ति लाभ किया। एक समय मात्र में सिद्धशिला पर जा विराजे।

मोक्षकल्याणक--

आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय इन चारों कर्मों का भी उच्छेद हो गया, नो कर्म भी आमूल नष्ट करने से भगवान सिद्ध प्रभु के १. सम्यक्त्व, २. अनन्त ज्ञान, ३. अनन्त दर्शन, ४. अनन्त वीर्य, ५. अव्याबाध सुख, ६. सूक्ष्मत्व, ७. अगुरु लघुत्व और ८. अव्याबाधत्व ये आठ गुण पूर्ण प्रकट हो गये। शुद्ध, निरंजन, चैतन्य आत्मा तनुवातवलय में जा विराजी।

जिस प्रकार स्विच् दबाते ही घंटी बजने लगती है। उसी प्रकार भगवान के मोक्ष जाने का समाचार भी तत्क्षण स्वर्ग लोक के कोने-कोने में गूंज उठा। सिंहासन कंपित होते ही सुरेन्द्र ने अवधि से जान कर मोक्षकल्याणक महा-महोत्सव मनाने की तैयारी की। ससैन्य श्री कैलाश-गिरी पर आ पहुँचा। नाना प्रकार के सुगंधित अगर, तगर, कपूर, चन्दन, उशीर, केशर, छारछबीला आदि दिव्य पदार्थों को संग्रह कर प्रभु के दिव्य शरीर का संस्कार किया। उस समय अग्निकुमार जाति के देवों के मुकुटों से अग्नि उत्पन्न हुयी।

दीप, धूप गंधादि से अग्नि कुण्ड की पूजा की। इन्द्र ने भगवान के शरीर की परम पवित्र भस्म को अत्यन्त भक्ति से मस्तक पर चढ़ाया और रत्न करण्ड में रखकर स्वर्ग को ले गया। अन्य समस्त चतुर्निकाय देवों ने भी भस्म मस्तक पर धारण की एवं पूजा की। भस्म को गले,

बाहों में भी लगाया और हम भी "ऐसे (भगवान समान) हों" इस प्रकार भावना की। इन्द्र-इन्द्राणी, देव-देवियाँ सबने बड़ी भक्ति से हर्षित हो आनन्द नाटक किया।

महाराज भरत ने भी परमोत्सव मनाया परन्तु साथ ही महा-शोकाभिभूत हो, इष्टवियोगज आर्तध्यान में फंस गया। वह बालकवत् विलापादि चेष्टा करने लगा। उस समय श्री वृषभसेन गणधर महाराज ने उसे धर्मोपदेश एवं सबके पूर्वभव सुनाकर सन्तुष्ट किया। वे बोले हे भरत ! जो मरण आगामी जन्म रूपी भयंकर दुःख देने वाला है वह यदि होना है तो रोना ठीक है परन्तु जो वियोग (मरण) पुनः जन्म न होने दे उससे क्यों रोना। अरे तू इन्द्र से भी पहले मोक्ष जायेगा। फिर शोक कैसा ? हे भव्योत्तम तू कृत-कृत्य होने वाला चरम शरीरी है आसन्न भव्य है इसलिए हर्ष के स्थान में तेरा शोक शोभित नहीं होता। इस प्रकार के वचन रूपी अमृत से अभिसिंचित राजा भरत सम्बुद्ध हो अपने नगर में प्रविष्ट हुए।

भरत की मुक्ति—

एक दिन भरत ने दर्पण में अपना सफेद केश देखा, और तुरन्त जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर अन्तर्मुहूर्त में केवली भगवान हो गये।

भगवान के १० भव—

१. जयवर्मा राजा।
२. राजा महाबल।
३. ललितांगदेव।
४. राजा वज्रजंघ।
५. उत्तम भोगभूमि में आर्य।
६. श्रीधर नाम का देव।
७. सुविधि राजा।
८. इन्द्र अच्युत स्वर्ग में।
९. राजा वज्रनाभि चक्रवर्ती।
१०. अहमिन्द्र सर्वार्थसिद्धि में।

वहाँ से ऋषभ देव हो मुक्तिधाम सिधारे।

चिह्न बैल (वृषभ)

प्रश्नावली—

१. कुलकर कितने होते हैं ?

२. आदि ब्रह्मा कौन हैं ?

३. वृषभ स्वामी को कितने दिन में आहार मिला ?

४. आहार न मिलने का क्या कारण है ?

५. नमि, विनमि कौन थे ?

६. भगवान के साथ कितने राजा साधु हुए और वे क्यों भ्रष्ट हो गए ?

७. 'समवसरण' का क्या अर्थ है ? उसका स्वरूप क्या है ?

८. दानतीर्थ का कर्ता कौन है ?

९. सर्व प्रथम स्वयम्वर किसका हुआ ?

१०. मोक्ष कल्याणक का वर्णन करो ?

११. भगवान के १० भव कौन-कौन से हैं ?

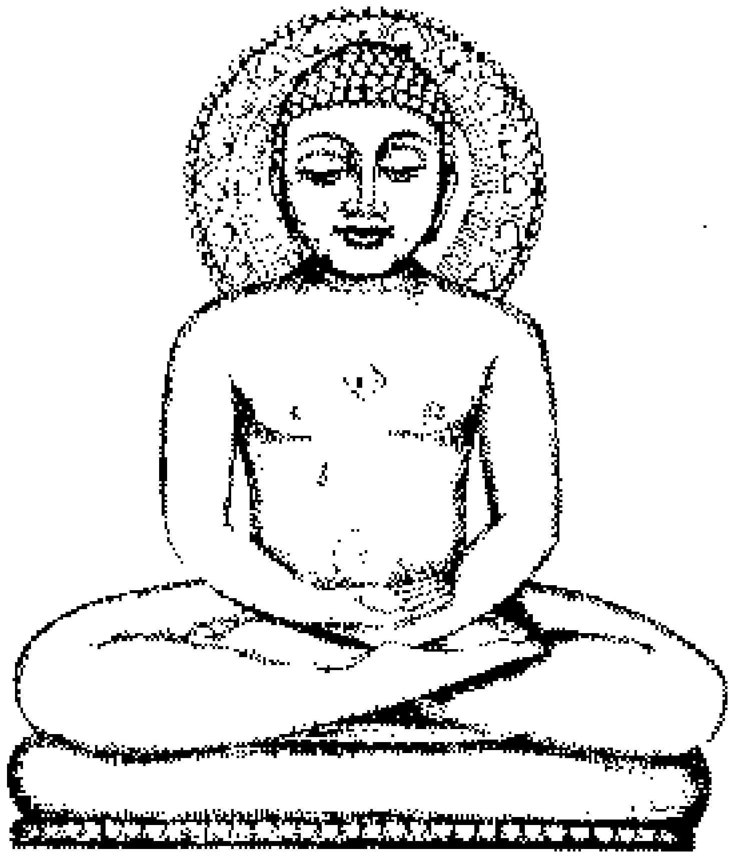

२-१००८ श्री अजितनाथ जी

जिनके वचनामृत से पावन होता भव्य हृदय ।
अजित जिनेश्वर के चरणों में होवे मेरा शत्-शत् वन्दन ।।

"मनोरेव कारणं बंधमोक्षयोः" प्राणी-मनुष्य मनोभावों के अनुसार शुभाशुभ कर्मों से लिप्त और मुक्त होता है । अपने-अपने अच्छे-बुरे भावानुसार योग्य-अयोग्य आचरण कर पुण्य और पाप का अर्जन व विनाश करता है । सीता नदी के दक्षिण तट पर स्थित विशाल वत्सदेश का अधिपति राजा विमल वाहन था । वह राज्योचित गुण-गरिमा से सम्पन्न और न्याय एवं धर्म से प्रजा का सन्तान के समान पालन कर क्षमा एवं करुणा भाव से पुण्यार्जन करता था । पुण्य से प्राप्त धन-वैभव में भी उसे तनिक भी आशक्ति नहीं थी । मुक्त हस्त से दान एवं पूजा में निरन्तर निरत रहता था । वह जिनधर्म पर अकाट्य श्रद्धालु था । "बुद्धि कर्मानुसारिणी" के अनुसार संज्वलन कषाय के उदय में राजा संसार शरीर भोगों की असारता का विचार करने लगा ।

पूर्वभव—

पानी का प्रवाह रोका नहीं जाता, उसी प्रकार आयु को निषेक भी नहीं ठहर सकते । अतः शीघ्र आत्म-कल्याण कर लेना ही बुद्धिमत्ता है । बस, अनेकों राजाओं के साथ जिनमुद्रा धारण कर घोर तप में संलग्न हो १६ कारण भावनाओं की आराधना कर पुण्य की काष्ठारूप तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध किया । स-समाधि मरण कर विजय विमान में ३३ सागर की आयु प्राप्त की । अर्थात् अहमिन्द्र हुआ । द्रव्य-भाव से शुक्ल लेश्या युत १ हाथ प्रमाण शुभ वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाला शरीर प्राप्त किया । सोलह महीने १५ दिन में उच्छ्वास लेता था, तेतीस हजार वर्ष में मानसिक अमृतमय आहार करता था । लोकनाड़ी पर्यन्त रूपी द्रव्यों को अपने अवधिज्ञान से देखता था । प्रविचार से अनन्त गुरण अप्रविचार सुख का उपभोक्ता था । लोकनाड़ी को उखाड़ दे इतनी सामर्थ्य थी । क्षण-क्षण कर ३३ सागर पूर्ण होने लगे । मात्र ६ माह शेष रह गये तब ?

गर्भावतरण—

भरत क्षेत्र का किरीट स्वरूप नगरी है, अयोध्या । तीर्थ प्रवर्तकों की जननी होने से यह धर्म की ध्वजा स्वरूप थी । धन-जन से सम्पन्न, अतिवृष्टि-अनावृष्टि का नाम भी नहीं था । समस्त नर-नारी शील, संयम, दया, क्षमा आदि गुणों से सम्पन्न सुन्दराकृति एवं सन्तोषी थे । याचक तो खोजने पर भी नहीं मिलते थे । इस पुण्य नगरी का अधिपति था जितशत्रु । राजा जितशत्रु यथा नाम तथा गुण थे । इनका कोई विरोधी शत्रु न था । इक्ष्वाकुवंश के तिलक, काश्यप गोत्री राजा ने अपनी गुण गरिमा से प्रजा को अनुरंजित कर दिया था । अर्थात् "यथा राजा तथा प्रजा" की युक्ति अक्षरशः सार्थक थी । इनकी महारानी विजयसेना भी अप्रतिम रूपलावण्य के साथ समस्त नारी के गुणों से युक्त थी । अनुकूल धर्मपत्नी के साथ आमोद-पूर्वक राजा का समय सुख पूर्वक व्यतीत होने लगा । धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थ होड़ लगाये दौड़ते थे, परन्तु कोई किसी का अवरोध नहीं करता था । मोक्ष पुरुषार्थ क्यों चुप बैठता भला ? मानों, वह भी स्वर्गावतरण कर आना चाहता था ।

जेष्ठ का मास था, अन्धेरा पक्ष । घोर तिमिर का छेदक सूर्य जिस प्रकार उदित होता है, उसी प्रकार अज्ञानान्धकार का नाश करने को

सर्वज्ञ होने वाली भव्यात्मा का अवतार होता है। पतिव्रता, धर्म-परायणा, जगदम्बा स्वरूप महादेवी श्री विजयसेना महारानी सुख शय्या पर शयन कर रही थी। रात्रि का अवसान आया। पुण्यवती माँ अपने पूर्व संचित पुण्योदय से स्वप्नलोक में विचरण करने लगी। उन्होंने मरुदेवी माता के समान वृषभ, गज आदि १६ स्वप्न देखे। आनन्दविभोर पुलकित अंग माता ने अन्त में अपने मुखकमल में गंधगज को प्रविष्ट होते देखा और उसी क्षण वृन्दजनों के मांगलिक वादित्रों की ध्वनि के साथ निद्रा भंग हो गई। सिद्धपरमेष्ठी का स्मरण करती हुयी माँ का सौम्य मुख अद्वितीय था। हृदय का उल्लास चेहरे पर दमक उठा। नित्य क्रिया कर अपने पति महाराजा जितशत्रु से १६ स्वप्नों का वृत्तान्त कहा और उनके फल जानने की अभिलाषा व्यक्त की। महाराज ने भी यथोचित्त उत्तर देते हुए, "परमोत्कृष्ट, धर्मतीर्थ के प्रवर्तक तीर्थङ्कर का जन्म होगा" यह शुभ सन्देश सुनाया। दम्पत्ति वर्ग परमानन्दित हुए।

शुभ हो या अशुभ अद्वितीय घटना को फैलते देर नहीं लगती। इधर रोहणी नक्षत्र के उदय में ब्रह्ममुहूर्त से कुछ पूर्व ज्येष्ठ कृष्णा अमावश्या के दिन, विजयविमान से च्युत हुआ अहमिन्द्र गर्भ में अवतरित हुआ और उधर इन्द्रराज का आसन डगमगाने लगा। अपने अवधिज्ञान नेत्र से तीर्थङ्कर प्रभु का गर्भावतरण जानकर ससैन्य, सपरिवार गर्भ कल्याणक महोत्सव मनाने चल पड़ा। यद्यपि छः महिने पूर्व से ही उसकी आज्ञानुसार कुबेर प्रतिदिन एक-एक बार में ३।। करोड़ रत्नों की वर्षा करता रहा। षट्-कुमारिकाओं ने गर्भ शोधना की। भगवान स्फटिक के करण्ड समान गर्भ में निर्बाध विराजमान हुए। समस्त ५६ कुमारिकाओं को माता की यथावत् सेवा सुश्रुषा करने की आज्ञा देकर इन्द्र अपने स्थान को चला गया।

सीप में मोती जिस प्रकार बढ़ता है उसी प्रकार तीर्थङ्कर का जीव बिना किसी बाधा के उदर में पुष्ट होने लगा। माँ को इससे किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ अपितु बुद्धि, कला, गुण, स्मरण शक्ति, प्रत्युत्पन्नमति आदि गुणों के साथ शरीर की कान्ति, रूप, लावण्य वृद्धि-गत हुए। बाह्य रूप में कोई भी चिह्न-उदर वृद्धि, प्रमादादि का नाम भी नहीं हुआ। समस्त भोगोपभोग के साधन, इन्द्र की आज्ञानुसार देव-

देवियाँ स्वर्ग से लाकर उपस्थित करती थीं। क्रमशः आमोद-प्रमोद, धार्मिक तत्त्व चर्चा, प्रश्नोत्तर करते हुए नवमास पूर्ण हुए। पूर्ववत् प्रतिदिन ३।।-३।। करोड़ रत्नों की त्रिकाल वृष्टि होती रही।

जन्म कल्याणक—

विजयसेना महारानी यद्यपि हमेशा हर्षित रहती थीं दुःख का लेश भी नहीं जानती थीं, किन्तु आज विशेष हर्षोल्लास, उत्साह और उमंग का अनुभव कर रही थीं। जबकि साधारण माता—जननी प्रसवकाल में पीड़ानुभव करती है। वह यहाँ कुछ नहीं था अपितु सुखानुभूति थी। पुण्य का यही महात्म्य है। महाराजा जितशत्रु भी अप्रत्याशित आनन्द की अनुभूति में निमग्न थे। प्रकृति इनके सुखोपभोग की वृद्धि के लिए अपना वैभव बिखेर रही थी। माघ मास शुक्ल पक्ष, रोहिणी नक्षत्र, वृषभ लग्न, शुभ मुहूर्त में विजयसेना महामाता ने त्रयज्ञान नेत्रधारी जगत्पूज्य, सर्व लक्षण सम्पन्न भावी तीर्थङ्कर पुत्ररत्न को प्रसव किया।

जन्माभिषेक : एवं नामकरण --

इन्द्रासन कम्पन द्वारा इन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से विदित किया कि मति, श्रुत, अवधिज्ञान धारी भगवान का जन्म हो गया। बस फिर क्या था, जन्मोत्सव मनाने को चल पड़ा। ऐरावत हाथी पर आसीन इन्द्र की समुद्र गर्जनवत् कोलाहल करती हुयी समस्त देव सेना आकाश-प्रांगण में आ डटी। समस्त वैभव आदीश्वर भगवान के समान था, हाँ वस्त्राभूषण कुछ छोटे थे। महारानी के महल तथा नगरी की तीन प्रदक्षिणा देकर इन्द्र ने शचि—इन्द्राणी को प्रसूतिगृह में जाने की आज्ञा दी। तदनुसार इन्द्राणी नमस्कार कर बालक की प्रतिकृति स्थापित कर प्रभु को गोद में ले धन्यभागी अनुभव करती हुयी ले आयी। इन्द्र को सौंपते ही वह विस्मित हो गया उसने एक हजार नेत्र बनाकर रूपराशि को निहारा। समस्त देव समूह के साथ प्रभु को लाकर सुमेरु पर्वत पर स्थित पाण्डुक शिला पर विराजमान कर १००८ कलशों में हाथोंहाथ पांचवें क्षीरसागर से जल लाकर स्नान कराया—जन्माभिषेक किया। पश्चात् समस्त इन्द्राणियों देवियों ने भी किया। पुनः शचिदेवी ने कोमल वस्त्र से अंग पोंछकर वस्त्राभरण पहनाये, अंजन लगाया। इन्द्र ने भगवान का शक्ति वैभवानुसार सार्थक "अजित" अर्थात् अजितनाथ

नाम स्थापित कर पुनः अयोध्या नगरी में आकर माता-पिता को भगवान को देकर हर्ष से आनन्द नाटक कर अपने स्थान को प्रस्थान कर गया। इधर माता-पिता ने भी समस्त प्रजा के साथ महोत्सव किया तथा पुरोहित आदि ने इन्द्र द्वारा निर्धारित नाम का समर्थन किया। उसी समय दाहिने अंगुष्ठ में स्थित गज देखकर हाथी का चिह्न भी निश्चित किया।

बाल्यकाल—

आदिनाथ तीर्थङ्कर के ५० लाख वर्ष बाद आपका जन्म हुआ। इनकी सम्पूर्ण आयु ७२ लाख पूर्व की थी। **शरीर कान्ति तपाये हुए सुवर्ण के सदृश थी।** वज्रवृषभ नाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान था। जन्म से ही क्षीरवत् रक्त, सुगन्धित, शरीर था। दश अतिशयों से युक्त थे देवकुमारों के साथ बाल्य क्रीड़ा करते हुए कुमार काल पर्यन्त १८ लाख पूर्व वर्षों को क्षणमात्र के समान व्यतीत किया। आपका आहार-पान बाल्यकाल में इन्द्र द्वारा अंगूठे में स्थापित अमृत द्वारा हुआ एवं कुमार काल में अतिमिष्ठ, स्वादिष्ट, सुगन्धित, सच्चिक्कन आहार जो स्वर्ग से आता था उसी से यापन हुआ।

विवाह—

जिस प्रकार बीज से अंकुर, अंकुर से पौधा, पौधे से वृक्ष, वृक्ष से पत्ते, डालियाँ और फूल होते हैं, उसी प्रकार पुत्र, पुत्र से पुत्रवधु और उससे संतान प्रतिसंतान होने से वंश वृद्धि होती है। यही सोचकर महाराजा जितशत्रु ने कुमार भगवान अजित को यौवनावस्था में प्रविष्ट होते देख उनके विवाह का प्रस्ताव रखा। कुमार ने भी "ॐ" कह-कर अपनी स्वीकृति प्रदान की। बस क्या था अनेकों सुन्दर-सुन्दर कन्याओं के साथ आपका विवाह हुआ (१००० कन्याओं के साथ विवाह हुआ। "कन्नड अजितनाथ पुराण") तीर्थङ्कर जैसे अनुपम लावण्ययुत पति को पाकर भला कौन अपने को धन्य नहीं मानेंगी। अप्सराओं के समान बहुरूप सौन्दर्य की राशि कन्याओं को पाकर अजित कुमार अत्यन्त सुखोपभोग से समय बिताने लगे। यद्यपि आमोद-प्रमोद में वे निमग्न थे क्योंकि इधर राजकीय वैभव उधर स्वर्गों की विभूति दोनों ही इनकी चरण दासी के समान सेवा में तत्पर थी। तथापि ये मुग्ध

नहीं हुए। अपने को भूले नहीं। यही कारण था कि भोगों की वृद्धि के साथ बुद्धि, ज्ञान, विवेक, कला-कौशल, न्याय-नीति, विविध विद्या-कौशल भी उत्तरोत्तर बढ़ता रहा। शरीर वृद्धि होने पर भी आप कुमार जैसे ही थे। यौवन का उन्माद या वृद्धत्व के चिह्न मात्र भी जाग्रत नहीं हुए। शरीर की दीप्ति और आत्मा का तेज निखरता ही गया। आप दया और क्षमा की मूर्ति थे, जन्म से अणुव्रती-संयमी वत् आपका आचरण और स्वभाव था। प्राणी मात्र के प्रति करुणाभाव था। सबको सुखी करने से आपका अजित नाम सार्थक था।

राज्याभिषेक—

सद्गुण सम्पन्न सुयोग्य राज्य संचालक पुत्र को पाकर जितशत्रु परमानन्द में डूबे थे। पुत्र, पौत्र एवं असाधारण राज्य वैभव में निमग्न थे। समय पाकर यौवन सम्पन्न पुत्र को राज्यभार देने का निर्णय कया। भोग कितने भी क्यों न हों तृप्ति नहीं कर सकते। खारा जल अगाध होने पर भी तृषा बुझाने में समर्थ नहीं होता। क्षणभंगुर राज्य वैभव क्या आत्मीक शान्ति दे सकता है ? कदाऽपि नहीं ! यही सोचकर महाराज ने श्री अजित पुत्र को राजा बनाने का निर्णय किया। प्रजा ने भी प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया। मन्त्री पुरोहित आदि सभी इससे प्रसन्न थे।

शुभ दिन, शुभ मुहूर्त, शुभ लग्न में श्री अजित प्रभु का राज्याभिषेक महोत्सव, महान् वैभव के साथ सम्पन्न हुआ। आदीश्वर भगवान के समान ही पुत्रवत् प्रजा का पालन करने लगे। तीर्थङ्कर प्रकृति का प्रभुत्व, राज्य सम्पदा, निष्कण्टक भोगों को पाकर भी आप उसमें आत्यासक्त नहीं हुए अनेकों सुर-सुन्दरियों के साथ विवाह हुआ था तो भी सिद्ध प्रभु का ध्यान सतत् हृदय में रहता। आपके दया, क्षमा और स्नेह से प्रजा चाकरवत् सेवा में तत्पर रहती थी। वस्तुत: जिनकी सेवा इन्द्र, धरणेन्द्र, देव, देवियाँ करें उनकी सेवा भला मनुष्य क्यों न करेंगे। दम्पत्तियों का काल वर्ष भी क्षण समान सुख शान्ति से व्यतीत होने लगा।

वैराग्य—

आपाद मस्तक भोगों में निमग्न व्यक्ति उसी प्रकार विरक्त भी हो सकता है जिस प्रकार आकण्ठ भोजन करने वाला मिष्ठान्न से विरक्त हो

आता है। यही दशा हुई राजा अजित प्रभु की। एक दिन अजितनाथ अपने महल की छत पर सुख से विराजे थे। सहसा अम्बर में विद्युत (बिजली) चमक कर विलीन हो गई। इसके देखते ही प्रभु के हृदय का चारित्रमोहावरण भी विलीन हो गया। क्षण भंगुर लक्ष्मी, वैभव, यौवन भी इसी प्रकार एक दिन नष्ट होने वाला है।" यही विचार उनके हृदय में समा गया। वैराग्य भाव जागृत हुआ। विषयों से सर्वथा विरक्ति हो गई। परिग्रह पोट का भार उन्हें असह्य हो गया। मोह का परदा फट गया। ज्ञानोदय हो गया। संसार की अनित्यता का चिन्तन करते ही सारस्वतादि लौकांतिक देव शीघ्र ही आ उपस्थित हुए, दीपक जलते ही प्रकाश की भाँति। वे भगवान के वैराग्य भाव की प्रशंसा करते हुए उसे पुष्ट करने का प्रयत्न करने लगे। यद्यपि भगवान स्वयंबुद्ध थे, तो भी अपनी भव संतति का उच्छेद करने के लिए उनके वैराग्य में सहकारी हुए। लोग देखते अपने-अपने नेत्रों से हैं परन्तु सूर्य उसमें हेतु बन जाता है उसी प्रकार लौकान्तिक देवों ने अपना नियोग पूरा किया।

राज्य त्याग—

वैराग्य की काष्ठा पर पहुँचे भगवान ने अपने सुयोग्य, राज्यनीति में निपुण, कला, गुण, रूप सम्पन्न ज्येष्ठ पुत्र अजितसेन को राज्याभिषेक कर राजमुकुट पहनाकर राज तिलक किया। भूठन के समान राज्य को देते समय उन्हें परमानन्द हो रहा था। तिनके समान उसे छोड़ते समय अति संतुष्ट थे प्रभु। निर्मोही प्रभु—राजा प्रजा को संतुष्ठ कर सर्वारम्भ-परिग्रह का त्यागरूप दीक्षा धारण करने को तत्पर हुए, कि तत्क्षण इन्द्र महाराज 'सुप्रभा' नाम की शिविका (पालकी) लेकर आ उपस्थित हुए।

परिनिष्क्रमण या दीक्षा कल्याणक —

देवेन्द्र सपरिवार चल पड़ा। वह हर्ष से झूम रहा था। साथ ही विषाद से भी। क्यों? क्यों कि भगवान संयम धारण करने आ रहे थे परन्तु अब वह उनके साथ संयमी बनकर उनकी सेवा नहीं कर सकता था। यही नहीं उसे प्रथम प्रभु की पालकी उठाने का भी सुअवसर इसी कारण प्राप्त नहीं हुआ। प्रथम ही प्रभु का मंगलाभिषेक किया। सुन्दर

रत्नाभूषण एवं सुकोमल वस्त्र पहनाये। निराजना कर शिबिका में आरूढ़ किये। यहाँ तक इन्द्रराज प्रमुख थे। परन्तु अब उन्हें पीछे हटा राजा लोग आगे आये क्योंकि मनुष्य पर्याय में ही संयम पालन की योग्यता है, इसीलिए पालकी उठाने का प्रथम अधिकार राजाओं को प्राप्त हुआ। देखिये संयम धारण करने की योग्यता की महिमा। योग्यता मात्र का महत्व इतना विशाल है तो पालन करने का तो कहना ही क्या ? अस्तु सात पैंड पर्यन्त भूमिगोचरी राजागण पालकी ले गये। इसके अनन्तर इन्द्र एवं देवतागण आकाश मार्ग से लेकर सहेतुक वन में जा पहुँचे।

माघ शुक्ला नवमी के दिन सायंकाल रोहिणी नक्षत्र में सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे स्वच्छ शिला पर पूर्वाभिमुख विराजमान होकर एक हजार (१०००) राजाओं के साथ परम दिगम्बर मुद्रा धारण की। पंचमुष्ठी लौंच किया षष्ठोपवास की प्रतिज्ञा कर दीक्षित हुए। उसी समय परिणामों की परम विशुद्धि से चतुर्थ मनः पर्याय ज्ञान भी उत्पन्न हो गया। देवेन्द्रों ने अत्यन्त भक्ति से प्रभु की पूजा की। इस प्रकार तप कल्याणक महोत्सव विधिवत् सम्पन्न कर वे स्वर्ग को लौट गये। लोक जन, यथायोग्य पूजा अर्चना कर अपने-अपने स्थान को चले गये।

प्रभु का पारणा—

षष्ठोपवास के साथ प्रभु प्रवृजित हुये थे। अतः शुद्ध मौन से दो दिन तक ध्यानारूढ़ रहे। माघ शुक्ला द्वादशी को योग पूर्ण कर चर्या निमित्त विहार किया। ईर्यासमिति पूर्वक मन्द गमन करते हुए भगवान अयोध्या नगरी में पधारे। चारों ओर राजा, महाराजा, प्रजा आह्वान करने को उत्सुक हो नमन करने लगे प्रत्येक अपने को असीम पुण्य का अधिकारी बनाना चाहता था परन्तु लाभ तो एक ही को मिलना था। अत: परमानन्द उपजाने वाले प्रभु को प्रथम पड़गाहन का लाभ ब्रह्मा महीपाल को प्राप्त हुआ। नवधा भक्ति से सप्तगुण युक्त 'ब्रह्मा' राजा ने सपत्नीक भगवान को प्रथम पारणा कराया। दाता और पात्र की विशेषता से दान में विशेष चमत्कार होता है। साक्षात् तीर्थङ्कर होने वाले मुनिराज से बढ़कर और कौन पात्र हो सकता है ? तीर्थङ्कर को प्रथम आहार देने वाले से अधिक कौन पुण्यात्मा दाता हो सकता है ? कोई नहीं। अत:एव प्रभु के आहार लेने के बाद तत्क्षण पंचाश्चर्य-

रत्न, पुष्प, गंधोदक वृष्टि, दुंदुभि बाजे और जय-जयनाद देवों द्वारा हुए प्रभु तपोवन को पधारे। अखण्ड मौन से बारह वर्ष पर्यन्त घोर तपश्चरण कर छद्मस्थ काल बिताया। चतुर्विध धर्म ध्यान की पूर्ति कर शुक्ल ध्यान में स्थित हुए।

केवलज्ञान कल्याणक—

"एकाग्रचिन्ता निरोधो ध्यानं" के अनुसार भगवान सम्पूर्ण संकल्प-विकल्पों का पूर्ण परित्याग कर निजात्म स्वरूप में तल्लीन हुए। सातिशय अप्रमत्त से ऊपर चढ़ने के लिए 'पृथक्त्ववितर्क' शुक्ल ध्यान का आलम्बन लिया। अर्थात् क्षपक श्रेणी मांड कर ध्यानानल से मोहनीय कर्म को आमूल भस्म कर ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय को भी "एकत्ववितर्क" शुक्ल ध्यान रूपी खड्ग से एक साथ धराशायी कर दिया। अन्तर्मुहूर्त मात्र काल में ६३ प्रकृतियों का समूल अभाव कर केवलज्ञान प्राप्त कर सर्वज्ञता प्राप्त की। पौष शुक्ला एकादशी के दिन सायंकाल रोहणी नक्षत्र में तीनलोक के चराचर पदार्थों की उनकी अनन्त पर्यायों के साथ युगपत् जानने वाले अक्षय अनन्त ज्ञान के धारी हुए।

प्रभु को सर्वज्ञता प्राप्त होते ही इन्द्रासन डगमगाया और अपने अवधिज्ञान से भगवान को सर्वज्ञता हुयी जानकर स-विभूति इन्द्रराज मर्त्यलोक में आ पहुँचा। नियोगानुसार कुबेर ने इन्द्र की आज्ञा से विशाल सप्तकोट युक्त, त्रिमेखला युत समवशरण मण्डप की रचना आकाश में की। यह भूमि से ५००० धनुष ऊपर और २०००० सीढ़ियों से सहित महा-मनोहर एवं सुखद था। इसका विस्तार ११॥ योजन प्रमाण अर्थात् ४६ कोश था। क्रमशः १. चैत्यभूमि, २. खातिका, ३. लता भूमि, ४. उपवन भूमि, ५. ध्वजा भूमि, ६. कल्पांग भूमि, ७. गृह भूमि, ८. सद्गण भूमि तथा ९., १०., ११. ये तीन पीठिका भूमि इस प्रकार ११ भूमियों से युक्त था। (ह० वं० पु०) अन्तिम कटनी के मध्य सुवर्णमय सिंहासन पर अन्तरिक्ष विराजमान भगवान की इन्द्र ने अतिशय वैभव के साथ अष्ट प्रकारी पूजा की। १ हजार आठ नामों से स्तवन किया एवं पवित्र भाव से नमस्कार कर सातिशय पुण्यार्जन कर ज्ञान कल्याणक महोत्सव मनाया। तत्पश्चात् राजा, महाराजा, मंडले-श्वर आदि नर-नारियों ने यथाशक्ति यथाभक्ति भगवान की सर्वज्ञता की पूजा की।

समवशरण—

एकादश भूमियों से युक्त समवशरण में अन्तिम तीन कटियों से युक्त गंधकुटी के मध्य में भगवान अजितनाथ स्वामी रत्नखचित सुवर्णमय सिंहासन पर चार अंगुल अधर विराजमान थे। उनके चारों ओर १२ कोठों में क्रमश: १. गणधर एवं ऋद्धिधारी आदि मुनिराज, २. कल्पवासिनी देवियाँ, ३. आर्यिकाएँ-मनुष्यनियाँ, ४. ज्योतिषी देवों की देवियाँ, ५. व्यंतर देवियाँ, ६. भवनवासिनी देवियाँ, ७. भवनवासी देव, ८. व्यन्तर देव, ९. ज्योतिष्क देव, १०. कल्पवासी देव, ११. मनुष्य, चक्रवर्ती, विद्याधरादि, १२. वें हाथी, घोड़ा, मृग, सर्प, मयूर, बिल्ली, चूहा आदि तिर्यञ्च प्राणी बैठे थे। मण्डप की शोभा आदिप्रभु के समान ही थी। अष्ट प्रातिहार्यादि विभूति उसी प्रकार थी। किन्तु यक्ष महायक्ष और यक्षी रोहिणी (अपराजिता) थी। तपकाल १ पूर्वांग कम १ लाख पूर्व था। केवलज्ञान स्थान सहेतुक वन में सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे था। आप समवशरण में पद्मासन विराजमान थे।

समवशरण में सामान्य केवली २०००० थे, ३७५० पूर्वधारी. २१६०० पाठक-उपाध्याय साधु, १२४५० विपुलमति मन: पर्यय ज्ञान धारी, २०४०० विक्रिद्धिधारी, ९४०० अवधिज्ञानी थे। १२४०० वादी थे। सिंहसेन प्रथम गणधर को लेकर ९० गणधर थे। सब मिलाकर १,०००९० (एक लाख नब्बे) थे। मुख्य गणिनी आत्मगुप्ता या प्रकुब्जा थीं, सम्पूर्ण आर्यिकाएँ ३,३०००० (तीन लाख तीस हजार) थीं। प्रथम श्रोता श्रावक सत्यभाव को लेकर ३ लाख श्रावक और ५ लक्ष श्राविकाएँ थीं। (भगवान ऋषभदेव के काल से ५० लाख करोड़ सागरोपम और १२ लाख पूर्व बाद अजितनाथ का जन्म हुआ।)

इस प्रकार द्वादश गणों से परिवेष्टित भगवान ने आत्मा, संसार, मोक्ष और उनके कारण—आस्रव-बंध एवं संवर, निर्जरा का निरूपण किया। भव्यों को उपेयतत्त्व और उपायतत्त्व का प्रतिबोध दिया। विशदरूप में अनेकान्त सिद्धान्त को स्याद्वाद शैली से निरूपित कर नय-प्रमाणों का विश्लेषण किया। असीम-सातिशय पुण्य से इनका यश अखण्ड रूप से आर्यखण्ड में व्याप्त हुआ। शत्रु-मित्र में समभाव था इसीसे महान विद्वानों, यतियों से स्तुत्य थे। इन्द्र भी जिनके गुणानुवाद में अपने को असमर्थ मानता था, बृहस्पति भी सहस्र जिह्वाओं से भी हार

मान चुका हो तो भला उनकी गुणगरिमा का क्या ठिकाना ? अजित नाम सार्थक था, प्रथम देशना सहेतुक वन (अयोध्या के निकट) में देकर इन्द्र की प्रार्थना के बाद समस्त आर्यखण्ड में विहार कर उभय धर्म–यति धर्म और श्रावक धर्म का उपदेश किया। १२ वर्ष कम १ पूर्वांग पर्यन्त सर्वज्ञता प्राप्त कर धर्म वर्षण किया। अन्त में १ माह आयु का अवशिष्ट रहने पर आप देशना का परित्याग कर श्री सम्मेद शिखर महागिरिराज पर पधारे। धवलदत्त कूट पर योगनिरोध कर ध्यानस्थ हो शेष अघातिया कर्मों की क्षार उड़ाने में दत्तावधान हुए।

समुद्घात—

मूल शरीर का त्याग न करके आत्म-प्रदेशों का बाहर निकलना समुद्घात कहलाता है। जिन केवलियों की आयु कर्म की स्थिति से नाम, गोत्र और वेदनीय की स्थिति अधिक होती है वे केवली उन कर्मों की स्थिति को आयु के समान करने के लिए समुद्घात करते हैं। इसे केवली समुद्घात कहते हैं। अस्तु भगवान ने भी दण्ड, प्रतर, कपाट और लोक पूरण रूप समुद्घात कर चारों कर्मों को समान किया। इसमें ८ समय मात्र काल लगता है क्योंकि जिस क्रम से आत्म-प्रदेश निकलते हैं उसी प्रकार पुनः संकुल हो शरीर प्रमाण हो जाते हैं। इस समय प्रभु की असंख्यात गुणी निर्जरा हो रही थी। उन्होंने सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती नामक तृतीय शुक्ल ध्यान द्वारा सम्पूर्ण योग निरुद्ध किये और असंख्यात गुणी आत्म-विशुद्धि प्रति समय बढ़ायी।

निर्वाण कल्याणक—

कर्म का राज्य सर्वथा निष्पक्ष होता है। भगवान के मुक्ति पाने के पहले ही उनके ७०१०० मुनिराज सर्वज्ञता प्राप्त कर सिद्ध परमेष्ठी हो गये। श्री अजितनाथ स्वामी ने भी चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन प्रातःकाल रोहणी नक्षत्र में "व्युपरतक्रियानिवृत्ति" चौथे शुक्ल ध्यान के बल से शेष ४ अघातिया कर्मों का समूल नाश किया और "अ इ उ ऋ लृ" इन पाँच लघ्वक्षरों के उच्चारण में जो समय लगे उतने ही समय मात्र में श्री सिद्ध क्षेत्र में सिद्ध शिला पर जा विराजे। उसी क्षण सुरासुर मोक्ष-कल्याणक महोत्सव मनाने अपने-अपने वैभव के साथ आये। भगवान की शुद्धात्मा मुक्ति को प्राप्त हो गयी, शरीर भी कपूर की

भांति उड़ गया, तो भी उनका दाह संस्कार अवश्य होना चाहिए, यह सोचकर इन्द्र ने नियोग कर पुण्यार्जन का निश्चय किया। अग्निकुमार जाति के देवों के मुकुटों से उत्पन्न अग्नि द्वारा दाह संस्कार किया। अनन्तर वृहद् निर्वाण पूजा कर रत्नमयी दीप जलाये, निर्वाण लाडू चढ़ाया एवं हर्षातिरेक से नाना प्रकार के नृत्यादि कर स्वर्ग को गये। उसी प्रकार मर्त्यलोकवासी जन-समूह ने भी दीपार्चना, मोदकार्चनादि कर प्रभु की भस्म को मस्तक पर चढ़ाया। अष्ट द्रव्य से निर्वाण पूजा कर महोत्सव मनाया। भगवान कायोत्सर्ग से मुक्ति सिधारे।

आपके संघस्थ २६०० साधु सौधर्म से ऊर्ध्व ग्रैवेयक पर्यन्त विमानों में उत्पन्न हुए अनुत्तर विमानों में २०००० ऋषीश्वर पधारे। आपके साथ १००० मुनि मोक्ष पधारे। इनके काल में ८४ अनुबद्ध केवली हुए। अन्य आचार्यों के अनुसार १०० अनुबद्ध केवली हुए। ५० लाख करोड़ सागर और १ पूर्वांग प्रमाण काल आपका तीर्थ प्रवर्तन समय रहा। आपके काल में सगर चक्रवर्ती, बलि नामक द्वितीय रुद्र और प्रजापति कामदेव महापुरुष हुए। इनका वैभवादि पूर्व के समान ही था। इस प्रकार द्वितीय तीर्थङ्कर श्री अजितनाथ ने तीर्थङ्करत्व गोत्र का उत्तम फल मुक्ति प्राप्त किया। इस चरित्र के पाठक अध्येता को भी उसी का साधक पुण्य संचय होता है।। श्री अजित प्रभु की जय।।

चिह्न 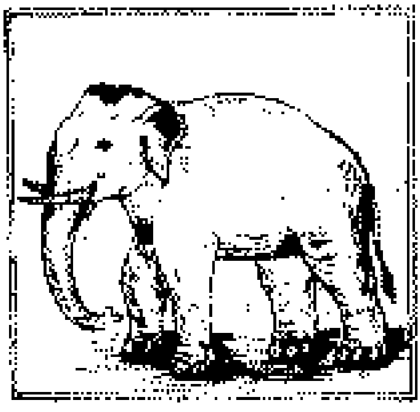 हाथी

संक्षिप्त प्रश्न—

१. भगवान अजितनाथ कहाँ से च्युत हुए ?
२. आपके माता-पिता और जन्म नगरी का क्या नाम है ?
३. आपका वंश और गोत्र क्या है ?
४. भगवान का प्रथम पारणा किसने कराया ?
५. आपको सर्वज्ञता कहाँ प्राप्त हुयी ?
६. आपके समवशरण में कितने गणधर थे ?
७. मुख्य श्रोता कौन है ?
८. छद्मस्थ काल कितना है ?
९. भगवान आदीश्वर के कितने वर्ष-काल बाद हुए ?
१०. किस क्षेत्र से मुक्त हुए ?
११. आपके साथ कितने लोग मुक्त हुए ?
१२. आपके समकालीन कौन-कौन महापुरुष हैं ?
१३. आपका राज्य काल कितना है ?
१४. आपका विवाह हुआ या नहीं ?
१५. देशना काल कितना है ? प्रथम देशना—उपदेश कहाँ हुआ ?

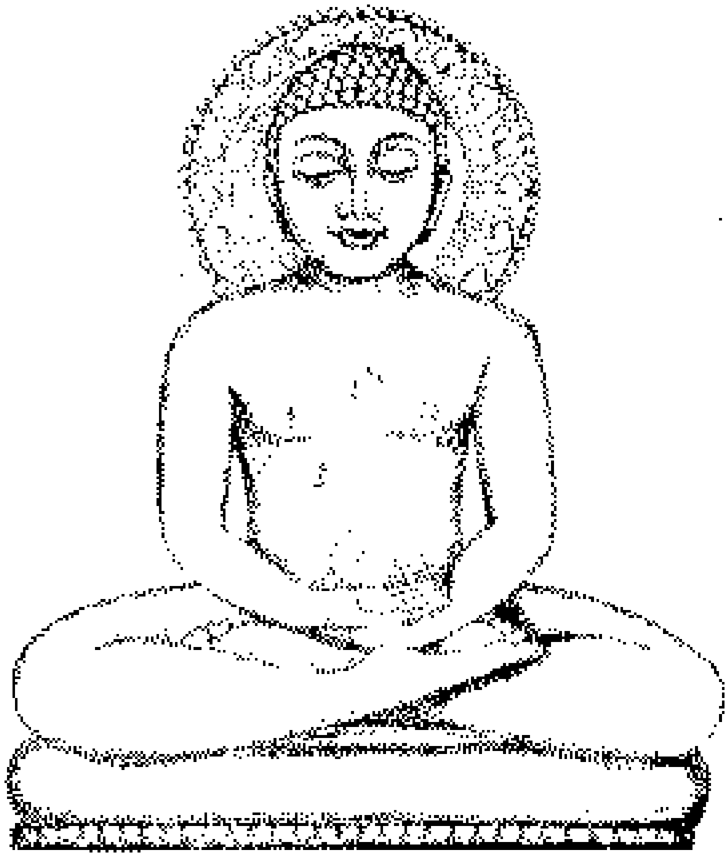

३–१००८ श्री संभवनाथ जी

पूर्वभव —

संसार अनादि है अनन्त काल तक चलेगा । परन्तु ज्ञानी का संसार अनादि शान्त है । उसकी दृष्टि ही उसके दुःखों का अभाव करती है । ज्ञानी ही ज्ञान का स्वाद जाने । जिस समय उसके अनुभव में सारासार का भेद आता है, उसी क्षण वह 'सार' भूत तत्त्व के अन्वेषण में लग जाता है । पूर्व विदेह के कच्छ देश की नगरी क्षेमपुर का महाराजा विमल वाहन संसार, शरीर, भोगों से विरक्त हो विचारने लगा, "अहो मोह का माहात्म्य यह जीव मृत्यु की तीक्ष्ण दाढ़ों के बीच रहकर भी जीवन इच्छा की डोरी से बंधा रहना चाहता है, अशरण भूत आयु को ही शरण रूप समझता है और आशा रूपी तीव्र ताप से संतप्त हो विषय भोग नदी के जीर्ण-शीर्ण पुराने तटों पर खड़े नाशोन्मुख वृक्षों की छाया चाहता है ।" कितना घोर अंधाकार है यह । क्या इस विश्व में कुछ अभय रूप है ? कोई शाश्वत शरण है ? हाँ है, वैराग्य मात्र

अभय है और एक मात्र जिन धर्म ही पालक शरणभूत है। महाराजा विमल वाहन ने क्षणभंगुर जीवन में अमर आत्मा की खोज करने के विचार से नश्वर राज्यविभूति को अपने पुत्र विमलकीर्ति को प्रदान किया और स्वयं ने स्वयंप्रभ जिनेन्द्र से दीक्षा लेकर घोर तप, कठोर साधना से मोहमल्ल की जड़ खोदने में दत्तावधान हो गये। शास्त्राध्ययन कर ११ अङ्गों का समग्र रहस्य ज्ञात किया। तत्त्वज्ञान से सोलह १६ कारण भावनाओं को भाकर सम्यग्दर्शन को पुष्ट किया जिससे पुण्य का अंतिम फल "तीर्थङ्कर गोत्र" बंध किया। समाधि पूर्वक शरीर त्याग २३ सागर की आयु के साथ प्रथम सुदर्शन ग्रैवेयक में सुदर्शन विमान में महाऋद्धि सम्पन्न अहमिंद्र हो गये। शरीर ६० अंगुल मात्र था, शुक्ल लेश्या थी, साढ़े ११ मास के बाद श्वास लेते थे, तेईस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार था, प्रवीचार-स्त्री संभोग रहित परम सुख-भोग था, ७वें नरक पर्यन्त अवधिज्ञान था। वहीं तक गमन करने की शक्ति थी। वहीं तक शरीर कान्ति और विक्रिया का प्रसार हो सकने की योग्यता थी अणिमा महिमा आदि ऋद्धियों से सम्पन्न थे, विचित्र है तप का महात्म्य।

गर्भावतरण—

पतझड़ हो चुका था। वनस्पति नूतन शृंगार करने की तैयारी में संलग्न थी। बसंत सज-धज के साथ भू-मण्डल पर विचरण करने की तैयारी में झूम रही थी। चारों ओर हर्ष छाया था। उधर धर्म क्षेत्र में उल्लास भरा अष्टाह्निका महापर्व आ उपस्थित हुआ। श्रावस्ती नगरी में चारों ओर आनन्द छाया था। उल्लास पूर्ण राज महल में चारों ओर खुशियाँ छायीं थी। महाराज दृढराज अपनी महारानी सुषेणा के साथ इक्ष्वाकु वंश की श्री-शोभा को बढ़ा रहे थे। काश्यप गोत्र वृद्धि की प्रतीक्षा में थे। दम्पत्ति वर्ग का समय आमोद-प्रमोद के साथ धर्म ध्यान पूर्वक यापित हो रहा था। प्रतिदिन प्रातः मध्याह्न और सायंकाल ३॥ करोड़ ३॥ करोड़ रत्नों की वृष्टि होने लगी। यह रत्न-धारा लगातार ६ माह से समस्त राजा-प्रजा को विस्मित किये हुए थी। यद्यपि राजा इसके रहस्य को समझ रहे थे तो भी मौन थे। आकाश से होने वाली रत्न वृष्टि ने सबको सन्तुष्ट कर दिया था। खोजने पर भी याचक नहीं थे।

छह माह पूर्ण हुए, रत्नधारा चालू थी ही सायंकाल महारानी अर्हद्भक्ति कर सिद्ध प्रभु का ध्यान कर शैया पर आसीन हुयीं। आज महारानी सुषेणा विशेष प्रफुल्ल और हर्षित थीं। रात्रि के पिछले प्रहर में उन्होंने माता मरुदेवी की भाँति १६ स्वप्न देखे और अन्त में अपने मुख में गज प्रवेश करते हुए देखा। तत्क्षण मांगलिक वादित्र और जयनाद के साथ निद्रा भंग हुई। स्नानादि दैवसिक क्रिया कर महारानी सभा में प्रविष्ट हो महाराज दृढराज या जितारि से 'स्वप्न' निवेदन कर फल जानने की इच्छा व्यक्त की। 'तीर्थङ्कर' पुत्र का अवतार जानकर हर्षातिरेक से फूली न समायी। अतः फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को मृगशिर नक्षत्र में प्रातः स्वप्नों के अनन्तर अहमिन्द्र लोक की आयु पूर्ण कर विमल वाहन का जीव दर्पण की स्वच्छ पेटी के समान निर्मल, देवियों द्वारा शोधित गर्भ में अवतरित हुए।

चारों ओर आकाश मण्डल, देव, देवियाँ, इन्द्र इन्द्राणियों से भर गया। जय-जयनाद से दिक् मण्डल व्याप्त हो गया। महाराज जितारि बढ़ो, नंदो, वृद्धि करो आदि ध्वनि चहुँ ओर गूंज रही थी। इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़, नगरी की तीन प्रदक्षिणा दे आंगन में आ पहुँचा। आनन्द से माता-पिता की पूजा कर आनन्द नाटक किया। नाच-गान कर देवियों को माता की सेवा में नियत कर स्वर्ग लोक चला गया। कुबेर पूर्ववत रत्न वर्षा करता रहा।

आमोद-प्रमोद, तत्वचर्चा, धर्मकथालाप, प्रश्नोत्तरों से मनोरंजन कर देवियाँ माँ की सेवा करने लगीं। गर्भ बढ़ने पर भी उदर की त्रिवली भंग नहीं हुयी। न माँ को किसी प्रकार गर्भ भार की अनुभूति ही हुयी। अपितु स्मरण शक्ति, धारणा शक्ति, अवधान शक्ति अत्यन्त बलिष्ठ हो गई। वह स्वयं शान्त रहकर समस्त प्राणियों की शान्ती चाहने लगी। किसी को किसी प्रकार कष्ट न हो यही भावना रहती। शनैः शनैः नवमास पूर्ण हो गए।

जन्मावतरण—

शरद्काल आया। अपना पूर्ण वैभव बिखेर दिया। भू-मंडल स्वच्छ हो गया। गगन मण्डल निर्मल हो गया। चहुँओर काश के पुष्प हंसने लगे, मानों वर्षा की वृद्धता को चिढ़ाते हों अथवा वर्षाकालीन कीचड़-कांदे से त्रसित जनों का मनोरंजन ही करना चाहते हों। नद-नदी स्वच्छ

जल प्रपूरित हो गये। भावी सुख-शान्ति का मंगलमय सन्देश लिए दिशाएँ निर्मल हो गईं। आज कार्तिक पूर्णिमा है, आकाश में पूर्ण चन्द्र का उदय हुआ और भू-मण्डल पर चन्द्रमा के योग में मृगसिर नक्षत्र के रहते भगवान का जन्म हुआ। भू-अम्बर नृत्य, संगीत एवं जयध्वनि से गूंज उठा। भगवान की शरीर दीप्ति **तपाये हुए सुवर्ण के समान कञ्चनमय** थी, उधर सुमेरु की जम्बूनद कान्ति, पाण्डुक शिला पर विराजमान भगवान की शरीर द्युति से सुमेरु की कान्ति अनुपम हो गई। इन्द्र ने आदिप्रभु के समान ही इन्द्राणी, देव-देवियों सहित जन्माभिषेक किया, शची ने वस्त्रालंकार धारण कराये तथा अनूठे वैभव से श्रावस्ती नगरी में आकर माता-पिता को बालक प्रभु सौंप दिया।

इन्द्र द्वारा स्तुतिकरण एवं चिह्न—

जन्म कल्याणक के अन्त में इन्द्र बड़ी भक्ति विनय और श्रद्धा से नतशिर स्तवन करने लगा, "हे देव! तीर्थंङ्कर नामकर्म के उदय के बिना ही, केवल आपके जन्म लेने से त्रैलोक्यवर्ती समस्त जीवों को सुख मिला है, शान्ति प्राप्त हुयी है अत: आप "संभवनाथ" हैं। हे संभवनाथ! लक्षण और व्यञ्जनों से शोभित आपका शरीर कल्पवृक्ष की उपमा धारण करता है, आजानु लम्बी भुजाएँ शाखाओं के सदृश शोभ रही हैं। देवताओं के नेत्र रूपी भ्रमर आसक्त हो तृप्त हो रहे हैं। कपिलादि मतों का तिरस्कार कर जिस प्रकार स्याद्वादवाणी का तेज सुशोभित होता है उसी प्रकार आपका तेज सबके तेज को तिरस्कृत कर दीपित हो रहा है। आप अपने जन्मजात मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान से जगत का हित कर रहे हैं। हे देव, समस्त लोक आपकी गरिमा के समक्ष नतमस्तक हो रहा है। इस प्रकार नाना प्रकार गुणस्तवन कर इन्द्र ने आनन्द नाटक किया। भगवान के दांये अंगुष्ठ पर स्थित अश्व के चिह्न को देखकर भगवान का लाञ्छन **"घोटक" (घोड़ा)** निश्चित किया। इस प्रकार जन्म कल्याणक महोत्सव मना कर इन्द्र देवी-देवताओं के साथ अपने स्वर्गधाम को चला गया।

माता-पिता के साथ समस्त श्रावस्ती के नर-नारियों ने भी प्रभु का जन्मोत्सव मनाया। राजा ने सबको अभयदान और किमिच्छक दान देकर संतुष्ट किया। भगवान अजितनाथ स्वामी के तीस लाख करोड़

सागर बीत जाने पर आपका जन्म हुआ। आपकी आयु ६० लाख पूर्व की थी। शरीर की ऊँचाई ४०० धनुष थी।

आयु का विभाजन—

चौथाई भाग अर्थात् १५ लाख पूर्व कुमार काल में व्यतीत हुए। ४४ लाख पूर्व और ४ पूर्वांग प्रमाण काल पर्यन्त राज्य शासन कर प्रत्येक क्षण में देवों द्वारा प्राप्त हुए भोगोपभोग के सुखों का अनुभव किया। १५ लाख पूर्व की वय में विवाह सम्बन्ध कर दाम्पत्य जीवन का आनन्दानुभव किया। भोगों में आपाद मस्तक तल्लीन पंचेन्द्रिय विषयों की तृप्ति में मस्त हुए भगवान का ४४ लाख पूर्व और ४ पूर्वांग क्षणमात्र के समान व्यतीत हो गया। इनके राज्य में प्रजा सर्व सुख और सर्व गुण सम्पन्न थी।

वैराग्य—

शरदकाल था। नभ में मेघराज अठखेलियाँ कर रहे थे। कोई आते कोई जाते, इधर-उधर दौड़ लगा रहे थे। भगवान संभव प्रभु मनोरंजन के राग में डूबे इन चलचित्रों को निहार रहे थे। एकाएक मेघों का समूह विलीन हो गया मानों वायु के झोंकों की मार से भया-तुर हो छुप गया हो। प्रभु का मन इनकी दीनता से तिलमिला उठा, राग-विराग में बदल गया। "संसार का असार रूप अब सामने था। धन, यौवन, रूप, लावण्य और जीवन भी इन्हीं मेघों के समान एक दिन, न जाने कब विलीन हो जायेंगे" यह विचार कर उनकी सूक्ष्म दृष्टि किसी स्थायी वस्तु की ओर जा लगी। हाँ सत्य है मेरी 'आत्मा' अवि-नाशी है, बस उसे ही पाना चाहिए। वह इन भोगों में नहीं मिल सकती इनके त्याग में मिलेगी। कर्मों की मार से घायल प्राणी चारों गतियों में गिरता-पड़ता भटकता है। इस अनाथ दशा का नाश करूँगा अब। इस प्रकार दृढ़ वैराग्य से युक्त प्रभु के विचारों का पोषण करने ब्रह्मलोक के अन्त भाग में निवास करने वाले लौकान्तिक देवगण आकर समर्थन करने लगे। "हे प्रभु! आप धन्य हैं, आपका विचार श्लाघ्य है, यही मोक्ष का उपाय है, आप ही महान् हैं।" मृत्यु के नाश को दृढ़ प्रतिज्ञ भगवान के वैराग्य भावों का समर्थन कर उन सारस्वतादि देवों ने अपना 'लौकान्त' नाम सार्थक किया और अपने स्थान को चले गये।

भगवान ने सम्यक् ज्ञात किया कि संसारी जीवों के अन्दर रहने वाला आयु कर्म ही यमराज है। अन्य मतावलम्बी भ्रम से अन्य को

यमराज कहते हैं। यह आयु रूपी "यम" अनन्तों बार जीव को मारता है, इस शरीर में रहकर इसी का नाश करता है। तो भी अज्ञानी प्राणी इसी शरीर में रहने की इच्छा करता है। नीरस विषयों को सरस मानकर सेवन करता है। इष्टानिष्ट बुद्धि कर संसार वृद्धि करता है। धिक्कार है इस उपद्रव को। आत्मा का समागम ही नित्य है, वही सुख है, अपना है, बाकी सब 'पर' है अनित्य है, दुःख ही दुःख है। इसकी इच्छा का त्याग ही सम्यग्ज्ञान रूपी लक्ष्मी को पाकर आत्म-स्वभाव में रत होता है। इस प्रकार तत्व चिन्तन कर और लौकान्तिक देवों के चले जाने पर श्री प्रभु ने अपने पुत्र को बुलाया और उसे वैभ्यासम चंचल राज्य लक्ष्मी को सौंप दिया। अर्थात् पुत्र को राज्यभार दे स्वयं वन को जाने के लिए उद्यत हुए।

दीक्षा कल्याणक—

देवेन्द्र को भगवान के वैराग्य की सूचना मिलते देर नहीं लगी। बेतार का तार जा पहुँचा। बस क्या था, इन्द्रराज "सिद्धार्थ" नामा शिविका सजा कर ले आये। समस्त वैभव-परिवार के साथ श्रावस्ती के प्रांगण में आ पहुँचे। प्रभु का दीक्षाभिषेक कर वस्त्रालंकार से सुशोभित कर शिविका में आरूढ़ होने की प्रार्थना की। भगवान सहर्ष पालकी में विराजे। प्रथम सप्त डग भूमि गोचरी राजाओं ने पुनः विद्याधरों ने और अनन्तर देवेन्द्र, देवों ने पालकी उठायी। आकाश मार्ग से शीघ्र ही वे सहेतुक वन में जा पहुँचे। पहले से इन्द्र द्वारा स्वच्छ की हुयी शिला पर पूर्वाभिमुख विराज कर १००० राजाओं के साथ पञ्चमुष्ठि लौंच कर भव बन्धन छेदक दिगम्बरी दीक्षा मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा को अपराह्न काल में ज्येष्ठा नक्षत्र में सद्योजात दिगम्बर रूप धारण कर प्रभु ध्यानारूढ़ हुए। आपने शालवृक्ष जो ४८०० धनुष ऊँचा था के नीचे दीक्षा धारण की थी। एकाग्र मन से उत्पन्न आत्म विशुद्धि से चतुर्थ मनः पर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया। दो दिन का उपवास धारण किया। देव-देवियों ने अत्यन्त समारोह से दीक्षा कल्याणक महोत्सव मनाया और अपने स्वामी इन्द्र के साथ स्वर्ग चले गये।

प्रभु का प्रथम पारणा—

दो दिन तक निश्चल ध्यान लीन रहे। पौषवदी १ को आहार के लिये चर्या मार्ग से नातिमन्द गमन करते हुए प्रभु श्रावस्ती नगरी में

पधारे। वहाँ का राजा सुरेन्द्र सुवर्ण की कान्ति के समान रूप वाला था। उसने चर्या को आते हुए श्री जिन मुनिराज को देखा और दाता के सप्तगुणों से युक्त हो बड़ी श्रद्धा, भक्ति, विनय से प्रभु का पड़गाहन किया। नवधा भक्ति से विधिवत् क्षीर का पारणा कराया। अर्थात् आहार दान दिया। उसी समय विधिदाता, पात्र और द्रव्य की विशेषता के सूचक पंचाश्चर्य हुए। अत्यन्त दैदीप्यमान रत्न वृष्टि साढ़े बारह कोटी पुष्प वृष्टि, गंधोदक वृष्टि, जय-जयध्वनि और मन्द सुगन्ध पवन बहने लगी।

छद्मस्थ काल—

आहार कर प्रभु पुनः शुद्ध मौन से ही ध्यानारूढ़ हुए। शुद्ध बुद्धि के धारक प्रभु चौदह वर्ष पर्यन्त अखण्ड शुद्ध मौन से तपारूढ़ रहे। तपश्चरण रूपी अग्नि में तप-तप कर आत्मा कुन्दन बनने लगी। कर्म कालिमा भस्म हो क्षार बनकर उड़ने लगी। १४ वर्ष काल।

केवलज्ञानोत्पत्ति—

धर्म ध्यान की भूमिका पार कर शालिवृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हुए, प्रभु ने शुक्ल ध्यान में—पृथक्त्व वितर्क में प्रवेश कर क्षपक श्रेणी चढ़ना प्रारम्भ किया तत्क्षण १०वें गुणस्थान से १२वें क्षीण कषाय में एकत्त्व वितर्क शुक्ल ध्यान का आलम्बन ले प्रथम उपान्त्य समय में कर्मों के राजा मोहमल्ल का विनाश कर अन्त समय में एक साथ ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय को आमूल भस्म कर सर्वज्ञता प्राप्त की अर्थात् केवलज्ञान उत्पन्न किया। १४ वर्ष मौन साधना के बाद कार्तिक वदी चौथ के मृगशिर नक्षत्र में शाम के समय उसी सहेतुक वन में पूर्ण-ज्ञान प्रकट किया।

केवलज्ञान कल्याणक—

कोटि सूर्यों से भी अधिक दीप्तिवान प्रभु का परमौदारिक शरीर अद्भुत चमत्कृत होने लगा। नवीन कदलीवृक्ष की कोंपलों के समान हरित वर्ण हो गया। उसी समय सुरेन्द्र की आज्ञा से उनके साथ-साथ देव-देवी आदि समस्त परिवार ने आकर ज्ञान-कल्याणक महोत्सव मनाया। कुबेर ने अद्भुत समवशरण रूप सभा-मण्डप तैयार किया जिसके मध्य तीन मेखलायुत वेदी पर सुवर्ण सिंहासन रचा और उस

पर चार अंगुल अधर आकाश में श्री प्रभु को विराजमान कर १००८ नामों से इन्द्र ने स्तुति की। नाना द्रव्यों से अष्ट प्रकारी पूजा की। सुगंधित पुष्प चढ़ाये। तदनुसार राजा सुरेन्द्र दत्तादि ने भी रत्नादि से अष्ट द्रव्यों से पूजा कर केवलज्ञान महोत्सव मनाया।

समवशरण वैभव—

चारों प्रकार के देव-देवियों से घिरे हुए प्रभु ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे छोटे-छोटे पर्वतों से वेष्ठित सुमेरु पर्वत। १२ सभाएँ थीं। अष्ट प्रातिहार्य और दश अतिशयों से युक्त थे। चारुषेण प्रथम गणधर को लेकर १०५ गणधर थे। समवशरण का विस्तार ११ योजन अर्थात् ४४ कोश प्रमाण था। उनके २१५० पूर्वधारी मुनि थे, १२९३०० उपाध्याय परमेष्ठी–शिक्षक या पाठक थे, ९६०० अवधिज्ञानी, १५००० केवली, १९८०० विक्रियर्द्धिधारी थे, १२१५० विपुलमती मनः पर्यय ज्ञानी थे, समस्त प्रतिवादियों को जीतने वाले बारह हजार (१२०००) वादियों की संख्या थी। इस प्रकार समस्त २००१०५ दो लाख एक सौ पांच मुनिराज थे। धर्मार्या (धर्म श्री) मुख्य-गणिनी को लेकर ३३०००० (तीन लाख तीस हजार) आर्यिकाएँ थीं, सत्यवीर्य मुख्य श्रोता को लेकर ३००००० (तीन लाख) श्रावक और ५००००० (पांच लक्ष) श्राविकाएँ थीं। असंख्यात देव-देवियां और संख्यात तिर्यञ्च थे। गंधकुटी के मध्य प्रभु के आजू-बाजू त्रिमुख यक्ष और प्रज्ञप्ति यक्षी थी। दोनों ओर ३२-३२ यक्ष चमर ढोरते थे। चौंतीस अतिशय और ८ प्रातिहार्यों से शोभित थे। दिव्य-ध्वनि रूपी चन्द्रिका से सबको प्रसन्न करते थे। नमस्कार करने वाले भव्य-कमलों को सूर्य के समान प्रफुल्ल करने वाले थे। कलंक रहित १८ दोषों से सर्वथा रहित थे। मुनिगण रूपी ताराओं से वेष्टित निष्कलंक चन्द्रमा थे। काम शत्रु के हन्ता, सकल ज्ञान धारी थे। पूर्ण चारित्र के धारी तीनलोक से सेवित थे। बाह्याभ्यंतर दोनों अंधकारों का नाश कर बाह्याभ्यंतर उभय लक्ष्मी के धारक थे। मेघों के समान धर्म वर्षण कर समस्त प्राणियों का हित करने वाले थे। इन्द्र द्वारा प्रार्थित प्रभु ने समस्त आर्य खण्ड में विहार कर भव्य रूपी चातकों को अपनी दिव्य-ध्वनी द्वारा धर्मामृत वर्षण कर तृप्त किया।

योग निरोध—

१० लाख करोड़ सागर ४ पूर्वाङ्ग वर्ष पर्यन्त आपने धर्म वर्षा कर जगती का उद्धार किया (तीर्थ प्रवर्तन काल रहा)। आयु कर्म का

१ मास शेष रहने पर देशना बन्द कर आप श्री सम्मेद शैल की दत्तधवल कूट पर आ विराजे। कुबेर ने भी समवशरण विघटित कर दिया। १००० मुनियों के साथ प्रतिमा योग धारण किया। तीसरे शुक्ल ध्यान "सूक्ष्म क्रिया निवृत्ति का आश्रय ले शेष अघातिया कर्मों का नाश करने लगे। अन्त में चैत्र शुक्ला षष्ठी के दिन जन्म नक्षत्र मृगसिर में सूर्यास्त समय चतुर्थ व्युपरत क्रियानिवृत्ति ध्यान का भी उलंघन कर पंच ह्रस्व स्वर उच्चारण काल मात्र रह कर अष्ट भू-पर एक समय मात्र में जा विराजे अर्थात् अनन्त आत्म गुणों का प्रकाश कर अक्षय अविनाशी मुक्तिधाम को सिधारे।

मोक्ष कल्याणक—

पाँचवें ज्ञान के स्वामी, पाँचवीं गति को प्राप्त, पाँचवें कल्याण—मोक्ष कल्याणक मनाने आये देव, सुरेन्द्र और असंख्य देवियों ने परमोत्सव किया। दीप जलाये, मोदक चढ़ाया, अग्निकुमार देवों ने अपने मुकुट में जड़ित रत्नों की कान्ति से अग्नि प्रज्वलित कर अन्तिम संस्कार किया। सबों ने भस्म मस्तक पर चढ़ायी। अपने को धन्य माना।

छठवें से १४वें गुण स्थान के स्वामी अनुक्रम से इनका उल्लंघन कर सिद्धावस्था को प्राप्त, भगवान संभवनाथ जीव मात्र का कल्याण करें। कायोत्सर्ग आसन से मुक्त हुए।

विशेष ज्ञातव्य विषय—

१७०१०० (एक लाख सत्तर हजार एक सौ) मुनि प्रभु से पहले ही मोक्ष गये। ९९०० सौधर्मादि ऊर्ध्व ग्रैवेयक पर्यन्त गये। २०००० अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए। १००० सह मुक्त हुए अर्थात् भगवान के साथ मोक्ष गये। ८४ अनुबद्ध हुए, दूसरे आचार्यों के मतानुसार १०० हुए। अजितनाथ से इनका मोक्ष गमन अन्तराल काल १० लाख करोड़ सागर प्रमाण है। शम्-शान्ति के प्रतीक भगवान हमें भी कषायों का निग्रह कर शान्तिमय बनने की क्षमता प्रदान करें। अर्थात् निमित्त हों।

चिह्न 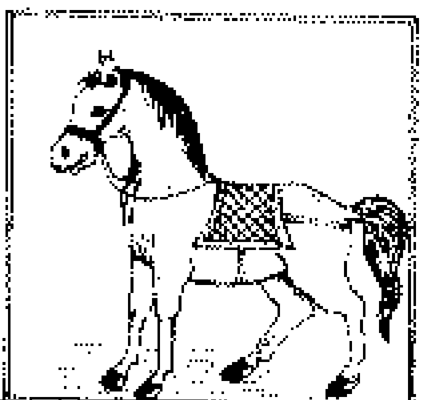 घोड़ा

अथ प्रश्नावली—

१. तीसरे तीर्थङ्कर का नाम क्या है ?

२. संभवनाथ नाम की सार्थकता क्या है ?

३. इनका जन्म किस नगरी में हुआ ?

४. संभवनाथ के माता-पिता का नाम क्या है ?

५. तीसरे भगवान के समवशरण का विस्तार कितना है ?

६. दीक्षा पालकी का नाम क्या है ?

७. भगवान ने किस समय दीक्षा धारण की ?

८. 'सर्वज्ञ' का अर्थ क्या है ?

९. दिव्य-ध्वनि का मुख्य विषय क्या है ?

१०. इनके समवशरण में कुल कितने केवली और गणधर थे ?

११. प्रथम पारणा कहाँ हुआ ?

४–१००८ श्री अभिनन्दन नाथ जी

सत्य तत्व प्रतिपादन से अविरोधी दिव्य-ध्वनि जिनकी ।
सुनकर जन आनन्दित होते, स्याद्वाद वाणी उनकी ॥१॥
नमन करूँ शत्-शत् चरणों में, हरें कलुष मेरे मन का ।
लिखकर जीवन चरित्र उन्हीं का, काट सकूं फेरा भवका ॥२॥

गर्भावतरण से पूर्व भव....

"विगल: देह: विदेह:" जहाँ से शरीर का सर्वथा नाश कर सतत् भव्य जन, मुक्ति प्राप्त करते रहते हैं वह विदेह क्षेत्र है । पूर्व विदेह में सीता नदी प्रवाहित होती है । इसके उत्तर में ८ नगरियाँ हैं और ८ ही दक्षिण भाग पर स्थित हैं । उनमें से एक मंगलावती देश में रत्नसंचय नगर था । इसका पालक राजा 'महाबल' था । राजा षड्गुणों से सम्पन्न सानन्द राज्य करता था । सरस्वती, कीर्ति और लक्ष्मी यद्यपि सपत्नी के सदृश हैं किन्तु उस राजा के तीनों प्रेम से निवास करती थीं ।

शरीर कल्पलता के समान था। सुन्दरतम अनेक रानियाँ थीं। अटूट भोग पदार्थ थे। अनेक भोगों में रत था। किसी दिन उसे वैराग्य हुआ और अपने पुत्र धनपाल को राज्यभार प्रदान कर श्री विमल वाहन गुरु के समीप जा दीक्षा धारण की। मुनि होकर वह ग्यारह अंग का पाठी हो गया। उसने दृढ़ता से सोलह कारण भावनाओं का चिन्तन किया और तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध कर आयु के अवसान में समाधिपूर्वक शरीर त्याग प्रथम विजय नामक अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुआ। तेतीस सागर की उत्कृष्ट आयु थी। प्रवीचार रहित अनुपम सुख भोगता था। यहाँ के शरीर, श्वासोच्छ्वास, आहार आदि का काल वहाँ के अनुसार ही था। क्रमश: जब आयु के छह माह शेष रह गये तो तीर्थङ्कर प्रकृति की सत्ता का चमत्कार होने लगा।

शुद्ध सुवर्णवत् आत्म सुख का अनुभव करते हुए भी जिनभक्ति और तत्त्व चिन्तन में ही रत रहता था। शान्त चित्त से वैराग्य रूप सम्पत्ति का ध्यान करता था। सतत् सकल कर्म विनाश का चिन्तन करता। इधर भरत क्षेत्र में अयोध्या नगरी की शोभा बढ़ने लगी। यहाँ का राजा स्वयम्बर अपनी पटरानी सिद्धार्था के साथ राजकीय सुखों का अनुभव करते थे। दोनों दम्पत्ति गृहस्थाश्रम समस्त क्रियाओं का पालन करते हुए उसके फल (पुत्र) की प्रतीक्षा करने लगे। सहसा उनके आंगन में त्रिकाल रत्नवृष्टि प्रारम्भ हुयी और लगातार छह माह होती ही रही।

गर्भावतरण—

अनुमान प्रमाण भी प्रत्यक्षवत् वस्तु के यथारम्य का प्रतीक होता है। राजांगण में षट्मास से होती हुयी रत्नवृष्टि से सभी आशान्वित थे कुबेर की उदारता से यह वृष्टि नियमित रूप से होती रही, वैशाख शुक्ला षष्ठी के दिन ६ महीने पूर्ण हुए। इसी रात्रि को सिद्धार्था माँ ने पिछले प्रहर में १६ स्वप्नों के अन्त में विशाल गज को अपने मुख में प्रविष्ट होते देखा। पुनर्वसु नक्षत्र में भगवान गर्भ में आ विराजे। माता सिद्धार्था को मल-मूत्र रजस्वला धर्म स्वभाव से ही नहीं था, फिर गर्भाशय का शोधन विशेष रूप से देवियाँ कर चुकी थीं। स्वर्ग से अति-सुगंधित द्रव्य लाकर गर्भ स्थान को पवित्र बना दिया था। अतः अहमिन्द्र वहाँ से च्युत हो आनन्द से आ विराजा। सिद्धार्था प्रातः पति से स्वप्नों का फल, तीर्थङ्कर होने वाले पुत्र का जन्म जानकर विशेष संतुष्ट हुयी।

राजा भी फूला न समाया । जहाँ देव-देवियाँ परिचारक हों वहाँ के सुख-साधन, ऐश्वर्य का क्या कहना ? निमिष मात्र के समान नव मास पूर्ण हो गये ।

जन्म कल्याणक—

बिना किसी बाधा के माँ ने अपने विशेष पुण्योदय से माघ शुक्ला द्वादशी के दिन आदित्य योग और पुनर्वसु नक्षत्र में उत्तम पुत्र उत्पन्न किया । माँ का पुण्य तो था ही पुत्र का पुण्य उससे भी कई गुणा था जिसने इन्द्रासन कंपित कर दिया और स्वर्ग के १२।। करोड़ बाजों को एक साथ बजा दिया । यही नहीं एक क्षण के लिए नारकियों को भी सुख उत्पन्न किया । अपने देव, देवियों के साथ उसी समय इन्द्र आकर बालक को शचि द्वारा प्रसूति गृह से मंगाकर शचि सहित ऐरावत हाथी पर सवार हो सुमेरू पर्वत पर जा पहुँचा । पाण्डुक शिला पर पूर्वाभिमुख विराजमान कर क्षीर सागर के जल से १००८ कलशों से अभिषेक किया । पुनः देवियों ने इन्द्राणी सहित काषाय जल, सुगंधित जल से अभिषेक कर प्रभु को वस्त्रालंकारों से सज्जित किया । सद्योजात बालक का रूप निरखने को इन्द्र ने १ हजार नेत्र किये उनके सौन्दर्य का क्या पार ? चारों ओर आनन्द छा गया । इन्द्र ने बालक का नाम 'अभिनन्दन' घोषित किया और उसी समय "वानर" का चिह्न भी निश्चित कर दिया । जन्माभिषेक कर अयोध्या आये, आकाशांगण में अनेक प्रकार के हाव, भाव रस युक्त हजार नेत्र और अनेक भुजाएँ बनाकर इन्द्र ने ताण्डव नृत्य कर पुण्यार्जन किया । मायामयी बालक हटाकर बालप्रभु को माता-पिता को प्रदान कर स्वर्ग लौट गये ।

अन्तराल काल—

भगवान संभवनाथ के बाद दश लाख करोड़ सागर व्यतीत होने पर श्री अभिनन्दन स्वामी हुए । इनकी आयु भी इसी में सम्मलित है ।

आयु प्रमाण और शरीर उत्सेध—

इनकी आयु पचास लाख पूर्व की थी । १२।। साढे बारह लाख पूर्व कुमार काल में बीते । शरीर की ऊँचाई ३५० धनुष थी, उदित होते चन्द्र के समान शरीर की कान्ति थी । वे पुण्य के पुञ्ज थे । सूर्य

समान देदीप्यमान थे। अपने गुणों से सबको प्रसन्न करते हुए शोभा और लक्ष्मी की परम वृद्धि की।

राज्यभोग—

कुमार काल पूर्ण होते ही महाराज (पिता) ने राज्यभार उन्हें अर्पण किया। स्वयं वैराग्य से दीक्षा धारण कर आत्महित में अनुरक्त हुए। अभिनन्दन राजा अपनी प्रिय पत्नी एवं पुत्रादि के साथ निरासक्त भाव से प्रजा पालन करने लगे। इनके शासन में सब आनन्द से सुखी जीवन बिताते थे। जब मोक्ष लक्ष्मी भी अपने तीक्ष्ण कटाक्षों से इन्हें अनुरंजित करने को उद्यत थी तो फिर राज्यलक्ष्मी यदि अनुराग करे तो क्या आश्चर्य है। ये क्षायिक सम्यग्दृष्टि, तीर्थंकर पुण्य कर्म के नेता थे। आत्म स्वरुप सम्पत्ति इन्हें प्राप्त थी, फिर अन्य कौनसी सम्पत्ति रह गई थी ? अर्थात् कोई नहीं।

वे कुमार अवस्था में धीर और मनोहर थे, राज्यावस्था में धीर एवं उद्धत और तप काल में धीर और शान्त थे। अन्त अवस्था में धीर और उदात्त थे। कीर्ति से अनेकों शास्त्र, वर्णाक्षरों से गीत भरे थे। लोगों की दृष्टि में प्रेम भरा था, गुणों की विवेचना में उनका स्मरण होता था। प्रौढ़ता और योगिता के समस्त गुण उनके बाल्य जीवन में ही आ चुके थे, तभी तो इन्द्र सेवक हो गया था। उनके बुद्धयादि सकल गुण स्पर्धा के साथ बढ़ रहे थे। उन प्रभु ने संसार के सारभूत भोगों का उपभोग किया। ३६।। (साढ़े छत्तीस) लाख पूर्व और ८ पूर्वाङ्ग तक राज्य किया।

वैराग्य उत्पत्ति—

शिशिर ऋतु अपने पूर्ण वैभव के साथ भूमण्डल को आवृत्त किये थे। गुलाबी जाडा सबको सुखद प्रतीत हो रहा था। यदा-कदा गगन में मेघ समूह आ जा रहे थे सुहानी वायु बह रही थी। एक समय माघ शुक्ला द्वादशी के दिन वे अपने सुरम्य सतखने महल की छत पर सुख से आसीन् आकाश की शोभा देख रहे थे। सहसा उन्होंने आकाश में बादलों का नगर बना देखा और उसी क्षण वह विलीन भी हो गया। बस, इस दृश्य से उनका आत्म बोध जाग्रत हो गया। वे संसार, शरीर, भोगों की क्षणभंगुरता का चिन्तवन कर आत्म कल्याण का उपाय

सोचने लगे। वे सोचने लगे "यह शरीर यद्यपि अनेकों प्रकार से लडाया गया है, पुष्ट किया गया है तो भी एक दिन अवश्य ही नदी के जीर्ण-शीर्ण किनारे पर खड़े वृक्ष के समान गिर कर मेरा नाश कर देगा। यह लक्ष्मी अवश्य वेश्या के समान पुण्य क्षीण होते ही धोखा देगी। शरीर में रहने का और मरने के हेतु आयु है इसलिए इसका ही नाश करना श्रेष्ठ है। इस संसार की सम्पदाएँ इस आकाश के वन नगर के समान अवश्य नाशवान हैं। इसे तो मूर्ख भी समझ सकता है फिर मेरे जैसे बुद्धिमान को क्या धोखा खाना उचित है ?

लौकान्तिक देवों का आगमन—

बारह भावनाओं के चिन्तन में ध्यानस्थ भगवान को जान कर सारस्वतादि लौकान्तिक देवों का उल्लास बढ़ा। वे उसी क्षण वहाँ आये और प्रभु के निश्चय का समर्थन कर वैराग्य को पुष्ट किया। अथवा अपने जैनेश्वरी दीक्षा के प्रति अनुराग को व्यक्त किया। जो जिसके गुणों को जानता है, वह उन्हीं की प्रशंसा करता है। अतः बड़े भारी वैभव के साथ उन्होंने श्री अभिनन्दन राजा की पूजा कर दीक्षा महोत्सव मनाया और अपनी भवावली को नष्ट किया। इधर लौकान्तिक ऋषि देव गये और उधर से सौधर्मेन्द्र अपनी सकल सेना लेकर 'हस्तचित्रा' नाम की पालकी के साथ आया।

दीक्षा कल्याणक—

नाना रत्नों से अलंकृत शिबिका तैयार कर इन्द्र ने उन प्रभु का प्रव्रज्याभिषेक किया। प्रभु ने भी अपने राज्यभार को अपने पुत्र को अर्पित किया और आत्म-राज्य स्थापन के हेतु वन विहार करने को उद्यत हुए। अर्थात् शिबिका में विराजमान हुए। क्रमशः राजा-महाराजा और इन्द्र, देवों द्वारा वह पालकी उठायी गयी—उग्रोद्यान में लायी गयी। यहाँ पहले से इन्द्र ने मणिशिला तैयार कर रक्खी थी। माघ-शुक्ला द्वादशी, पुनर्वसु नक्षत्र में सायंकाल १००० (एक हजार) राजाओं के साथ जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। सिद्धसाक्षी दीक्षा लेकर ऊपर मौन से उस शिला पर ध्यानस्थ हो गये। इन्द्रादि एवं राजादि ने उनकी पूजा भक्ति की। स्तुति की। नाना प्रकार से उत्सव कर अपने-अपने स्थान को चले गये। मनोरोध के बल पर प्रभु को उसी समय मनः

पर्यय ज्ञान ज्योति जाग्रत हो गई। बेला का उपवास धारण किया। इस प्रकार निष्क्रमण कल्याणक सम्पन्न हुआ।

प्रथम पारणा--आहार--

तीर्थङ्करों के जन्म से पुनीत अयोध्या नगरी का राजा इन्द्र दत्त था। आज उसे विशेष हर्ष और संतोष अनुभव हुआ। वह यथा समय अतिथि सत्कार के लिए द्वारापेक्षण करने लगा। उधर वन से भगवान दो दिन का उपवास निष्ठापन कर चर्यामार्ग से आये। अत्यन्त संभ्रम से राजा ने नवधाभक्ति पूर्वक पड़गाहन किया। सप्तगुण युक्त दाता और उत्तम पात्र का संयोग मणि कांचनवत् हुआ। निरन्तराय आहार हुआ। इन्द्रदत्त के घर पञ्चाश्चर्य हुए। भगवान ने वन को प्रस्थान किया। इस प्रकार अखण्ड शुद्ध मौन से प्रभु ने १८ वर्ष तक घोर तपश्चरण कर छद्मस्थ काल बिताया। अठारह वर्ष बीतने पर बेला--दो दिन का उपवास लेकर वैशालिवृक्ष के नीचे विराजमान हो घातिया कर्मों को चूर करने में तत्पर हुए।

केवलोत्पत्ति--

ध्यानारूढ़ भगवान अपने स्वरूप में निर्विकल्प स्थिर हुए। निज वभाव में प्रविष्ट होने पर बाह्य चोर कैसे आ सकते हैं और पहले से छुपे हुए भी कैसे ठहर सकते हैं? अर्थात् न आ सकते है और न ही रह सकते हैं। अतः वे क्षपक श्रेणी पर आसीन हो क्रमशः शुक्ल ध्यान के तृतीय भेद को प्राप्त हुए। चारों घातियां कर्म नष्ट कर पूर्ण सर्वज्ञता प्राप्त की। पौष शुक्ला चतुर्दशी, पुनर्वसु नक्षत्र में सायंकाल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। चराचर समस्त पदार्थों को उनकी अनन्त पर्यायों सहित एक ही समय में अवलोकित कर लिया।

केवलज्ञान कल्याणक महोत्सव--

श्री प्रभु को अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति होते ही इन्द्रासन कम्पित हुआ और वह सपरिवार केवलज्ञान कल्याणक उत्सव मनाने के लिए मर्त्यलोक में आया। कुबेर को आज्ञा देकर दिव्य समवशरण सभा मण्डप तैयार कराया उसके मध्य में १२ कोठों की गोलाकार गंधकुटी के मध्य कंचनमय सिंहासन पर भगवान को आसीन किया। प्रभु निस्पृही

उस सिंहासन को अस्पृश करते हुए चार अंगुल अधर विराजे । इन्द्र ने देव-देवियों सहित अष्टप्रकारी केवलज्ञान पूजा की । १००८ नामों से स्तुति कर धर्मोपदेश के लिए प्रार्थना की । गणधर वज्रनाभि को सम्बुद्ध कर दिव्य ध्वनि खिरना प्रारम्भ हुयी । जीवादि सप्त तत्वों का उपदेश कर भव्य-जीवों को संसार समुद्र से पार होने का मुक्ति मार्ग प्रदर्शन किया । हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह आत्मा के शत्रु हैं, त्याग, संयम, शील, सदाचार आत्मा के मित्र हैं । आत्मा और शरीर दोनों विजाति हैं इनका मात्र संयोग सम्बन्ध है । जिस प्रकार घोंसले और पक्षी का संयोग है, अथवा अंडे और पक्षी का है, उसी प्रकार आत्मा का शरीर से सम्बन्ध है । शरीर के जीर्ण-शीर्ण होने या नाश होने से आत्मा का कोई भी अपाय या नाश नहीं होता । आत्मा अखण्ड असंख्यात प्रदेशी टंकोत्कीर्ण ज्ञानघन स्वभावी है । यद्यपि पर्याय से विकार युक्त हुयी संसार में परिभ्रमण करती है, परन्तु शुद्ध स्वभाव में आकर पुन: अशुद्ध नहीं हो सकती । हे भव्यो ! जिस प्रकार दूध में घी, लकड़ी में आग, किट्ट-कालिमा में सुवर्ण, पत्थर में हीरा छुपा रहता है, उसी प्रकार शरीर में आत्मा है उसे भी पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । पुरुषार्थ है त्याग और तप । इस प्रकार प्रभु ने चतुर्णिकाय देवों-देवियों, मनुष्यों, तीर्यञ्चों से वेष्टित समवशरण में रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्ग का सदुपदेश दिया । इन्द्र द्वारा प्रार्थित प्रभु ने अंग, वंग कलिंग आदि देशों में विहार कर आर्य क्षेत्र को मुक्ति और संसार का यथार्थ स्वरूप समझाया ।

आप मुख्य शासन देव यक्षेश्वर और यक्षी वज्र श्रृंखला या दुरितारी थी । श्रावकों में मुख्य श्रोता मित्रभाव था ।

समवशरण परिवार—

समवशरण का विस्तार १०॥ योजन प्रमाण था । अर्थात् ४२ कोष प्रमाण । सामान्य केवली १६०००, पूर्वधारी २५०० शिक्षक या पाठक मुनि २३००५० थे, विपुलमती मन: पर्यय ज्ञानी १२६५०, विक्रियाऋद्धिधारी १६०००, अवधिज्ञानी ६८००, वादियों की संख्य ११००० थी । इस प्रकार समस्त संख्या ३०१००० मुनि थे । समस्त गणधर १०३ थे । मुख्य गणिनी आर्यिका मेरुषेणा थी समस्त आर्यिकाओं का प्रमाण ३०३०६०० था, ३००००० (तीन लाख) श्रावक और

सब ५००००० पाँच लाख श्राविकाएँ थीं। असंख्यात देव-देवियाँ और तिर्यञ्च प्राणी थे। समवशरण में संज्ञी, भव्य जीव ही जा सकते हैं। १२ सभाओं के अधिनायक प्रभु ने समस्त आर्यपथ में विहार कर ६ लाख करोड़ सागर और ४ पूर्वाङ्ग काल पर्यन्त धर्माम्बु वर्षा कर भव्यों को मुक्तिमार्ग में आरूढ़ किया।

योग निरोध—

धर्मोपदेश देते हुए प्रभु श्री सम्मेद शिखर पर्वतराज पर पधारे। यहाँ आयु का १ माह मात्र शेष रहने पर आपने योग निरोध किया। समवशरण रचना समाप्त हो गई। धर्मोपदेश बन्द हुआ। आप पूर्ण निर्विकल्प समाधि आरूढ़ हुए। अन्त में समुच्छिन्न क्रिया नामा चतुर्थ शुक्ल ध्यान के बल से शेष ४ अघातिया कर्मों का संहार कर वैशाख शुक्ला षष्ठी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में प्रातःकाल प्रतिमायोग (कायोत्सर्ग आसन) से आनन्द कूट से १००० मुनियों के साथ मुक्त हुए। उत्तर पुराण में अनेक मुनियों के साथ मोक्ष पधारे लिखा है।

विशेष—

इनके काल में ७६०० मुनि कल्पों में गये, १२००० अनुत्तरों में अहमिन्द्र हुए। २८०१०० इनके पहले मुक्त हुए। ८४ अनुबद्ध केवली हुए। अर्थात् जिस समय एक को मुक्ति हुयी उसी समय दूसरे को केवल-ज्ञानोत्पत्ति हुयी। किन्हीं आचार्यों ने १०० भी अनुबद्ध केवली लिखे हैं।

मोक्षकल्याणक महोत्सव—

भगवान को मुक्ति होते ही इन्द्रों ने आकर नानाविध पूजा की। अग्निकुमारों ने मुकुटों से ज्वाला जलाकर संस्कार क्रिया की। सभी ने भस्म मस्तक पर चढ़ायी। नरेन्द्रों एवं नर-नारियों, श्रावक-श्राविकाओं ने भी यथाशक्ति अष्टप्रकारी पूजा कर मोदक चढ़ाये, दीप जलाये और भक्ति से उत्सव मनाया। इस प्रकार मोक्षकल्याणक मना कर अपने-अपने स्थान गये।

जो प्रथम भव में रत्न संचयपुर नगर में महाबल नाम के राजा थे, विजयनामा अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र हुए, पुनः श्री वृषभदेव के इक्ष्वाकु वंश में अयोध्या नगर के स्वामी राजा अभिनन्दन हुए वे तीर्थङ्कर प्रभु हमें भी आत्म स्वातन्त्र्य प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करें। ॐ—शान्ति—ॐ।

चिह्न

वानर

आनन्दकूट महासुखदाय, अभिनन्दन प्रभु शिवपुर जाय।
कोडाकोडि बहत्तर जान, सत्तर कोडि लखि छत्तिस मान ।।
सहस बियालीस शतक जु सात, कहे जिनागम में इह भांत।
ये ऋषि कर्म काटि शिवगये, तिनके पदजुग पूजत भये ।।

प्रश्नावली—

१. चौथे तीर्थङ्कर का नाम और चिह्न क्या है ?

२. अभिनन्दन भगवान को किस निमित्त से वैराग्य हुआ ?

३. जन्म स्थान कहाँ है ? कहाँ से चय कर आये ?

४. भगवान को जन्म से कितने और कौन-कौन से ज्ञान होते हैं ?

५. आयु प्रमाण कितना था ? कुमार काल कितना रहा ?

६. समवशरण का प्रमाण कितना है ?

७. इनके कितने गणधर थे ? प्रथम गणधर का नाम बताओ ?

८. इन्द्र ने भगवान का रूप देखने के लिए कितने नेत्र बनाये ?

९. इन्द्रों ने कितने कलशों से जन्माभिषेक किया और कहाँ किया ?

१०. इनके समवशरण में कितने श्रावक और कितनी श्राविकाएँ थीं ?

११. समवशरण का अर्थ क्या है ? वहाँ कौन-कौन रहते हैं ?

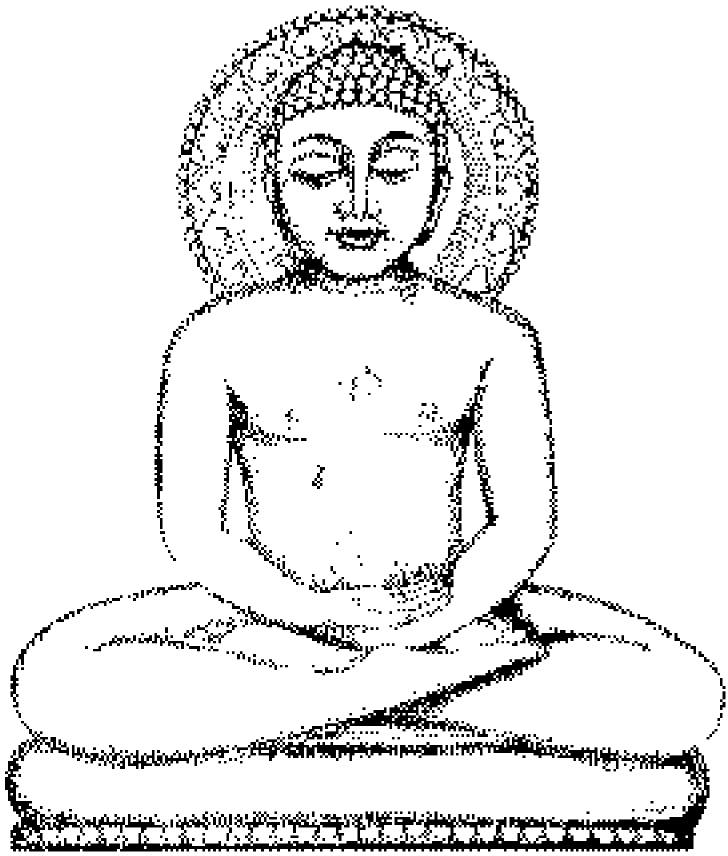

५-१००८ श्री सुमतिनाथ जी

सुमति सुमति दातार हो, हरता कुमति अज्ञान ।
मोह तिमिर के नाश को, पुनि पुनि करूँ प्रणाम ।।

तीर्थङ्कर प्रकृति बंध कैसे हुआ----

पूर्व विदेह । पुष्कलावती देश । सीता नदी का उत्तर तट । पुण्डरीकिणी नगरी । रतिषेण राजा । साथ था उसके पूर्वोपार्जित तीव्र प्रभूत पुण्य । विशाल राज्य मिला, वह भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया । बिना क्रोध किए समस्त राजा वश में हो गये । क्यों युद्ध करता फिर ? वह व्यसनों से रहित और राज्यनीति से सम्पन्न था । उसकी राज्य विद्या उसी में थी । आन्वीक्षि, त्रयी, वार्ता और दण्ड चारों विद्याएँ उसके पास थीं, किन्तु तो भी दण्ड नीति का उसने कभी भी प्रयोग नहीं किया । उसने अर्जन, रक्षण, वर्द्धन और व्यय चारों उपायों से धन कमाया था । अरहंत देव ही देव हैं, इस अटल श्रद्धान से धर्म का सेवन

करता था। इसी से धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थ अनुकूल हो उसकी सेवा करते थे। क्या इतना मात्र ही सुख है ? क्या यह चिरस्थायी है ? यह सोचते हो राजा किसी गहरी चिन्ता में डूब गया और तत्काल अपने प्रश्नों का उत्तर खोज लाया। ओ, हो ! जिन शासन का रहस्य मैंने नहीं समझा। इन क्षणभंगुर राज वैभव, देवांगना समान कामनियों का सहवास पुत्र-पौत्र सभी तो नाशवान हैं। एक मात्र आत्मा ही अपना है आत्मिक सुख ही सच्चा, स्थायी सुख है। मुझे उसे ही खोजना चाहिए ? बस उसी क्षण अपने पुत्र अतिरथ को राज्यभार दे दिया और स्वयं बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग कर श्री अर्हन्नंदन भगवान के समीप दिगम्बर दीक्षा धारण कर दिगम्बर मुनि बन गये। मोह ग्रन्थी को काट ग्यारह अंगों का अभ्यास किया, घोर तप किया, सोलहकारण भावनाएँ भायीं और तीर्थङ्कर प्रकृति बंध किया। अन्त में समाधि पूर्वक प्राण तज वैजयन्त विमान में ३३ सागर की आयु बांधकर अहमिन्द्र उत्पन्न हुए। एक हाथ प्रमाण शरीर, शुक्ल लेश्या और अप्रवीचार सुख था वहाँ। तत्त्व चर्चा मात्र ही साधन था काल यापन का।

कहाँ हुआ वह तीर्थङ्कर—

जम्बूवृक्ष से लाञ्छित जम्बूद्वीप के अन्दर है भरत क्षेत्र। इस क्षेत्र का तिलक रूप है अयोध्या नगर। राजा था मेघरथ, वंश वही इक्ष्वाकु भगवान वृषभ स्वामी का ही था गोत्र। इसकी पट्टरानी का नाम था "मंगला"। वस्तुतः यह मंगलरूपिणी ही थी। उस अहमिन्द्र की आयु ६ माह शेष रह गयी तब देवों ने रत्नों की धारा वर्षा कर उस महादेवी की पूजा की। प्रतिदिन तीनों काल ३॥ साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा से राजा का आंगन जग-मगा उठा। याचक वृत्ति ही समाप्त हो गई।

श्रावण शुक्ला द्वितीया के दिन महारानी मंगला सुख शैया पर संतोष की निद्रा ले रही थी। पिछली रात्रि में उन्होंने हाथी, वृषभ आदि १६ स्वप्नों के बाद अपने मुख में शुभ्र विशाल गज को प्रविष्ट होते देखा। उसी समय वह अहमिन्द्र मघा नक्षत्र में उस देवी के शुद्ध गर्भ में आ विराजे।

प्रातः उठकर नित्य स्नानादि क्रिया कर आनन्द विभोर यह राजा मेघरथ के समीप गई और स्वप्नों का फल पूछा। "त्रैलोक्य विजयी

पुत्र होगा" यह फल सुनकर दम्पत्ति परम आनन्दित हुये। गर्भ बढ़ने लगा पर माँ का उदर नहीं बढ़ा अपितु कान्ति, रूप, बुद्धि अवश्य बढ़ते गये। षट् कुमारिका और ५६ कुमारी देवियों से सेवित माँ के सुख सौभाग्य का क्या कहना? निमिश मात्र के समान नव मास बीत गये। लगा कि आज ही देवलोग गर्भ कल्याणक मना कर गये हों।

जन्म कल्याणक—

नववें मास के पूर्ण होने पर चैत्र शुक्ला एकादशी के दिन मघा नक्षत्र में और पितृयोग में मतिज्ञान, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानों के धारी, दिव्यस्वरूप, सज्जनों के पति, तीन लोक के स्वामी उस अहमिन्द्र के जीव ने जन्म लिया। तीनों लोक एक साथ हर्ष में डूब गये। इन्द्र लोग उसी समय आये। शचि देवी ने भगवान को ले इन्द्र के कर में दिया और सपरिवार बड़े ठाट-बाट से मेरूपर्वत पर ले जाकर जन्मोत्सव मनाया। उनका सुमतिनाम रखकर वापिस लाये। इनका चिन्ह **चकवा-पक्षी** निश्चित किया। तांडव नृत्य कर माता-पिता को बधाई देकर इन्द्र अपनी विभूति सहित लौट गया।

बालक भगवान, अंगूठे में स्थापित अमृत का पान कर बढ़ने लगे। अभिनन्दन भगवान के बाद नौ लाख करोड़ सागर बीतने पर इनका अवतार हुआ। इनकी आयु भी इसी में सम्मलित है। आपकी आयु ४० लाख पूर्व की थी। शरीर का उत्सेध (ऊँचाई) ३०० धनुष प्रमाण थी शरीर की कान्ति **तपाये हुए सुवर्ण के समान थी।** आकार समचतुरस्र संस्थान नाम कर्मोदय से सुन्दर था। अतुल शक्ति सहित थे। इनके आंगोपाङ्ग, रूप लावण्य अद्वितीय था, स्वयं बुद्ध थे। इन्होंने किसी का शिष्यत्व स्वीकार नहीं किया। अनिद्य नेत्रों के विलास से सबका मन हरते थे। मेरे बिना तो इन के शरीर की शोभा ही नहीं होगी मानों इसी घमण्ड से ऊँची उठी नाक उनके मुख कमल की गंध सूंघती थी। दोनों कपोल रक्त वर्ण थे। वक्ष स्थल विशाल था। दंत पंक्ति कुन्द पुष्प की श्री को जीतती थी। अधर अरुण और सुन्दर थे। इन्द्र भी अपनी इन्द्राणी सहित जिनके सौन्दर्य को बार बार निरखता हुआ आश्चर्य चकित हो जाता था उनके रूप सागर का क्या वर्णन किया जाय। उभय कंधे पर्वत समान उन्नत थे। भुजाएँ जानु पर्यन्त लम्बी और सुदृढ़ थीं। संसार के समस्त श्रेष्ठतम परमाणुओं ने अपना

यश बढ़ाने को इनका आश्रय लिया था। नख शिख को सौन्दर्य अप्रतिम था तभी तो मुक्ति रमा भी इन पर आसक्त हो बैठी थी। यौवनावस्था के पूर्व ही कामदेव के समान इनका सौन्दर्य हो गया था। १० लाख पूर्व कुमार काल के व्यतीत हो गये।

विवाह—

यौवन में प्रविष्ट कुमार को देखकर पिता ने अनेक सुन्दर उत्तम वंशोत्पन्न राजकन्याओं के साथ आपका विवाह कर दिया। वे स्वभाव से अणुव्रती थे। सरल, मृदुल, कोमल स्वभाव धारी थे। इन्द्र द्वारा प्रेषित देवों द्वारा लाये भोगो-पभोग पदार्थों का उपभोग करते थे। उन्हें इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग स्वप्न में भी नहीं था। सतत् धर्म ध्यान में लीन रहते थे। वय के साथ होड लगाये गुण भी वृद्धिगत हो रहे थे। सर्व ओर से उनका पुण्योदय था। पिता ने भी हर्षित हो उन्हें राज्यभार अर्पित कर दिया। उभय भोगों को पाकर भी आप में तनिक भी अहंभाव नहीं आया सर्वसम्पदाओं से भरपूर उनकी देव, दानव, विद्याधर, मनुष्य सब ही सेवा में तत्पर थे। मनुष्य लोक और देवलोक की विभूति पाकर, अनेक समान अवस्था की सुरूपराशि स्त्रियों के साथ नाना प्रकार क्रीडाएँ करते हुए भी वे धर्म से विमुख नहीं थे अपितु माध्यस्थभाव से भोगों का सेवन करते हुए सदा धर्मध्यान में विशेष काल यापन करते थे। प्रभूत भोगों में एवं राज्यकार्य संचालन में उनका उनतीस लाख पूर्व एवं बारह पूर्वाङ्ग व्यतीत हो गये।

धर्मध्यान लीन प्रभु एक दिन अकस्मात अपने जीवन क्षणों की गणना कर भोगों से विरक्त हुए। निकट भव्य जीव का ऐसा ही नियोग होता है।

वैराग्य चिन्तन—

ओह; यह क्या ? इतना दीर्घकाल, इन भोगों में ? क्या ये भोग नित्य हैं ? यह जीवन स्थायी है क्या ? ये सुन्दर कामिनियाँ क्या इसी प्रकार यौवन का रस दे सकती हैं ? क्या आयु का अन्त नहीं होगा ? मांस की डली के लिए जीवन देने वाली मछली के समान यह राज्य भोग किया नहीं क्या ? क्या मेरे जैसे त्रिज्ञान धारी को भोगों में फंसा रहना उचित है ? नहीं ! नहीं ! ये सब नाशवान हैं, दुख रूप हैं, दुःख

के कारण हैं। आत्मा के शत्रु हैं। अतः अब मुझे नित्य, शाश्वत सुख की खोज करना चाहिए। यह राज भवन त्याज्य है। दुखःद है। अब एक क्षण भी यहाँ नहीं रह सकता।

लौकान्तिक देवों का आगमन---

प्रभु विरक्ति में निमग्न थे कि सारस्वतादि देव गणों ने आकर उनके वैराग्य को पोषक अनुमोदन प्रदान किया। "हे प्रभो! आपका विचार श्लाघ्य है, उत्तम है, जन्म जरा मरण का नाशक है, मुक्ति का कारण है। शीघ्र दीक्षा धारण कर आत्म कल्याण सिद्ध करें। सकलज्ञ हो जन-जन का उद्धार करें।" अन्य भी नाना स्तुति कर वे बाल ब्रह्मचारी देव गण अपने स्थान को गये। उधर इन्द्र का आसन चलायमान हुआ।

इन्द्रागमन और तप कल्याणक—

इन्द्रादि देवों ने आकर उनका अभिषेक किया और "अभया" नामकी पालकी में विराजने की प्रार्थना की। उसी समय प्रभु ने अपने ज्येष्ठपुत्र का राज्यभिषेक पूर्वक राज्य तिलक किया। स्वयं पालकी में विराजे। प्रथम मनुष्य और फिर देवों ने ले जाकर सहेतुकवन में प्रभु को पहुँचाया। स्फटिक तुल्य शिला पर पूर्वाभिमुख विराजे। वैशाख शुक्ला नौमी के दिन पूर्वान्हिकाल में मघा नक्षत्र में एक हजार राजाओं के साथ तेला का उपवास लेकर परम दिगम्बर दीक्षा "नमः सिद्धेभ्य" उच्चारण कर धारण की। उसी समय मनः पर्यय चतुर्थ ज्ञान हो गया।

आहार—

वैशाख शुक्ला १२ को प्रभु चर्या के लिए विधिवत् 'सौमनस्' नामके नगर में पधारे। 'पद्मद्युति' राजा ने अति आनन्द से पडगाहन किया। नवधाभक्ति से सप्तगुण युत प्रभु को क्षीर का पारणा कराया। राजा की भक्ति विशेष से देवों ने उसके प्रसाद में पञ्चाश्चर्य किये और उसकी पूजा की। भगवान मौन पूर्वक वन में आये और कठोर तप करने लगे। तप करते-करते छद्मस्थ काल के २० वर्ष पूर्ण हुए। एक दिन तेला का उपवास ले निर्विकल्प ध्यान में आरूढ़ हुए। कर्म कालिमा तपो ज्वाला में भस्म होने लगी। क्षपक श्रेणी में आ गये प्रभु।

केवल ज्ञानोत्पत्ति—

अन्तर्मुहूर्त मात्र एकाग्रचित होते ही चैत्र सुदी एकादशी के दिन मघा नक्षत्र में जब सूर्य पश्चिम की ओर जा रहा था उसी समय उन्हें केवलज्ञान प्रकट हुआ।

ज्ञान कल्याणक—

पूर्ण ज्ञानी होते ही इन्द्र सपरिवार आया और अष्ट प्रकारी केवल-ज्ञान पूजा की तथा उत्सव मनाया। कुबेर ने समवशरण रचना की तथा नर-तिर्यञ्चों ने अपने-अपने स्थान में बैठकर धर्मोपदेश-श्रवण किया। भगवान की दिव्यध्वनि अनेकान्त वाणी या सिद्धान्त के रूप में खिरी। भव्य जीवों को सदाचार, प्रेम, वात्सल्य का उपदेश दिया। रत्नत्रय ही मुक्ति मार्ग है। उपयोग लक्षण वाली आत्मा रत्नत्रय स्वरूप है, यह समझाया। प्राणीमात्र का मित्र सम्यग्दर्शन है, इत्यादि धर्म-देशना प्रदान की।

समवशरण परिवार—

सप्तऋद्धिधारी ११६ गणधर थे। प्रथम गणधर चमर या अमर-वज्र थे। २४०० ग्यारह अंग और चौदह पूर्वधारी, २५४३५० (दो लाख चौवन हजार, तीन सौ पचास) शिक्षक—उपाध्याय, ११००० (ग्यारह हजार) अवधि ज्ञानी, १३००० (तेरह हजार) केवलज्ञानी, १८४०० विक्रिया-ऋद्धि धारी, १०४०० मन: पर्ययज्ञानी, १०४५० वादी, प्रभु की भक्ति में संलग्न थे। इस प्रकार सब मिलाकर तीन लाख, बीस हजार (३,२०,०००) मुनियों से वे प्रभु सुशोभित थे।

उनके समवशरण में तीन लाख, तीस हजार आर्यिकाएँ थीं। इनमें प्रमुख-गणिनी अनन्तमती आर्यिका थी। इसी प्रकार तीन लाख श्रावक और ५,००,००० (पाँच लाख) श्राविकाएँ थीं। इनके अतिरिक्त असंख्यात देव एवं देवियाँ और संख्यात तिर्यञ्च थे। इस प्रकार विभूति सहित भगवान ने १८ अठारह क्षेत्रों में धर्मोपदेश दिया था। उर्वरा भूमि में उत्तम बीज सर्वोत्तम फल प्रदान करता है। उसी प्रकार प्रभु ने उत्तम आर्य क्षेत्रों में श्रेष्ठतम दिव्य ध्वनि रूप बीज वपन कर भव्यों को उत्तमोत्तम धर्मफल प्रदान किया।

आयु का एक माह शेष रहने पर आपने देशना निरोध किया अर्थात् उपदेश बन्द किया।

शिव गमन–मोक्ष कल्याणक—

एक मास का योग निरोध कर भगवान परम पवित्र श्री सम्मेदाचल के "अविचल कूट" पर आ विराजे। प्रतिमा योग धारण कर अन्तिम शुक्ल ध्यान के द्वारा शेष ४ अघातिया कर्मों को सर्वथा आत्मा से पृथक कर परम शुद्ध दशा प्राप्त की। पञ्च लघु स्वर उच्चारण काल पर्यन्त ठहर कर चैत्र सुदी एकादशी के दिन मघा नक्षत्र में सायंकाल मुक्ति धाम पधारे। उसी समय इन्द्रासन कम्पन से मोक्षगमन ज्ञात कर देव देवियों सहित आया और प्रभु सुमतिजिन का मोक्ष-कल्याणक महोत्सव विधिवत् मनाया। अग्नि कुमार जाति के देवों के मुकुटों से उत्पन्न अनल से दाह संस्कार किया, दीप जलाये, अष्टप्रकारी पूजा की। तदनन्तर श्रावक श्राविकाओं ने भी प्रगाढ़ भक्ति प्रदर्शित करते हुए महोत्सव मनाया। निर्वाण लाडू चढ़ाया, पूजा की, अनेकों दीपों से आरती की एवं नाना स्तोत्रों से प्रभु का गुणानुवाद किया।

श्री सुमति तीर्थङ्कर गर्भावतरण समय "सद्योजात", जन्माभिषेक के समय "वाम" (सुन्दर), दीक्षा कल्याण के समय "अघोर" केवलोत्पत्ति काल में "ईशान" और मुक्ति लाभ समय में "सत्पुरुष या तत्पुरुष" कहलाये थे। अर्थात् उपर्युक्त नाम विशेषों से प्रख्यात हुए थे। वे प्रभु हमें सद्बुद्धि और शान्ति के प्रदायक हों।

॥ जय श्री सुमतिदेव स्वामी ॥

चिह्न 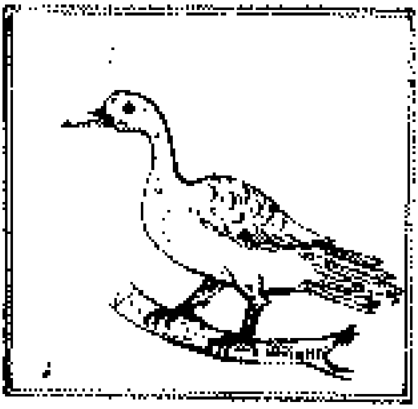 चकवा

कतिपय प्रश्न—

१. सुमतिनाथ भगवान कौन से तीर्थङ्कर हैं ?
२. इन्होंने तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध कब किया ?
३. ये (सुमतिनाथ) किस स्वर्ग से अवतरित हुए ?
४. इनके माता-पिता कौन थे ? उनके विषय में विशेष जानकारी हो तो लिखें ?
५. इन्होंने विवाह किया या नहीं ? राज्य भोगा या नहीं ?
६. तपश्चरण काल कितना है ?
७. कितने क्षेत्रों में धर्म देशना—उपदेश दिया ?
८. मुक्ति स्थान कहाँ है ? आपने दर्शन किये या नहीं ?
९. गर्भादि काल में होने वाले विशिष्ट नाम कौन—कौन है ?

प्राणी मात्र को अपने समान समझो, किसी को मत सताओ, क्योंकि पराये को सताना ही अपने लिए दुःख को बुलाना है।

६-१००८ श्री पद्मप्रभु भगवान

पूर्वभव---

संसार चक्र की प्रक्रिया कर्मचक्र की गति से चलती है। शुभाशुभ कर्मों के अनुसार जीव महान या लघु होता है, धनाढ्य, दरिद्री, सुन्दर, असुन्दर, मान्य, अमान्य, पूज्य, अपूज्य, कुरूप, सुरूप होता है। इनके प्रदर्शन का नाम ही संसार है। कर्मों की प्रक्रिया में बाह्य द्रव्य, क्षेत्र काल एवं भाव भी सहायक होते हैं।

धातकी खण्ड पुण्य क्षेत्र है क्योंकि वहाँ पुण्य पुरुषों का सतत् निवास पाया जाता है। पूर्व विदेह में सीता नदी के दाहिने तट पर वत्स देश है, उसमें है एक सुसीमा नामक अनुपम नगर है। यहाँ का राजा था अपराजित। विशिष्ट पुरुषों के क्रिया-कलाप भी अपने ढंग के निराले होते हैं। यह बाह्याभ्यन्तर शत्रुओं को जीतने में समर्थ था किन्तु स्वयं अजेय था। अपने पराक्रम से कुटिल राजाओं को वश कर लिया था। महान भुजबल के साथ सात प्रकार की सेना बल से युक्त था।

पराक्रम या शूरता की शोभा है, सत्य और न्याय। सत्य और न्याय की स्थिति का हेतु है त्याग और दान। अपराजित इन गुणों से सम्पन्न था। अतः सतत् सुभिक्ष से राज में दरिद्रता आकाश कुसुमवत थी। पहले जो दरिद्र था वह आज कुबेर समान बन गया। साथ ही रूप, लावण्य, सौभाग्य के साथ प्रजा धर्म-निष्ठ, दान-पूजा में तत्पर और ज्ञान-ध्यान में संलग्न थी, क्योंकि राजा अपराजित स्वयं इन गुणों में अद्वितीय थे। राजा षड्गुणों से सम्पन्न था। अनेक भवों में उपार्जित पुण्य के उदय से प्राप्त राज-वैभव का उपभोग अपने भाई-बन्धुओं को बाँट कर करने से उसका उदय उत्तरोत्तर बढ़ रहा था तो भी उसकी निरुत्सुक बुद्धि थी।

समय चला जा रहा था। अपराजित की सम्यक् दृष्टि में न केवल काल ही क्षणिक था अपितु संसार के समस्त पदार्थ क्षणभंगुर प्रतीत होते थे। ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा समस्त पदार्थ क्षणभंगुर हैं। यह निश्चय कर उसने अपने ध्रुव आत्म स्वरूप की सिद्धि का विचार किया। वैराग्य जगे तो सांसारिक वैभव तृणवत् है, बस क्या था राजा अपराजित ने अपने पुत्र सुमित्र को राज्यभार दे स्वयं श्री पिहिताश्रव मुनीन्द्र के शिष्य बन गये। कुछ ही समय में ग्यारह अङ्ग के पारगामी हो षोडश-कारण भावना के बल से तीर्थङ्कर गोत्र बन्ध कर आयु के अन्त में समाधि मरण कर नवमें ग्रैवेयक के 'प्रीतिंकर' विमान में ३१ सागर की आयु वाले अहमिन्द्र पर्याय को प्राप्त किया। वहाँ उनका दो हाथ प्रमाण शरीर, शुक्ल लेश्या, थी। इकतीस पक्ष में श्वास लेते थे। इकतीस हजार वर्ष बाद मानसिक आहार करते थे। तथा ७ वीं पृथ्वी तक अवधिज्ञान था। इस प्रकार वह अप्रविचार सुखों का अनुभव करने लगा।

गर्भावतरण—

"भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न पौरुषम्" पूर्व संचित पुण्य अपना सौरभ बिखेरता है। अहमिन्द्र लोक में रहते हुए जब आयु के छः माह मात्र अवशेष रह गये तो मर्त्यलोक में उसका पुण्य प्रकाश फैलने लगा।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कौशाम्बी नगरी में इक्ष्वाकुवंशी, काश्यप गोत्री महाराजा 'धरण' और महारानी सुसीमा के आंगन में

आयीं वे रत्न किरणें। आंगन जग-मगा उठा दिव्य रत्नों के प्रकाश से। जो आता ले जाता कौन रोकता वहाँ ? क्यों कि नित्य का यही तो क्रम था कि तीनों संध्याओं में १२॥ करोड़ दिव्य रत्न वृष्टि होती। सुख की घड़ियाँ जाते देर नहीं लगती। पलभर के समान पूर्ण हो गये छ महीने। माघ कृष्णा षष्ठी का सुहाना दिन आ गया। महादेवी सुसीमा सुखनिद्रा में विचरण कर रही थी। पिछली रात्रि में हाथी आदि १६ स्वप्न देखे। अन्त में अपने मुख में प्रविष्ट होते हुए वृषभ-बैल को देखा। निद्रा भंग हुयी पर तन्द्रा नहीं थी। मन उल्लास भरा था। शरीर में स्फूर्ति थी। सिद्ध परमेष्ठी के नामोच्चार के साथ शैया त्यागी। शीघ्र नित्य क्रिया कर प्रसन्न वदना अपने पति महाराज 'धरण' के पास राजसभा में पधारीं और स्वप्नों का फल ज्ञात करने की अभिलाषा की। "त्रैलोक्याधिपति पुत्र होगा" इस प्रकार राजा ने भी स्वप्नों का फल कहा। दम्पति हर्ष से प्रत्यक्ष पुत्र दर्शन की आशा में डूब गये।

पुण्य से पुण्य बढ़ता है यह विचार चतुर्णिकाय देवेन्द्र देव और देवियों ने आकर गर्भकल्याणक महोत्सव सम्पन्न किया। ५६ कुमारियाँ माता की सेवा में तत्पर हुयीं। गर्भ की वृद्धि के साथ माता का रूप लावण्य, बुद्धि ज्ञान पराक्रम भी बढ़ने लगा। चारों ओर हर्ष का साम्राज्य छा गया।

जन्मोत्सव—

शरद काल जितना सुहाना है उतना ही सुखद भी। वर्षा ऋतु की कीचड़ इस समय शमित हो जाती है, चारों ओर कास के कुसुम धवल चादर से भूमण्डल पर बिछ जाते हैं मानों जिन शासन का यशोगान ही कर रहे हों। इस काल में जन मानस भी प्रफुल्ल हो जाते हैं। क्योंकि वर्षा काल की झड़ी और अंधियारी, डरावनी रात एवं बादलों की घड़घड़ाहट अब नहीं रहती। भय का भूत भाग जाता है। दान-पूजा, आदि निर्विघ्न चलने लगते हैं। प्रमाद निकल भागता है। मोद भाव जाग्रत हो जाता है। चारों ओर हरितिमा छा गई। नद, नदी स्वच्छ जल से परिपूर्ण हो गये। नाना प्रकार के सुन्दर पक्षियों का कलरव होने लगा। कौशाम्बी नगरी के कूप, तड़ाग, उपवन क्षेत्र अनुपम शोभा से शोभित होने लगे। एक मास पूरा हो गया। देखते ही देखते इस ऋतु का द्वितीय महीना आ गया। आमोद-प्रमोद की घड़ियाँ जाने में, क्या देर

लगती है ? राज भवन में महारानी "सुसीमा" का सौन्दर्य प्रकृति की छवि को तिरस्कृत कर रहा था । शनैः शनैः नव मास पूर्ण हो गये । कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी की पुण्यवेला, मघा नक्षत्र में बिना किसी पीड़ा के, आनन्दोल्लास के साथ, अनुपम लावण्य युत बालक का जन्म हुआ । अधो, मध्य और ऊर्ध्व तीनों लोक हर्ष सागर में डूब गये एक क्षण के लिए । निमिष मात्र भी जिन्हें शान्ति नहीं वे नारकी भी एक समय को आनन्द विभोर हो गये, मानों वायरलैस से वहाँ सूचना मिल गई हो ।

स्वर्ग लोक का क्या कहना ? इन्द्र भी अपने भोगों को छोड़ आतुर हो उठा भगवान की रूपराशि को देखने के लिए । आओ, चलो, यान, वाहन तैयार करो, ऐरावत गज कहाँ है ? शचि देवी आइये, चलिये इत्यादि शब्दों का कोलाहल मच गया ऊर्ध्व लोक में । सात प्रकार की सेना सज्जित हो गई । प्रत्येक देव देवी आनन्द विभोर हो प्रभु का जन्मोत्सव मनाने को आतुर हो उठे ।

प्रत्येक व्यक्ति जिस प्रकार सर्वथा, निर्दोष या सदोष नहीं होता उसी प्रकार प्रत्येक घटना भी सम्पूर्ण रूप से एकान्तपने से सुखद और दुखद नहीं होती । यद्यपि प्रभु के जन्म से तीनों लोक में आनन्द छा गया परन्तु मोह राज थर-थर कांपने लगा । दोषों के समूह तितर-बितर हो गये । कामदेव न जाने कहाँ छिपने को भागा जा रहा था । इधर यह भगदड़ मची उधर देवेन्द्र आ पहुँचा राज प्रांगण में धूम-धाम, साज-बाज और नृत्य गान के साथ । "नवेभवेत्प्रीति" के अनुसार अत्यातुर शचिदेवी ने प्रसूतिग्रह में प्रवेश किया । बालक के शरीर की कान्ति से प्रकाशित कक्ष में माता को माया निद्राभिभूत कर इन्द्राणी बाल प्रभु को ले आयी । रूपराशि के निरीक्षण से अतृप्त इन्द्र ने १ हजार नेत्र बनाकर सौन्दर्यावलोकन किया । संभ्रम के साथ सुमेरु-पर्वत पर ले जाकर १००८ क्षीर जल कलशों से भगवान का जन्माभिषेक किया, पुनः समस्त देव देवियों ने अभिषेक कर इन्द्राणी ने अनुपम दिव्य वस्त्राभूषण पहना कर निरंजन प्रभु को अञ्जन लगाया, कुंकुम तिलक लगाकर रत्नदीपों से आरती उतारी । विविध उत्सवों के साथ राजभवन आकर बालक को माता की गोद में देकर आनन्द नाटक किया और सानन्द स्वर्ग धाम को लौट गये ।

राजभवन में शहनाइयाँ बज उठी। आनन्द भेरी गूंजने लगी, जिधर देखो उधर, नृत्य, गान, वादित्र, बधाई, आदि नाना प्रकार के उत्सव होने लगे।

भगवान के अवयवों के साथ उनका रूप सौन्दर्य बढ़ने लगा। मति श्रुत अवधि ज्ञान स्फुरायमान होने लगे। बाल प्रभु शैशव से प्रौढ़ता की ओर आने लगे। जन्मोत्सव समय इन्द्र ने प्रभु के अंगूठे में अमृत स्थापित कर दिया था, अब स्वर्गीय व्यञ्जन आने लगे। समवयस्क देवकुमार उनके साथ रमण करते थे। आपका शरीर लाल कमल के समान देदीप्यमान था। अतः इन्द्र ने 'पद्मप्रभु' नाम विख्यात किया। इनकी बाल क्रीडाओं ने न केवल माता-पिता को ही मुदित किया था अपितु समस्त नर-नारियों को हर्षित कर दिया था। बाल चन्द्रवत् प्रभु अपनी कान्ति के साथ साथ गुणों की वृद्धि को प्राप्त हुए। श्री सुमतिनाथ तीर्थङ्कर के नब्बे हजार करोड़ सागर काल व्यतीत होने के अनन्तर आपका उदय हुआ। इनकी आयु ३० लाख पूर्व भी इसी अन्तराल काल में गर्भित है। इनका २५० धनुष उन्नत शरीर था। स्त्रियाँ पुरुष की इच्छा करती हैं, पुरुष स्त्रियों को चाहते हैं परन्तु परमगुरु स्वरूप अनुपम चन्द्र समान पद्मप्रभु को स्त्री-पुरुष सभी ही चाहते थे। जिस प्रकार भ्रमरों की पंक्ति आम्रमंजरी में ही तृप्त रहती है उसी प्रकार सब लोगों की दृष्टि उनके शरीर में ही तृप्ति को पाती थी। देव देवियाँ सदा उनकी सेवा में तत्पर रहते थे। अमन-चैन की घड़ियाँ किधर कैसे जाती रहती हैं कोई नहीं समझ पाता। साढ़े सात लाख पूर्व (आयुष्य का चौथाई भाग) कुमार काल में व्यतीत हो गया। माता-पिता की एक मात्र लालसा होती है संतान को विवाहित देखना। तदनुसार पद्मप्रभु को भी अनेकों रूपसुन्दरियों के बाहुपाश में बांध दिया गया अर्थात् अति रूपवान कन्याओं के साथ विवाह कर दिया।

राज्याभिषेक—

महाराज धरण जिस प्रकार कुशल राजा थे उसी प्रकार तत्त्वज्ञ भी थे। अपने पुत्र को योग्य देखकर आत्मसाधना की ओर प्रवृत्त हुए। पद्मप्रभु को राज्य प्रदान कर स्वयं तप साधना में रत हो गये। इधर पद्मकुमार ने अपनी न्याय प्रियता, प्रजावत्सलता, कुशल व्यवहार से प्रजा को संतानवत अपना लिया जिससे वे धरण राजा के वियोग को

शीघ्र ही भूल गये। उनके राज्य में ८ प्रकार का भय सर्वथा नष्ट हो गया था। दरिद्रता दूर भाग गई, धन अपनी इच्छानुसार फैल गया, सर्व प्रकार मंगल और सभी सम्पदाएँ सदा उपलब्ध रहती थीं। संयमी-जन, दाता जन दान देने को याचकों की खोज करते थे। अर्थात् सर्वत्र दानी ही दानी थे याचकों का नाम भी नहीं था। ठीक ही है राज्य का प्रयोजन ही है प्रजा को सुख-शान्ति होना। सर्वत्र अमन-चैन रहना। पशु-पक्षियों को भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं हो। ऐसा ही था महाराज पद्मप्रभु का शासन। धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थ होड़ लगाये बढ़ रहे थे मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि के साधक होते हुए।

वैराग्य—

द्वार में प्रविष्ट होते ही पद्मप्रभ राजा की दृष्टि सामने बंधे गज पर पड़ी। उसकी दयनीय दशा ने दयालु प्रभु को द्रवित कर दिया। पूर्व भव का चित्र चलचित्र की भांति उनके नयन पथ पर प्रत्यक्ष-सा हो गया। उसी क्षण वे काम और दु:खद भोगों से विरक्त हो गये। वैराग्य भाव जाग्रत हो गया। संसार शरीर की निस्सारता सामने आगई। वे विचारने लगे, देखो इस मोह की लीला, इन भोगों की चका-चौंध, मुझको भी अपने चंगुल में फंसा लिया, आयु का अधिकांश भाग बीत गया इन खोखले दृश्यों में। अब मात्र सोलह पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व की ही आयु रह गई है।

वे विचार करने लगे इस संसार में बिना देखा हुआ क्या है? कुछ भी नहीं। बिना स्पर्श किया, बिना सूंघा, बिना सुना, बिना खाया क्या है? कुछ भी नहीं। "पञ्चेन्द्रियों" के समस्त विषय भोग डाले पर क्या तृप्ति हुयी? नहीं। कैसा अज्ञान है जीव का, इतना होने पर भी नये के समान इन्हीं उच्छिष्ट भोगों की इच्छा करता है। अनन्तों बार भोगी वस्तुओं में पुन: उनके भोग की आशा तृष्णा में फंसा दु:खी होता है। आशा असीम है। मिथ्यात्व आदि से दूषित इन्द्रियों से आत्मा की तृप्ति नहीं होती। अतृप्ति का मूल हेतु है अज्ञान। मैं अब इस अज्ञान का नाश करूँगा। यह शरीर, रोग रूपी सर्पों की बामी है। सदा अहित करने वाला है फिर भला इसमें रहने का क्या प्रयोजन? पाप-पुण्यार्जन का हेतु है। इसे ही समाप्त कर देना है। जन्म-मरण का कारण ही नहीं रहेगा तो फिर दु:ख कहाँ? अब मुझे शीघ्र आत्महित साधन करना चाहिए। इस प्रकार प्रभु संसार, शरीर और भोगों की असारता का

चिन्तन करते हुए परम वैराग्य को प्राप्त हो दीक्षा धारण में तत्पर हुए। उसी समय लौकान्तिक देवों ने उनके वैराग्य की पुष्टि करते हुए स्तुति की। देवों ने आकर दीक्षा-कल्याणक महाभिषेक किया। 'निवृत्ति' नामक पालकी तैयार की। उसी समय पद्मप्रभु ने अपने पुत्र को राज्य-भार समर्पित किया। स्वयं ने कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी के दिन शाम को चित्रा नक्षत्र में एक हजार राजाओं के साथ मनोहर वन में परम आदर से जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। उसी दिन उन्हें मनः पर्यय ज्ञान प्रकट हो गया। सिद्ध साक्षी में दीक्षा धारण कर बेला का उपवास किया। अर्थात् दो दिन का उपवास कर पञ्चमुष्टी लौंच कर निर्ग्रन्थ अवस्था—जातरूप धारण किया।

प्रथम पारणा—

निर्जन किन्तु सुरम्य वनस्थली। एकाग्रचित्त योगिराज ध्यान में लीन विराजे हैं। जाति विरोधी प्राणी भी आस-पास सानन्द प्रीति से विचरण कर रहे हैं। वन के चारों ओर तपःलीन मुनीराज की सर्वभूत-हित भावना की रोशनी फैल रही है। परम दया और अहिंसा का प्रकाश व्याप्त हो गया है। पलक मारते दो दिन पूर्ण हो गये। तीसरा सूर्योदय हुआ। अन्धकार मिटा दिन चढ़ने लगा। आहार की बेला आ गई। श्री प्रभु ने आगमानुसार उचित समय पर चर्या को प्रयाण किया। "जैसे को तैसा मिले" कहावत है। पुण्यशाली को पुण्यरूप पात्र का समागम प्राप्त होता है। अस्तु, श्रेष्ठतम बुद्धिशाली मुनि कुञ्जर पारणा के लिए वर्द्धमान नगर में प्रविष्ट हुए। चाँदी सदृश शुभ्रकान्ति के सदृश रूपशाली महाराज सोमदत्त ने अपनी सती साध्वी भार्या सहित विधिवत् पड़गाहन कर नवधा भक्ति से प्रासुक क्षीरान्न आदि का आहार दिया। दानातिशय से उसके यहाँ पञ्चाश्चर्य हुए। अर्थात् रत्न-वृष्टि, पुष्प-वृष्टि, गंधोदक-वृष्टि, दुदुभीनाद और जय-जयध्वनि हुई। शुभभावों से सातिशय पुण्यार्जन किया।

आहार ग्रहण कर श्री गुरु वन में जा विराजमान हुए। नाना प्रकार घोर तपश्चरण करने लगे। ६ महीने पर्यन्त अखण्ड मौनव्रत धारण कर उग्रोग्र कठिन साधना के बल से कर्म समूह को भस्म करने लगे। जैसे-जैसे कर्मपटल हट रहे थे वैसे ही वैसे आत्म तेज प्रकाशित हो रहा था।

कैवल्य प्राप्ति—

६ महीने कठोर साधना में व्यतीत हो गये। प्रभु पूर्ण साधना के फलस्वरूप क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए। कहाँ तक छिपते बेचारे घातिया क्रूर कर्म आठवें से नवमें, दसमें और बारहमें गुण स्थान में आ पहुँचे। लड़-लड़ कर्मों की बेड़ियाँ टूट गईं। समूल नष्ट हो गये चारों घातिया। तत्क्षण अज्ञान की जड़ उखाड़ प्रियंगु वृक्षतले केवलज्ञान का प्रकाश प्रसारित हो उठा। चैत्र शुक्ला पूर्णमासी के दिन मध्याह्न समय चित्रा नक्षत्र में जगद्योतक ज्ञानी सर्वज्ञपद से अलंकृत हुए। अनन्त चतुष्टय प्रकट हो गये। उसी समय इन्द्रों ने केवलज्ञान कल्याण महोत्सव किया। महामह पूजा कर विशाल, अनुपम मण्डप रचना की।

समवशरण—

जहाँ पञ्चेन्द्री संज्ञी समस्त भव्य प्राणियों को समान रूप से आत्म-कल्याण का आश्रय प्राप्त होता है उसे समवशरण कहते हैं। आपका समवशरण मण्डप ९।। योजन अर्थात् ३८ कोस प्रमाण विस्तार वाला था। मध्यस्थ द्वादश गुणों से वेष्टित भगवान रत्न जड़ित सुवर्ण सिंहासन पर पद्मासन अन्तरिक्ष विराजमान हुए। सप्त भंगमय अनेकान्तमयी दिव्य-ध्वनि द्वारा त्रिकाल धर्मोपदेश दे भव्यों को संबोधित किया। सप्त तत्व, नव पदार्थ, षट्द्रव्य आदि का स्वरूप प्रतिपादित किया। यथार्थ सत्य धर्म प्रकाशित किया। उभय धर्म का प्रतिपादन कर मोक्षमार्ग दर्शाया। देश-देशान्तर में विहार कर भव्यजन सम्बुद्ध किये। सभा मण्डपस्थ प्रथम गणधर श्री चमर (वज्रचमर) को लेकर ११० गणधर थे। सामान्य केवली १२०००, पूर्वधारी २३००, शिक्षक २६९०००, विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानी १०३००, विक्रिया ऋद्धिधारी १६८००, अवधिज्ञानी १००००, वादी ९६०० थे। इस प्रकार सब मिलाकर ३३०००० मुनिराज थे। रतिषेणा आदि को लेकर चार लाख बीस हजार आर्यिकाएँ उनकी स्तुति एवं पूजन करती थीं। ३००००० तीन लाख श्रावक और ५००००० लाख श्राविकाएँ थीं। इनके अतिरिक्त असंख्यात देव-देवियाँ और संख्याते तिर्यञ्च थे। इस प्रकार समस्त गणों को उपदेश देकर भव्य जीवों को सुख के स्थान में पहुँचाते थे। इस प्रकार १६ पूर्वाङ्ग ६ माह कम १ लाख पूर्व तक धर्मोपदेशामृत वर्षण कर आयु का १ मास शेष रहने पर श्री सम्मेद शिखर पर्वतराज पर "मोहन कूट" पर आ विराजे।

योग निरोध एवं मुक्तिगमन —

एक महिने का योग निरोध कर सम्मेदाचल की मोहनकूट पर प्रतिमायोग धारण कर आ विराजे। इस पवित्र स्थान से १००० मुनियों के साथ फाल्गुन कृष्णा चौथ के दिन चित्रा नक्षत्र में सायंकाल व्युपरत क्रिया निवृत्ति नाम के चौथे शुक्लध्यान से कर्मों को नाश कर मोक्ष पद प्राप्त कर लिया। उसी समय इन्द्रादि देव देवियों ने आकर निर्वाण कल्याणक पूजा की इन्द्र स्तुति करने लगा, सेवा किसकी करनी चाहिए? कमल को जीत लेने से लक्ष्मी ने भी जिन्हे अपना स्थान बनाया है ऐसे भगवान पद्मप्रभु स्वामी की पूजा करना चाहिए। सुनना क्या चाहिए? १८ दोषों का नाश करने वाले उन्हीं पद्मप्रभु भगवान की सत्यवाणी को। ध्यान किसका करना चाहिए? सबको विश्वास व श्रद्धान कराने वाले पद्मप्रभु स्वामी का। इस प्रकार नाना प्रश्नोत्तरों द्वारा इन्द्र ने प्रभु का गुनगान किया। तदनन्तर समस्त नर-नारियों, विद्याधर, आदि ने भी मिलकर परम भक्ति, श्रद्धा और विनय से आनन्द विभोर हो निर्वाणोत्सव मनाया, लाडू आदि चढ़ाकर अर्चना की। आज भी जो भव्य इस मोहन कूट की वन्दना करता है उसे १ कोटि उपवास का फल प्राप्त होता है। नरक और तिर्यञ्च गति का नाश होता है एवं ४९ भव से अधिक संसार परिभ्रमण नहीं होता। कलिकाल में सम्मेदाचाल भव्यत्व भाव का निर्णायक है। भव्य प्राणियों को अवश्य दर्शन करना चाहिए।

॥ जयतु श्री पद्मप्रभु शासनम् ॥

चिह्न 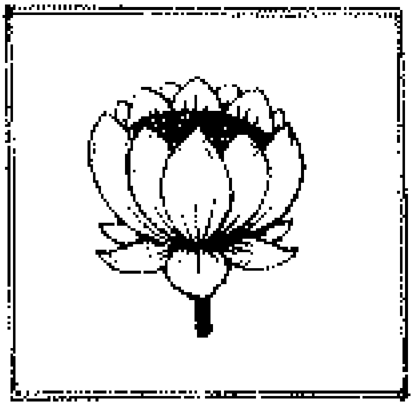 कमल

कतिपय प्रश्नावलि----

१. पद्मप्रभु का वर्ण कौनसा है ?

२. पद्मप्रभु कितने नम्बर के तीर्थङ्कर हैं । इनके माता-पिता का क्या नाम है ?

३. जन्म और निर्वाण तिथि कौनसी है ?

४. ज्ञान कल्याणक के विषय में क्या जानते हैं ?

५. पद्मप्रभु की शरीर ऊँचाई, आयु और राज्यकाल कितना है । राजनीति के बारे में वर्णन करो ?

६. भगवान के वैराग्य का निमित्त क्या हुआ ?

७. इनका छद्मस्थ काल कितना है ?

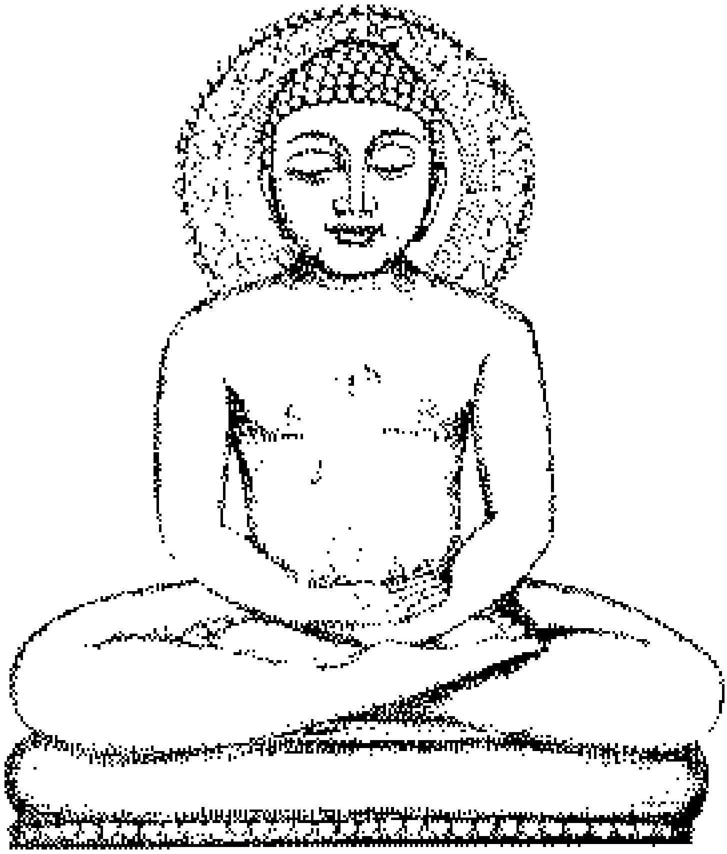

७-१००८ श्री सुपार्श्वनाथ जी

पूर्वभव—

मानव सामाजिक प्राणी है। किसी के सुख वैभव और प्रतिष्ठा का मूल्यांकन प्रायः सामाजिक दृष्टिकोण से किया जाता है। साथ ही मनुष्य बुद्धि जीवी है। पुरुषार्थी है। सत् पुरुषार्थ द्वारा वह स्वयं शुभ या अशुभ कर्म करता है। तदनुसार शुभाशुभ बंध करता है और उसी प्रकार अच्छा बुरा फल भोगता है। जैन शासन में जीव मात्र, सुख और दुःख पाने में पूर्ण स्वतन्त्र है। जो अपने चैतन्य को पाने का प्रयत्न करता है सुखी हो जाता है और निज स्वभाव को पाकर अमर हो जाता है। उभय लोक में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ही सुख देने वाले हैं। इस तत्त्व का ज्ञाता ही श्रेयस् की सिद्धि कर सकता है।

धातकीखण्ड द्वीप में पूर्व विदेह क्षेत्र है। यह सीता नदी के उत्तर तट पर स्थित है। यहाँ प्रायः पुण्य पुरुष ही उत्पन्न होते हैं। अनेक देशों

में सुकच्छ देश है, इसमें क्षेमपुर नाम का नगर है। इस नगर का राजा था नन्दिषेण। वस्तुतः यह आनन्द का पुञ्ज था। मानवता के समस्त गुणों का आकार था। पुण्य और प्रताप इसके साथी थे। बिना वैद्य के शरीर नीरोग और बिना मंत्री के राज्य सुख सम्पन्न था। समस्त प्रजा स्वभाव से इसमें अनुरागी थी। इसकी राज्य लक्ष्मी सुखद थी। तो भी अहंकार और ममकार इससे कोसों दूर क्या, नहीं से थे। जिनभक्ति, विनय, गुरुसेवा और अध्ययन इसके प्राण थे। धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थ होड लगाये, बिना रुकावट के बढ़ रहे थे। परन्तु तीनों ही एक दूसरे के उपकारक थे। शत्रु विजय की इच्छा न केवल इस सम्बन्धी थी अपितु पर लोक सम्बन्धी शत्रुओं को भी जीतने की थी।

ज्ञानी का लोक निराला ही होता है। वह सब कुछ करके भी अकर्ता बना रहता है और सब कुछ भोगता हुआ भी अभोक्ता रह जाता है। यही हाल था राजा नन्दिषेण का। उसका लक्ष्य आत्म हित पर था। वह निरन्तर संसार, शरीर और भोगों की क्षणभंगुरता का विचार करता। आत्मा के ज्ञाता दृष्टा स्वभाव में रहता चिद्विलास को पाने का उद्यम करता। "जहाँ चाह वहाँ राह" सहसा वैराग्यांकुर प्रस्फुटित हुआ। द्वादशानुप्रेक्षाओं के चिन्तन में रत हो गया। राग-द्वेष मोह का फन्दा कट गया। इन्द्रिय विषय भोग को दल-दल से ऊपर उठा। शरीर रोग रूपी सर्पों की बामी प्रतीत होने लगा। नव द्वारों से बहता हुआ वपु महा अशुचिकर है यह पवित्र पदार्थों को भी अपवित्र बनाने का कारखाना है। सोचते-सोचते वह मनीषी मुमुक्षु परम विरक्त हो गया। ओह, इन भोगों ने मुझे खूब पेला है। अब तो मुझे अजर-अमर आत्म-सुख का साधन संयम की शरण जाना चाहिए। इस प्रकार विचार कर परम शान्त चित्त राजा ने अपने पुत्र धनपति को बुलाया और समस्त राज्यभार देकर वन प्रस्थान किया।

महा तपोधन अर्हन्नन्दन मुनिराज की शरण में जा परम् दिगम्बर मुद्रा धारण की। अर्थात् उभय परिग्रह का त्याग कर भावलिङ्गी साधु हो गये। ग्यारह अङ्गों का अध्ययन कर षोडश कारण भावनाओं को भाया, चिन्तन किया। फलतः तीर्थङ्कर गोत्र बांधा। अन्त में उत्तम समाधिमरण कर मध्यम ग्रैवेयक के सुभद्र नाम के विमान में अहमिन्द्र हो गये। वहाँ दो हाथ का शरीर, शुक्ल लेश्या पायी। वह १३॥ माह

में श्वास लेता था। २७ हजार वर्षों में मानसिक आहार लेता था, विक्रिया और अवधि ज्ञान सातवीं पृथ्वी तक था। २७ सागर की आयु थी। इस प्रकार स्त्री संभोग रहित अनुपम सुख भोगने लगा। यह है तप की महिमा।

गर्भ कल्याणक—

काशी देश अपनी सुषमा से स्वर्ग लोक को भी तिरस्कृत करता था। बनारस नगर ने विशेष सौन्दर्य धारण कर लिया। पुण्यांकुर फलित होने पर सांसारिक वैभव, प्रकृति छटा का विस्तार होना स्वाभाविक ही है। जम्बूद्वीप का तिलक स्वरुप इस नगर का भाग्यशाली राजा था सुप्रतिष्ठ। वस्तुत: सम्पूर्ण प्रजा पिता तुल्य इसे प्रतिष्ठा-महत्व देती थी। न्याय प्रिय राजा को कौन नहीं चाहेगा? सूर्योदय से भला पंकज क्यों न विकसित होगा? होता ही है। उसी प्रकार इसके कर्मचारी गण सतत् अपने-अपने कर्त्तव्य पालन में दत्तचित्त थे। मन से आज्ञा की प्रतीक्षा करते थे। राजा अपनी महादेवी पृथ्वीषेणा के साथ इन्द्रीय जन्य भोगों के साथ श्रावक धर्म का भी नियमित रूप से पालन करता था। तदनुसार महादेवी भी सतत सिद्ध भगवान का ध्यान करती थीं। निरंतर भोगों में उदासीन वृत्ति करते हुए आत्म चिन्तन का प्रयास करती थीं। माँ का जैसा भाव-परिणाम होता है उसकी संतान भी उसी प्रकार की उत्पन्न होती है। दम्पत्ति वर्ग अपने ग्रहस्थ जीवन के सार भूत पुत्रोत्पत्ति की प्रतीक्षा करते थे। एक दिन दोनों ही शयनागार में निद्रादेवी की गोद में सो गये।

प्रात:काल हो गया। पशु बन्धन खुल गये। पक्षीगण कलरव करने लगे। सुनहली रवि रश्मियाँ भूमण्डल पर खेलने लगीं। आकाश मण्डल सुहाना हो गया। एकाएक बन्दीजनों के आशीर्वादात्मक गीत-संगीत के साथ राजा रानी ने शैया त्याग की। आंगन में आये। रत्नों की जगमगाहट से आलोकित प्रांगण को देखकर विस्मय और आनन्द में डूब गये। प्रतिदिन त्रिकाल यही दृश्य होता रहा। क्रमश: छ: माह व्यतीत हो गये। तीनों संध्याओं में १२॥ करोड़ रत्नों के वर्षण से न केवल राजकुल का अपितु समस्त राज्य का दु:ख दारिद्र नष्ट हो गया। याचकों का अभाव हो गया। वसुधा ने सार्थक नाम प्राप्त किया। अर्थात् 'वसु' का अर्थ है धन, 'धा' से धारण करने वाली यह अन्वर्थ नाम हुआ।

छम-छम वर्षा की फुहार पड रही थी संध्या फूल उठी। पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष मुस्कुराने लगा। शनैः शनैः रात्रि का आगमन हुआ। रानी ने शैया का आश्रय लिया। भाद्र मास की शुक्ल पक्ष की छठ का दिन था। इसी दिन रात्रि के पिछले प्रहर में महारानी पृथ्वीषेणा ने १६ स्वप्न देखे। माता मरुदेवी की भाँति ही ये स्वप्न थे। प्रातः बन्दीजनों की विरदावली के साथ तन्द्रा रहित निद्रा भंग हुई। अन्य दिनों की अपेक्षा आज विशेष हर्षित, प्रफुल्ल चित्त थीं। अतिशीघ्र दैनिक क्रिया से निवृत्त हो राज्यसभा में पधारीं। महाराज ने भी बड़े प्रेम और आदर से महारानी को अर्द्धासन् देकर अपने पास बिठाया। नम्रता पूर्वक महादेवी ने रात्रि के स्वप्न सुनाये अन्त में मुख में हाथी ने प्रवेश किया यह भी बतलाया और किंचित मुखारविन्द नीचे किये हुए फल रूप उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी। स्वप्नों के वृत्तान्त से सिद्ध-मनोरथ राजा ने कहा, देवी, आपके स्वप्नों का फल "त्रैलोक्य विजयी पुत्र होगा", वह धर्म तीर्थ का प्रवर्तन कर मोक्ष जायेगा। स्वप्न फल सुनकर महादेवी को कितना आनन्द हुआ क्या कोई कह सकता है? मिश्री का मिठास खाने वाला ही अनुभव कर सकता है दूसरे को नहीं बता सकता। बस यही हाल था महारानी का। अतएव भादों सुदी ६ विशाखा नक्षत्र में, अग्निमित्र योग में वह पुण्यवान अहमिन्द्र माता के गर्भ में आ विराजमान हुआ, सीप में मुक्ता की भाँति सुख से।

जन्म कल्याणक—

वर्षाकाल गया। क्रमशः शरद, शिशिर, हेमन्त और बसन्त ऋतु भी समाप्त हो चली। माता पृथ्वीसेना की गर्भ वृद्धि के धन, वैभव, बुद्धि, कला विज्ञान का पूर्ण विकास हुआ। जिसकी देवियाँ रक्षा करें भला उसका अभ्युदय क्यों न होगा? षट् कुमारिकाओं ने गर्भ शोधना की। छप्पन कुमारियाँ अहर्निश दासी के समान सेवा में तत्पर थीं। स्वयं इन्द्र शचि सहित जिसकी भक्ति में तन्मय हो उस माँ को कष्ट कहाँ? न उदर वृद्धि हुयी न कृशकाय। अपितु तेजपुञ्ज सौन्दर्य छटा फूट पडी। नाना विनोदों, पहेलियों के उत्तर-प्रत्युत्तर, तत्वचर्चा, प्रश्नोत्तर, पठन-पाठन आदि में काल यापन हो रहा था। धीरे धीरे नव मास पूर्ण हो गये। आ ही गई वह सुहानी अभिप्सित घडी जिसकी प्रतीक्षा में राजा-रानी प्रजा सहित पलक पाँवडे बिछाये समय यापन करते थे। जेठ सुदी द्वादशी के दिन अग्निमित्र योग में ऐरावत के समान उन्नत और महा-

पुण्यशाली पुत्र का जन्म हुआ। बालक की कान्ति से पूरा कमरा प्रकाश से जग-मगा उठा। देवियों द्वारा जलाये रत्नदीप मन्द हो गये। उस दीपमालिका का केवल मंगल-शुभाचार मात्र प्रयोजन रह गया। सिंहनाद घंटा, भेरी आदि की ध्वनी से जाग्रत हुए देवगण अपने-अपने परिवार सहित इन्द्र को आगे कर बनारस नगरी में आये। उस समय शचि देवी प्रसूतिगृह से बालक को लाई और इन्द्र ने हजार नेत्रों के द्वार से बाल प्रभु को देखा। यह दृश्य बड़ा ही रम्य था। ऐरावत हाथी पर भगवान को विराजमान किया। सपरिवार और ससैन्य इन्द्र भगवान को लेकर सुमेरू पर्वत पर गये और क्षीर सागर के जल से १००८ कलशों से जन्माभिषेक किया। सभी ने आनन्द से गंदोधक लगाया और पुनः लाकर बालक को माता की गोद में विराजमान किया। आपका नाम सुपार्श्वनाथ इन्द्र ने नियुक्त किया। इसी का समर्थन पिता और ज्योतिषियों ने दिया। माँ बाल चन्द्र को देख आनन्द सागर में निमग्न हो गई। इन्द्र ने आनन्द नाटक किया। महाराजा सुप्रतिष्ठ ने भी पुत्र जन्मोत्सव के उपलक्ष में नगर की शोभा कराई तथा अयाचकदान, अभयदान आदि दिये। इन्द्र बाल प्रभु के साथ कुछ देवों को बालरूप धारण कर रहने का आदेश दे स्वयं सवैभव स्वर्ग चला गया। यद्यपि सुप्रतिष्ठ के घर में सुपार्श्व बाल के लालन-पालन, खेल-कूद के सभी साधन पर्याप्त थे। तो भी इन्द्र स्वर्ग से प्रतिदिन वस्त्रालंकार, कल्प वृक्षों के फूलों की मालाएँ, अनोखे खिलौने आदि भेजता था। अंगूठे में स्थापित अमृत का पान करते हुए दोज के मयंक के समान बढ़ने लगे।

बालक की क्रीड़ाएँ किसका मन नहीं हरतीं ? फिर भावी भगवान की लीलाएँ तो जन-जन का मनोविनोद करेंगी ही। मृदु मुस्कान, चपल-चाल, निरन्तर सुखद थी। क्रमशः बालावस्था पार कर कुमार वय में आये और पुनः यौवनावस्था को स्वीकार किया।

राज्यकाल---

पद्मप्रभु के नौ हजार करोड़ सागर बीत जाने पर आपका जन्म हुआ। आपकी आयु २० लाख पूर्व की थी और शरीर की ऊँचाई २०० धनुष प्रमाण थी। अपनी कान्ति से चन्द्रमा को भी लज्जित करते थे। पाँच लाख वर्ष कुमार काल के व्यतीत होने पर इन्हें पिता द्वारा राज्य प्राप्त हुआ। यह केवल दान देने और त्याग करने के लिए ही था।

अर्थात् राज्य में तनिक भी इनकी प्रीति नहीं थी। इन दिनों इन्द्र सुश्रुषा आदि आठ बुद्धि के धारक, शास्त्रों में निपुण, नृत्य-कला में प्रवीण, देखने में सुन्दर, मधुर कण्ठ वाले संगीतकार एवं नाना कलाओं में निपुण देवांगनाओं को बुलाकर भगवान को प्रसन्न करता था। सभी इन्द्रियों के विषयों का सेवन करते थे। शुभ नाम कर्म के उदय से शरीर में १० अतिशय स्वभाव से थे। सबके हितू और प्रिय थे। वे सदा प्रसन्न रहते थे। शरीर कल्याण रूप था वे मति श्रुत और अवधिज्ञान से मंडित थे। उनकी कान्ति प्रियंगु पुष्प के समान थी। उनकी अशुभ-प्रकृतियों का अनुभाग अतिमन्द और शुभ प्रकृतियों का अनुभाग उत्कृष्ट था। मोक्ष के अभ्युदय और ऐश्वर्य का कण्ठहार था। चरण नख की शोभा इन्द्रों के मुखों की कान्ति को भी तिरस्कृत करती थी। आठ वर्ष की वय से प्रत्याख्यान और संज्वलन कषाय का उदय था। स्वभाव से ही देश-संयमी थे। अतः प्रचुर, असीम भोगों का भोग करते हुए भी उनकी असंख्यात गुणी निर्जरा होती थी। अनेकों सुन्दर आर्य कन्याओं के साथ उनका विवाह हुआ था। नाना विनोदों को वे अनासक्त भाव से करते थे। अपने अतुल वैभव को भोग के लिए नहीं अपितु दान के लिए समझते थे। सत्य ही है "परोपकाराय सतां विभूतयः" सत्पुरुषों की विभूति विश्व-कल्याण के लिए ही हुआ करती है। जिनके चरणों में तीनों लोकों की सम्पदा दासी समान निवास करती है उन्हें अपने भोगों की क्या चिन्ता? प्राणी मात्र उनका था और वे थे प्राणी मात्र के। उनका सुख-दुःख सबका था और सबका सुख-दुःख उनका ही था। इस प्रकार निर्मल विचारों, परिशुद्ध भावना, उज्ज्वल सदाचार से उनके राज्य में अमन चैन था। परन्तु राजकुमार की दशा तो स्वर्ण पिंजरे में पलने वाले राज शुक (तोते) के समान थी। कब द्वार खुले कि मैं उड़कर स्वतन्त्र वन विहार करूँ। आनन्दोपभोग में बीस पूर्वाङ्ग कम एक लाख पूर्व मात्र आयु रह गई। १४ लाख पूर्व से २० पूर्वाङ्ग कम काल तक राज्य किया।

वैराग्य—

वसन्त गया। ग्रीष्म ऋतु आयी। जीवन में कितने ही वसन्त आये, गये पर उन्हें कौन देखे, पहिचाने कौन? समझे कौन? ज्ञानी पुरुष। वह भी तभी जब ज्ञान का उपयोग करे। श्री सुपार्श्व के समक्ष आयी

ग्रीष्म ऋतु ! उन्होंने देखा बसन्त का सौन्दर्य फीका पड़ गया, झुलस गया ग्रीष्म ताप से हृदय में वेदना जगी, मानस पर सत्य की अमिट रेखा खिंच गई । प्रत्येक पदार्थ परिणमन शील है, नश्वर है, जीवन भी इसका अपवाद नहीं । मुझे भी मरना होगा । नहीं, मैं अब इस मरण की श्रेणी से बाहर आने का प्रयत्न करूँगा । ओह, भूल गया अपने अमरत्व को, अजरत्व को । कितना बड़ा प्रमाद है मेरा ? कितना भयंकर दुष्परिणाम है इस जग जंजाल का, भोगों का और राज्य सम्पदा का ? सब कुछ छाया के समान ही अस्थिर है । क्या मेरे जैसे ज्ञानी को सामान्य जनवत् इन तुच्छ प्रलोभनों में फंसना उचित है ? मैं अंधे के समान इन विषयों में उलझा हूँ, ओह ! कितनी विचित्र है मोह की लीला ! अज्ञानान्धकार फट गया । बोध रवि उदित हुआ एक क्षण भी राज-वैभव और राजाज्ञा उन्हें नहीं सुहाया । तत्क्षण अपने पुत्र को राज्य प्रदान कर संयम धारण करने का दृढ़ संकल्प किया । क्या सुमेरु को प्रलय पवन चला सकता है ? नहीं । दृढ़ मनस्वी-आत्मार्थी का संकल्प कौन चलायमान कर सकता है ? कोई नहीं । उसके समक्ष तो शूल फूल बनकर आते हैं, आपत्ति-सम्पत्ति हो जाती है, निराशा आशा बन कर छाती है, अंधकार प्रकाश रूप में फैलता है । बस यही हुआ राजा सुपार्श्व को । जेठ का तपता सूर्य उनके चरणों में नत हो गया, जलती भूमि शीतल बन गयी । आगये देव ऋषि-लौकान्तिक देवगण उनके विचारों की पुष्टि के लिए, जय-जय घोष से स्तुति करने लगे, धन्य-धन्य कर पुण्यवर्द्धन किया, हमें भी मनुष्य भव मिले और शीघ्र आपके पदचिह्नों का अनुगमन करें इस भावना के साथ-साथ अपने निवास स्थान को लौट गये ।

परमाणु की चाल विद्युत गति से भी तीव्र है । प्रभु के पुण्य परमाणु जा पहुँचे स्वर्ग लोक में । चारों निकायों के देवों को अतिशीघ्र दीक्षा पत्रिका प्राप्त हो गई बिना कागज और स्याही की । इन्द्र राजा क्यों चूकें इस पुण्यावसर को । "मनोगति" नामक शिविका सजाकर ले आया । सपरिवार आ पहुँचा वाराणसी नगरी में अतिशीघ्र इस भय से कि कहीं मुझ से पहले कोइ और न ले जाय प्रभु को । महाराजा सुपार्श्व भी तैयार थे, अब राजा से भगवान बनने को । इन्द्र द्वारा अभिषिक्त होने के बाद तत्क्षण पालकी में सवार हुए । प्रथम भूमिगोचरी राजा लोग फिर विद्याधर राजा ७-७ कदम शिविका लेकर चले और तदनन्तर

इन्द्र, देवादि आकाश मार्ग से आ पहुँचे सहेतुक वन में । ३००० धनुष ऊँचे प्रियंगु वृक्ष के नीचे स्वस्तिक प्रपूरित स्वच्छ शिलापट्ट पर आ विराजे ।

अपराह्न काल, विशाखा नक्षत्र, काशी नगरी के सहेतुक वन में बेला (दो दिन का) उपवास का नियम कर ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन "नमः सिद्धेभ्य" उच्चारण कर स्वयं पञ्चमुष्ठी केश लौंचकर जैनेश्वरी भगवती दीक्षा धारण की । चारों ओर सुर-नर असुरों द्वारा जय-जय नाद गूंज उठा । प्रभु ने उभय परिग्रह को तृणवत् सर्प कंचुली के समान त्याग दिया । गुप्तियों से प्रसाद से उसी समय आपको चतुर्थ मनः पर्यय ज्ञान प्रकट हो गया । प्रभु तपः लीन हुए । सूर्यक्षितिज में लय हुआ और आगत सुरा सुर, नर नारियाँ अपने-अपने स्थानों को प्रस्थान कर गये । प्रभु के साथ १००० राजाओं ने मुनिमुद्रा धारण की जिनके मध्य श्री सुपार्श्व नक्षत्रों से वेष्ठित चन्द्रवत शोभित हुए ।

पारणा—

मनोबल भी एक आश्चर्य जनक स्थिति है । इसकी शक्ति का पार नहीं । "मन चंगा तो कठौती में गंगा ।" जहाँ लगादो बेडा पार उधर ही का । प्रभु एकाग्रचित्त ध्यान निमग्न हो गये । निमिष के समान २ दिन चले गये । धारणा के दिन भगवान ने ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक वन से प्रयाण किया । नातिमन्द गमन करते हुए सोमखण्ड (पटली खण्डपुरी) में प्रवेश किया । सूर्योदय होने के पूर्व प्राची में लालिमा बिखर जाती है उसी प्रकार आज नगरी में स्वभाव से उल्लास छाया था । राजा-रानी को विशेष प्रमोद भाव जाग्रत हो रहा था । वे दम्पत्ति विशेष जिन पूजा कर, तत्त्व चर्चा के साथ परमोत्कृष्ट अतिथि-मुनिराज की प्रतीक्षा में द्वार पर विनम्र भाव से खड़े थे । भावना भव भञ्जनी पुनीत, श्रद्धा भक्ति के फल स्वरुप उन्होंने एक विशाल काय दिव्य ज्योति पुञ्ज जात रूप स्वामी-मुनिराज को सम्मुख आते देखा । हर्ष से गद् गद्, संतुष्ट, दृढ भक्ति से कराञ्जुलि मस्तक पर रख, हे स्वामिन् नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, अत्रावतर, अत्रावतर, तिष्ट, तिष्ट कहकर पड़गाहन किया । तीन प्रदक्षिणा देकर परम उल्लास से दम्पत्ति वर्ग ने नवधा भक्ति पूर्वक क्षीरान्न से पारणा कराया । राजा महेन्द्रदत्त की कान्ति सुवर्ण समान, प्रभु-पार्श्व हरित वर्ण पन्ना समान, रवि रश्मियाँ शुभ वर्ण

मिलकर इन्द्रधनुष की शोभा को लज्जित कर रही थी। प्रभु का निरंतराय सुख से आहार समाप्त होते ही देवों ने पञ्चाश्चर्य किये। १ रत्नवृष्टि, २ पुष्पवृष्टि, ३ गंधोदक वृष्टि, ४ दुंदुभिनाद और ५ जय-जय ध्वनि हुयी। राजा-रानी ने अपने को धन्य मानते हुए संसार भवावली को छेद कर ३ भव मात्र का बनाया। अर्थात् तीसरे भव से मुक्ति प्राप्त करेंगे।

छद्मस्थ काल—

खान से प्राप्त सोना कुन्दन बनता है। यह मनुष्य साध्य है। कर्मलिप्त आत्मा परमात्मा में बनता है यह भी मानव पुरुषार्थ का अन्तिम माहात्म्य है। कुन्दन बनाने को चाहिए अग्नि। परमात्मा बनने को चाहिए कठोर तप: साधना। वह (कुन्दन) बनाया जाता है पर परमात्मा बना जाता है। स्वयं तपना होता है। अपने ही द्वारा अपने को शुद्ध करना होता है। अस्तु, भगवान अपने में लय हुए, अपनी आत्मा में ही तल्लीन हुए। एक दो दिन नहीं पूरे ६ वर्ष व्यतीत किये मौन साधना में। अखण्ड मौन में छद्मस्थ काल व्यतीत किया। आतापन योग, वृक्षमूलाधि योग, शुभ्रावकाश योग इत्यादि नाना प्रकार के योग धारण कर कर्म शत्रु को वश किया। ध्यानानल में भौंक दिया। पक्षोपवास, मासोपवास आदि कर इन्द्रिय निग्रह कर आत्मा में समाहित हुए। मोह शत्रु को जीतने में समर्थ हुए।

आत्म शक्ति बढ़ने लगी, कर्म शक्ति क्षीण होने लगी। दुर्बलता भय का कारण है। बेचारे कर्म थर-थर कांपने लगे, कोई इधर-उधर भाग-दौड़ में लगे, कोई गिरा, कोई पड़ा; सब ओर भगदड़ मच गई। प्रभु अपने में मस्त थे, बढ़ रहे थे मुक्ति पथ पर, चरणों से नहीं-भावों से, परिणाम शुद्धि से। आ ही पहुँचे उस सीमा पर जहाँ से तीर लक्ष्य पर सही पहुँचे। धर्मध्यान की सीमा पार हुई। शुक्लध्यान का प्रारम्भ किया। सातिशय अप्रमत्त गुणस्थान से क्षपक श्रेणी आरोहण किया। क्रमश: आठवें, नौवें और दशवें से बारहवें गुणस्थान में जा पहुँचे। क्रमश: कर्म प्रकृतियों का क्षय करते हुए ६३ प्रकृतियों का समूल क्षय कर सर्वज्ञ हुए।

केवल ज्ञान कल्याणक—

घातिया कर्म चारों नाश हुए। इधर कारण के अभाव में कार्य कहाँ से रहे। अस्तु, ज्ञानावरणी के अशेष अभाव से सकलज्ञान-केवलज्ञान

प्रकट हुआ, दर्शनावरणी के विनाश से अनन्त दर्शन, मोहनीय का सर्वथा विगलित होने से अनन्त सुख और अन्तराय के अभाव से अनन्तवीर्य प्रकट हुआ। सकल चराचर पदार्थ अशेष पर्यायों सहित एक साथ उनके निर्मल ज्ञान में प्रतिबिम्बित हो उठे। उधर देवेन्द्र ताक में बैठा ही था, संकेत मिलते ही भू लोक में आया। समवशरण मण्डप तैयार करने को कुबेर को आदेश दिया। फाल्गुण कृष्णा छठ के दिन शाम को विशाखा नक्षत्र में केवलज्ञान और केवल दर्शन युगपत प्राप्त हुए। विशाल वैभव से इन्द्र ने ज्ञान कल्याणक पूजा की।

समवशरण रचना—

बुद्धि का फल है तत्त्व विचार। तत्त्व परिज्ञान का साधन है तत्त्वज्ञों की संगति, उनका उपदेश-देशना। अत: सुमति धारी इन्द्र ने भगवान के तत्त्व ज्ञान से लाभ लेना चाहिए, सोचकर सभामण्डप की रचना करायी। बारह सभाओं को समन्वित किया। अपने उदार मनोभाव से ९ योजन प्रमाण विस्तार (३६ कोश में) में समवशरण रचना की। सहेतुक वन में शिरीष वृक्ष के नीचे छद्मस्थ प्रभु को सर्वज्ञता प्राप्त हुयी थी—अर्थात् केवली हुए थे। इसलिए कुबेर ने सहेतुक वन में ही सभा भवन तैयार किया। भव्य सम्यग्दृष्टि मनुष्य, स्त्रियाँ बाल बालिका (आठ वर्ष के) चारों प्रकार के देव देवियाँ १०० इन्द्र-इन्द्राणियाँ, पशु पक्षी आदि सभी प्रेम से यथा योग्य स्थान पर बैठकर परम श्रद्धा से भगवान की धर्म देशनामृत का कर्णपुटों से पान करते थे-सुनते थे।

समवशरण में ११००० सामान्य केवली थे, २०३० पूर्व धारियों की संख्या थी, २४४९२० पाठक-शिक्षक, ९१५० मन: पर्ययज्ञानी, १५३०० विक्रिया ऋद्धि धारी, ९००० अवधिज्ञानी' ८६०० वादी थे। सम्पूर्ण ३००००० अर्थात् तीन लाख थे। बलदत्त या बली प्रधान गणधर सहित ९५ गणधर थे। मीन श्री प्रमुख गणिनि (मुख्य आर्यिका) थीं। सम्पूर्ण आर्यिकाओं की गणना ३३०००० थी। इनका "दानवीर्य" प्रमुख श्रोता था। तीन लाख श्रावक, पाँच लाख श्राविकाएँ थीं। वरनन्दी या मातंग इनका यक्ष और काली (मालिनी) नामकी यक्षी थी। इस प्रकार असंख्यात देव-देवी एवं पशु पक्षियों के साथ परिवृत भगवान सुपार्श्व प्रभु गंध कुटी में सुशोभित होते थे। सभी सुरासुर, नरादि उनकी नाना विध अष्ट प्रकारी पूजा करते थे। तीनों लोकों के सकल पदार्थ तीनों काल सम्बन्धी सम्पूर्ण पर्यायों सहित उनके ज्ञानालोक

में 'हस्तामलक' वत् झलकते थे । भगवान ने शिष्यानुग्रह करने वाला अपना पावन विहार समस्त आर्य क्षेत्र में किया । सर्वत्र धर्माम्बु वृष्टि कर भव्यांकुरों का अभिसिंचन कर सन्मार्ग प्रदर्शित किया ।

योग निरोध –

महान् योगियों की समस्त क्रियाएँ महान् ही होती हैं । वे अपने में लीन रहते हैं । वस्तुत: वे अपने ही आत्म कल्याण की दृष्टि रखते हैं, इस साधना के माध्यम से अन्य भव्यात्माओं का उनके निमित्त मात्र से परम कल्याण हो जाता है । अत: आयु का एक माह शेष रहने पर वे परम् वीतरागी भगवान योग निरोध कर परम् पावन शैलेन्द्र श्री सम्मेदगिरि की समुन्नत प्रभास कूट पर आ विराजे । इस समय भी एक हजार केवली भी साथ में विद्यमान थे । प्रतिमायोग से निश्चल पद्मासन से ध्यान निमग्न हो गये ।

मोक्ष कल्याणक —

पल-पल कर वर्षों व्यतीत हो जाते हैं । फिर भला एक मास का क्या मूल्य ? पलक मारते जैसा समय पूरा हो गया । प्रभु ने शुक्लध्यान का अन्तिम चरण संभाला-व्युपरत क्रिया निवृत्ति ध्यान द्वारा दुष्ट-क्लष्ट अघातिया-चारों कर्मों को ध्वस्त किया । फाल्गुण शुक्ला सप्तमी के दिन विशाखा नक्षत्र में, सूर्योदय के समय अघातिया चतुष्क का भी नाश कर परम पद-मुक्ति पद प्राप्त किया । आपके साथ ही १००० अन्य केवलियों ने भी अमरत्व-मोक्ष प्राप्त किया ।

तदनन्तर पुण्यवान कल्पवासी उत्तम देवों ने (इन्द्रादिकों ने) उसी समय आकर उस प्रभासकूट पर प्रभु का मोक्ष कल्याणक महा महोत्सव मनाया । अग्निकुमार देवों ने अपने किरीटों से उत्पन्न अग्नि द्वारा अन्तिम संस्कार किया । परम पवित्र भस्म को मस्तक पर चढ़ाया । अत्यन्तानन्द के साथ चतुर्णिकाय देव अपने-अपने स्थान को गये । इसके बाद समस्त भक्त जन श्रावक श्राविकाओं ने अष्ट द्रव्य से पूजा कर, लाडू चढ़ाकर तीन प्रदक्षिणा दे गुणस्तवन किया, अपने कर्मों की विशेष निर्जरा की । इस प्रभास कूट के दर्शन मात्र से ३२ कोटि उपवासों का फल प्राप्त होता है । अनेकों असाध्य रोगों का शमन होता है । इस टोंक

की मिट्टी के लगाने से कुष्टादि व्याधियाँ तक दूर हो जाती हैं। इनका चिह्न **स्वास्तिक** है।

अत्यन्त पराक्रमी, आत्म साधना में निपुण, श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी हमें भी विषय वासनाओं से उठकर, मुक्ति पथ आरूढ़ होने की शक्ति प्रदान करें।

॥ भूयात् भव शान्तिः ॥

चिह्न 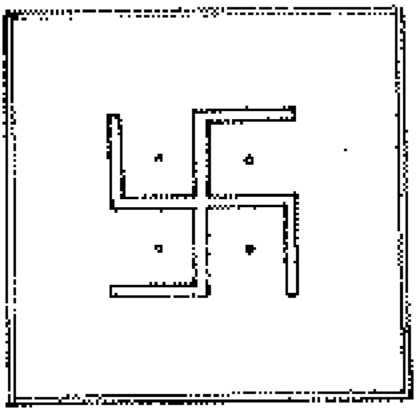 स्वास्तिक

प्रश्नावलि—

१. श्री सुपार्श्वनाथ का चिह्न क्या है ?, कितनेवें नम्बर के हैं ?
२. जन्मभूमि, माता-पिता, ज्ञानोत्पत्ति वृक्ष, मोक्ष स्थान के नाम बताओ ?
३. भगवान सुपार्श्व का बाल्यकाल कितना था ?
४. राज्यकाल की क्या-क्या विशेषताएँ हैं ?
५. छद्मस्थ काल, और देशना काल का प्रमाण बताओ ?

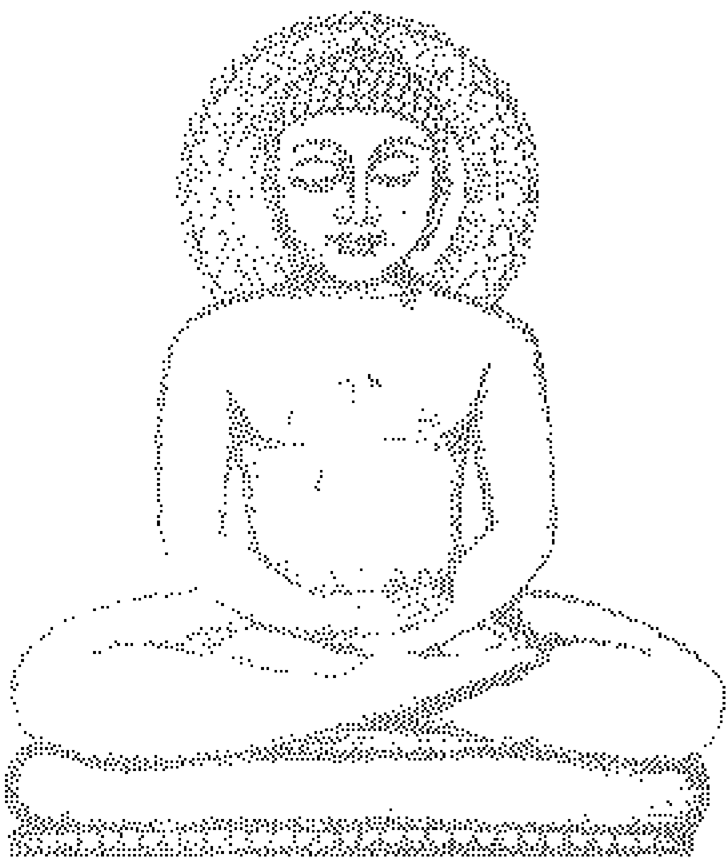

८–१००८ श्री चन्द्रप्रभु जी

पूर्वभव—

ऊपर स्वर्ग और नीचे नरक लोक के मध्य में असंख्यात द्वीप समुद्रों से वेष्टित है "मध्यलोक" । इसका मापदण्ड है सुमेरु पर्वत । इसी को घेरे तीसरे नम्बर का पुष्करवर द्वीप है । ठीक इसके मध्य में मानुषोत्तर पर्वत है । इसके पूर्व और पश्चिम दिशा में मन्दर और विद्युन्माली नाम के दो मेरु हैं । पूर्व दिशा के मन्दर मेरु से पश्चिम की ओर महा विदेह क्षेत्र है । उसकी सीता नदी के उत्तर तट पर एक सुगन्धि नामक देश है । यह सर्व प्रकार सम्पन्न है । इसमें श्रीपुर नाम का नगर है । यह रचना अनादि है परन्तु राज्य शासन और शासक—राजा बदलते रहते हैं । पूर्वकाल में यहाँ श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था । यह राजा बलवान, धर्मात्मा, दयालु और न्यायप्रिय था । विचारज्ञ और विवेकवान था । अहंकार से दूर विनय सम्पन्न था । चूक होने पर पश्चाताप कर सुधारने की चेष्टा करता था । उसकी महारानी का नाम श्रीकान्ता था,

जो लक्ष्मी और सौन्दर्य की प्रतिमा स्वरूप थी। दम्पत्ति वर्ग में अटूट प्रेम था। वह शील, सौभाग्य और पतिभक्ति परायण थी। दोनों का सुखमय काल जिनभक्ति के साथ व्यतीत हो रहा था। वे अपने को सर्व-सुख अनुभव करते थे। क्या संसार में कोई सर्वसुखी हो सकता है? यदि होवे तो वैराग्य क्यों आवे? साधु कौन बने? त्याग करने का भाव ही क्यों आवे? ये भी इसके अपवाद नहीं थे। श्रीकान्ता का यौवन ढलने लगा। सब कुछ होकर भी उसकी अंक सूनी थी। संतान तो नारी जीवन का शृंगार है उसके बिना गृहस्थ जीवन ही क्या?

दिन ढल गया था। सूर्य ने अपनी किरणों को संकोचा। कुछ ही क्षण में प्रतीची में लाली बिखरने लगी। सुगंधित मन्द वायु बह रही थी। उसी समय वह 'श्रीकान्ता' अपने प्रासाद पृष्ठ पर आसीन नगर की शोभा निहार रही थी। सहसा नीचे गेंद खेलते श्रेष्ठी पुत्रों पर दृष्टि पड़ी। दृष्टि क्या थी उसके हृदय की पीड़ा को कुरेदने वाली कुदाली थी। प्रसन्न मुख कुमल्हा गया, श्री उड़ गई, विषाद छा गया चेहरे पर, अश्रुधारा बह चली, सहेलियाँ हक्का-बक्का हो उनके इस परिवर्तन का कारण क्या है? सोच में पड़ गईं। वह स्वयं विचारों में डूब गई "ओह, वह स्त्री धन्य है जिसके ये गुलाब से कोमल गात्र बालक क्रीड़ा कर रहे हैं। नारी के संतान नहीं तो उसकी शोभा ही क्या है? लता प्रसून रहित होने पर क्या शोभित होती है? मैं पुण्यहीन हूँ। पुण्यवान को योग्य संतान का वरदान प्राप्त होता है। इस प्रकार अनेकों विचार तरंगों में डूबी उदासीन वह रानी शयनागार में जा पड़ी। सहेलियाँ ताड़ गईं उसकी मनोव्यथा को पर चारा क्या था? उन्होंने राजा को सूचना दी।

रानी दीर्घ निश्वास के साथ करवटें बदल रही थी। महाराज श्रीषेण इस अप्रत्याशित स्थिति में आकुल हो उठे। अनेक युक्तियों से कारण समझने की चेष्टा की। पर रानी के मौनावलम्बन से सब व्यर्थ गईं। अन्त में हृदयगत भावों की ज्ञाता एक सहेली ने छत की घटना सुनायी। राजा भी इस विषय से दुःखी हो गया। पर कर क्या सकता था? तो भी धैर्यावलम्बन ले समझाया, "जो वस्तु पुरुषार्थ सिद्ध नहीं हो उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। कर्मों के ऊपर किसका वश है? कोई तीव्र पाप कर्म ही पुत्र प्राप्ति में बाधक है। इसलिए पात्र-दान,

जिन पूजा, व्रत, उपवास आदि शुभ कार्यों को करो जिससे अशुभ कर्मों का बल नष्ट होकर शुभ कर्मों की विपाक शक्ति बढ़ेगी।" पतिभक्ति परायणा रानी का शोक कुछ हलका हुआ, विवेक जागा और क्रमशः पुनः धर्म-ध्यान में तत्पर हो गई। अब पहले की अपेक्षा अधिक पात्र-दानादि शुभ क्रियायें करने लगी।

एक दिन श्रीषेण महाराज अपनी प्रिया श्रीकान्ता सहित वन विहार करने गये। पुण्य योग से तपोधन मुनीन्द्र का दर्शन हुआ। धर्मोपदेश श्रवण कर राजा ने "प्रभो मुझे भी यह दिगम्बर रूप धारण करने का अवसर मिलेगा?" प्रश्न किया। श्री गुरु ने कहा, "हे भव्य:, तेरे मन में पुत्र प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा है इसके पूर्ण होने पर तुम गृह त्याग करोगे। तुम्हारी पत्नी ने एक गर्भवती युवती का कष्ट देखकर पूर्वभव में "मुझे यौवनकाल में संतान न हो" यह निदान बांधा था। वह कर्म अब निवृत्त होने वाला है तुम अष्टाह्निका व्रत और पूजा विधान करो। दम्पति वर्ग ने विधिवत् व्रत धारण किया। सहर्ष घर लौटे।

पिरोहित की परामर्शानुसार रत्नमयी जिनबिम्ब प्रतिष्ठा करायी। दोनों ने पंचामृताभिषेक कर गंधोदक से स्नान किया अर्थात् सम्पूर्ण अंगों में लगाया। सिद्धचक्र विधान पूजा कर प्रभूत पुण्यार्जन और अशुभ कर्म प्रक्षालन किया। रात्रि के पिछले पहर में रानी ने हाथी, सिंह, चन्द्र और लक्ष्मी ये ४ स्वप्न देखे, इसी समय गर्भाधान किया। कुछ ही महीनों बाद गर्भ के चिह्न प्रकट हुए। लज्जाशील रानी की दासियों से यह समाचार सुन राजा अति प्रसन्न हुए। उन्हें अनेकों वस्त्राभूषण दान में दिये। धीरे-धीरे नवमास पूर्ण हुए। पूर्व दिशा जैसे सूर्य को जन्म देती है उसी प्रकार श्रीकान्ता ने धर्मप्रकाशी पुत्र रत्न उत्पन्न किया। राजा ने परमानन्द से पुत्र जन्मोत्सव के साथ उसका श्री वर्मा नाम रक्खा।

दोज मयंक सम पुत्र वृद्धि को प्राप्त हुआ। एक दिन राजा वनमाली से सूचना पाते ही शिवंकर वन में श्रीप्रभ जिनराज के दर्शनों को गया। तीन प्रदक्षिणा दे धर्मोपदेश श्रवण कर वहीं श्री वर्मा को राज्य दे दिगम्बर दीक्षा धारण कर घोर तपोलीन हो केवली हो शेष कर्मों को ध्वस्त कर मुक्त हुए।

श्री वर्मा ने भी आष्टाह्निक विशेष पूजा की। पूर्णिमा के दिन अपने कुछ पारिवारिक लोकों के साथ सौध (महल) की छत पर बैठे

उल्कापात देखा। बस क्या था, दृष्टि फिरी, अपने श्रीकान्त पुत्र को राज्य दे स्वयं श्री प्रभ आचार्य के चरणों में जा दिगम्बर हो तप करने लगा। आयु के अन्त में श्री प्रभ नामक पर्वत पर सन्यास मरण कर प्रथम स्वर्ग में श्रीधर नाम का देव हुआ। इच्छानुसार भोग भोग कर आयु के अन्त में च्युत हुआ।

धातकी खण्ड के भरत क्षेत्र के अलका देश की अयोध्या नगरी के राजा अजितंजय की रानी अजितसेना के गर्भ से अजितसेन नाम का पुत्र हुआ। यौवनावस्था प्राप्त कर पिता द्वारा दत्त राज्योपभोग किया। पिता दीक्षा धारण कर मुक्त हुए।

अजितसेन ने अपने पुण्योदय से चक्रवर्ती हो असीम भोगोपभोग सामग्री प्राप्त की। किन्तु विषयों से सदा उदासीन रहे। एक दिन गुणप्रभ तीर्थङ्कर की वन्दनार्थ गये। धर्मोपदेश सुना। भोगों से विरक्त हो अनेकों राजाओं के साथ जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर कठोर तप किया। अन्त में नमस्तिलक पर्वत पर समाधि मरण कर सोलहवें स्वर्ग में शान्तिकर विमान में इन्द्रपद प्राप्त किया।

निमिषमात्र के समान सुख का काल सागरों प्रमाण पूर्ण हो जाता है। आयु के अन्त में च्युत हो वह इन्द्र पूर्व धात की खंड के मंगलावती देश के रत्नसंचयपुर नगर के राजा कनक प्रभ की महारानी कनकमाला के पद्मनाभ नाम का पुत्र हुआ। यह न्याय एवं तर्क शास्त्र का ज्ञाता हुआ। पिता से प्राप्त राज्य का न्याय पूर्वक संचालन किया। पिता दीक्षा ले मुक्त हुए।

पद्मनाभ की सोमप्रभा से सुवर्णनाभि पुत्र हुआ। एक दिन श्री श्रीधर नाम के मुनिराज की वन्दना कर धर्मोपदेश सुन राजा ने सुवर्ण-नाभि को राज्य दे दिगम्बर मुद्रा धारण की। उसने घोर तप के साथ अगाध अध्ययन किया। वे ग्यारह अंग के पाठी हो गये तथा षोडष कारण भावनाओं का प्रगाढ़-सूक्ष्म चिन्तन कर तीर्थङ्कर गोत्र का बन्ध किया। आयु के अन्त में सन्यासमरण कर जयन्त नामक अनुत्तर विमान में ३३ सागर आयु, एक हाथ का सफेद शरीर वाला अहमिन्द्र हो गया। वह ३३ हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता, ३३ पक्ष बाद उच्छ्वास लेता था। जन्म से ७ वीं भूमि तक का अवधिज्ञान लोचन था। यही होंगे चन्द्रप्रभ भगवान।

गर्भावतरण कल्याण—

ऋतुराज बसंत का आगमन हुआ। भूमि ने नव शृंगार किया। वृक्षों ने पुराने पत्तों का त्याग कर नव कोपलों से अपने को अलंकृत किया। लताएँ लहलहाने लगीं। टेसू के फूलों की शोभा का क्या कहना? आम्र मंजरी की मादक गंध ने और भ्रमरों की मधुर गुंजार ने चारों ओर भोगियों को सुख साम्राज्य स्थापित कर दिया। धरा के वैभव को लज्जित करने मानों स्वर्ग का वैभव ईर्ष्यालु हो उठा और जम्बूद्वीप में चन्द्रपुरी के महाराज महासेन के आंगन में रत्नराशि के रूप में वर्षा के बहाने आने लगा। एक दो दिन नहीं, लगातार ६ महीने हो गये थे। इक्ष्वाकुवंशी, काश्यप गोत्रीय महाराजा महासेन अपनी महादेवी लक्ष्मणा के साथ पहले ही महाविभूति का भोग कर रहे थे, फिर अब तो अनेकों देवियाँ उनकी (लक्ष्मणा) सेवा में नाना पदार्थों के साथ आ गई। घर आंगन-दिव्य वस्त्र, माला लेप, शयन, संगीत, नृत्य आदि सुख सामग्री से भर गया। चैत्र कृष्णा पंचमी के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र में उसने संतुष्ट होकर सोलह स्वप्न देखे। सूर्योदय के साथ ही मंगल पाठों के श्रवण पूर्वक निद्रा से उठी। अलंकृत हो राज्यसभा में पधार कर राजा को स्वप्न सुनाये। महासेन नृपति ने "तीर्थङ्कर बालक गर्भ में आया है" कह कर स्वप्न फल बतलाया।

श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी देवियों ने माँ लक्ष्मणा की कान्ति, लज्जा, धैर्य, कीर्ति, बुद्धि और सौभाग्य की वृद्धि की। नाना विनोदों, कथा-वार्ताओं से देवियाँ सेवा कर पुण्यार्जन करने लगीं। धीरे-धीरे गर्भ बढ़ने लगा किन्तु माता का उदर आदि ज्यों का त्यों रहा। अर्थात् विकार नहीं हुआ।

जन्माभिषेक—

आमोद-प्रमोद के दिनों को जाते क्या देर लगती है? क्रीडा मात्र में ६ मास पूरे हो गये। पौष कृष्णा एकादशी का दिन आया। अनुराधा नक्षत्र में मति, श्रुत, अवधि ज्ञान धारी बालक का जन्म हुआ। न केवल चन्द्रपुरी अपितु तीनों लोकों में आनन्द छा गया। राजा का आंगन देवेन्द्र, देव देवियों से भर गया। बाल प्रभु को अंक में धारण कर शचि इन्द्र को ललचाने लगी। इन्द्र ने सहस्र लोचनों से उनकी रूप राशि को निरखा। पुनः इन्द्राणी सहित बाल प्रभु को ले ऐरावत

हाथी पर सवार होकर पाण्डुक वन में आकाश मार्ग से आ पहुँचा। पाण्डुक शिला पर मध्यपीठ-सिंहासन पर सद्योजात बालक को पूर्वाभिमुख विराजमान कर १००८ कलशों में हाथोंहाथ लाये क्षीर सागर के जल से अभिषेक किया। पुनः समस्त देव देवियों ने अभिषेक कर समस्त अंग में गंधोदक लगाया। इन्द्राणी ने कोमल वस्त्र से शरीर पोंछा, वस्त्रालंकार पहनाये, निरंजन होने वाले बालक की आँखों में अञ्जन लगाया। स्वभाव से तिलक होने पर भी अपने पुण्य वर्द्धन को तिलकार्चन किया। नित्य-वादित्रों की ध्वनि और जयघोष के नाद के साथ आकर महासेन नृप की गोद में बालक को देकर इन्द्र ने हर्ष से आनन्द नाटक किया। सबको विस्मित कर बालक के अंगूठे में अमृत स्थापित किया। चन्द्रमा की कान्ति को लज्जित करने वाले रूप को देख बालक का नाम 'चन्द्र प्रभु' घोषित किया। इन्द्र सपरिवार स्वर्ग लोक चला गया।

महासेन राजा ने पुत्रोत्सव में किमिच्छक दान दिया। क्रमशः बालक माता-पिता को हर्षित करता हुआ देवांगनाओं और बालरूप धारी देवों के साथ क्रीडा करता बढ़ने लगा। श्री सुपार्श्वनाथ भगवान के मोक्ष जाने के बाद नौ सौ करोड़ सागर बीतने पर उन्हीं की परम्परा में आपका उदय हुआ। इनकी आयु दश लाख पूर्व की थी। तथा शरीर डेढ़ सौ (१५०) धनुष ऊँचा था। कौतूहली देवियों से लालित चन्द्रप्रभु ने कुमार काल में प्रवेश किया। इनके रूप लावण्य और सुगंधित आदि १० अतिशयों से युक्त शरीर कान्ति को देख लोग नामकर्म की प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। मानों लक्ष्मी इन्हीं के साथ पैदा हुई थी।

कुमार काल—

शरीर वृद्धि से गुणों की वृद्धि होड़ लगाये थी। वीणा बजाना, गीत गाना, मृदंग आदि बाजे बजाना, कुबेर द्वारा लाये वस्त्रालंकार देखना, वादी-प्रतिवादियों के पक्षों की परीक्षा करना, भव्यजनों को अपना दर्शन ना आदि कार्यों के साथ समय व्यतीत होता था। धर्मादि गुणों की वृद्धि होती थी। इस प्रकार दो लाख, पचास हजार पूर्व व्यतीत हुए।

राज्य प्राप्ति—

महाराजा महासेन ने कुमार को यौवन की देहली पर पैर रखते देखा। उनके गुणों को देख फूले न समाये। उनके मन में विचार आया

क्यों न इन्हें राज्य विभूति से अलंकृत करूँ ? जहाँ स्वयं इन्द्र उत्सव मनाने आवे वहाँ के वैभव और आमोद-प्रमोद का क्या ठिकाना ? अनेकों रूपराशि सम्पन्न कन्याओं के साथ उनका विवाह हुआ। सुगंधित कमल पर भ्रमर समूह की भाँति ये चारों ओर से कमल-नयनियों से घिरे नाना सुखोपभोग सेवन करते थे। इस प्रकार ५० हजार पूर्व और २४ पूर्वांग राज्य सम्पदा का सुखानुभव करने में व्यतीत हुए।

वैराग्य—

सजे हुए अलंकार गृह में विराजे थे। देवियों द्वारा अलंकृत प्रभु ने दर्पण में मुखाकृति देखी। सहसा वे चौंक उठे, न जाने कहाँ कौन चिह्न उन्हें विकृत दिखाई दिया। वे सोचने लगे, "ओह यह रूप सम्पदा, धन वैभव विकृत होने वाला है। एक दिन नष्ट हो जायेगा। क्या आयु क्षीण नहीं होगी ? राग-द्वेष की शृंखला संसार की कारण है। मैं इसे जड़ से उखाड़ूँगा। अब एक क्षण भी इन भोगों में नहीं रहना है"। उसी समय ब्रह्मस्वर्ग के अन्त में निवास करने वाले लौकान्तिक देवर्षि आये और उनके वैराग्य भावों की पुष्टी कर चले गये।

दीक्षा कल्याणक—

मनीषियों के दृढ़ संकल्प को कौन चला सकता है। आत्मदृष्टि होने पर कौन संसार से विमुख नहीं होता। तत्त्वज्ञ का अभिप्राय अचल होता है। श्री चन्द्रप्रभु राजा ने उसी समय अपने ज्येष्ठ पुत्र वरचन्द्र को बुलाया और राज्यभार अर्पण कर दिया। स्वयं देवों द्वारा लाई गयी 'विमला' नामक पालकी में सवार हो गये। सात पैंड राजाओं ने पालकी उठायी। पुनः देव आकाश मार्ग से ले जाकर "सर्वर्तुक" वन में जा पहुँचे।

इन्द्र द्वारा स्वच्छ की हुयी, रत्नचूर्ण से मण्डित शिला पर विराज-मान हो "नमः सिद्धेभ्य" के साथ भगवान स्वयं दीक्षित हुए। वस्त्रा-लंकारों का त्याग किया, अन्तरंग परिग्रह को छोड़ा, पौष कृष्णा एकादशी के दिन अनुराधा नक्षत्र में एक हजार राजाओं के साथ निर्ग्रन्थ मुनि हो गये। अन्तः शुद्धि के कारण उसी समय चतुर्थ मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त हुआ। बेला का उपवास धारण किया।

पारणा—

परम मौनी, परम ध्यानी मुनिपुंगव आहार की इच्छा से वन से चले। निरख-निरख चरण न्यास करते प्रभु ने नलिनपुर नगर में प्रवेश किया। चारों ओर द्वाराप्रेक्षण करने वाले अपने-अपने पुण्योदय की प्रतीक्षा कर रहे थे। वहाँ का राजा सोमदत्त भी अपनी प्रिया सहित भक्ति से प्रतीक्षा कर रहा था। उसका पुण्यवृक्ष फला। नवधाभक्ति से प्रभु का पडगाहन कर निर्विघ्न आहार दिया। पात्रदान के प्रभाव से देवों ने उसके घर रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्य किये। आहार ले प्रभु वन में गये और अखण्ड मौन से कठोर तप करने लगे। कषायों का उन्मूलन किया। उभय तप किया। उत्तम ध्यान धारण किया। इस प्रकार जिनकल्प अवस्था में तीन मास व्यतीत किये।

ज्ञान कल्याणक—

दीक्षा वन में ही वे प्रभु वेला का नियम लेकर नाग वृक्ष के नीचे शान्त चित्त से विराजमान हो गये। सम्यग्दर्शन की घातक प्रकृतियों का पहले ही नाश कर दिया था। अब अध: करण आदि तीन परिणामों के द्वारा क्रमश: क्षपक श्रेणी का आश्रय लिया उस समय द्रव्य-भाव रूप चौथा सूक्ष्म सांपराय नाम का चारित्र देदीप्यमान हुआ। उत्तम धर्म-ध्यान प्रथम शुक्ल ध्यान कुठार से मोह शत्रु का नाश किया अवगाढ सम्यग्दर्शन पाया। तदनन्तर द्वितीय शुक्ल ध्यान से शेष तीनों घातिया कर्मों का समूल नाश कर केवलज्ञान लक्ष्मी को पाया। परमावगाढ सम्यग्दर्शन और यथाख्यात चारित्र से अलंकृत प्रभु शोभित होने लगे। फाल्गुन कृष्णा सप्तमी अनुराधा नक्षत्र में संध्या के समय दिव्य ज्योति लोकालोक प्रकाशक ज्ञान से मण्डित प्रभु जिनराज बन गये। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने सभा मण्डप, समवशरण की रचना की।

समवशरण वर्णन—

भगवान की दिव्य वाणी जिस प्रकार प्राणी मात्र को सुख शान्ति और संतोष की कारण थी उसी प्रकार कुबेर द्वारा निर्मित उनका सभा मण्डप (समवशरण) भी सबको सुखप्रद था। बारह सभाओं के मध्य रत्न जडित सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान थे। प्रभु का चारों ओर

मुख मण्डल दिखलाई देता था। इसीलिए गोल मण्डलाकार सभा होने पर भी प्रत्येक सभासद संतुष्ट था। तीनों संध्याओं और अर्द्ध-रात्रि में भी भगवान की दिव्य ध्वनि बिना रुकावट के बराबर खिरती थी। सभा-समवशरण का विस्तार ८॥ योजन और ३४ कोस था। दत्त (वैदर्भ) को आदि लेकर ६३ गणधर थे। ८००० सामान्य केवली, ४००० पूर्वधारी, २१०४०० शिक्षक-पाठक, ८००० विपुलमति मनः पर्ययज्ञानी, १०६०० विक्रियार्द्धिधारी, २००० अवधि ज्ञानी, ७००० वादी, सब मिलाकर २५०००० मुनिराज थे। वरुण श्री मुख्य गणिनी आर्यिका के साथ ३८०००० तीन लाख, अस्सी हजार आर्यिकाएँ थीं। प्रमुख श्रोता-राजा मघव के साथ ३ लाख श्रावक और ५ लक्ष श्राविकाएँ थीं। विजय या श्याम शासन यक्ष और ज्वालामालिनी महादेवी यक्षी थी। इस प्रकार विशाल समुदाय से आपने सम्पूर्ण आर्य खण्ड में विहार कर धर्माम्बु वृष्टि की। आपका तीर्थ प्रवर्तन काल ९० करोड़ सागरोपम और ४ पूर्वाङ्ग प्रमाण था। इनके बाद ८४ अनुबद्ध केवली हुए। असंख्यात देव देवियाँ और संख्यात ही तिर्यञ्च धर्म श्रवण करते थे। पूजा भक्ति स्तुति करते थे।

निर्वाण कल्याणक —

आयु १ मास शेष रहने पर भगवान श्री सम्मेद शिखर की "ललित-कूट" पर आ विराजे। योग निरोध हो गया। समवशरण विघटित हुआ। अब धर्मोपदेश नहीं होता था। परम शुक्ल ध्यान के बल पर असंख्यात गुणी निर्जरा के साथ प्रभु कायोत्सर्ग से आत्मलीन हो गये। १००० मुनियों के साथ प्रतिमायोग धारण किया। १ महिने का योग निरोध कर फाल्गुन शुक्ला ७ सप्तमी के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र में शाम के समय तीसरे शुक्ल ध्यान से चौदहवें गुण स्थान को प्राप्त कर उसी समय चौथे शुक्लध्यान से शेष कर्मों को अशेष विध्वंश कर कर्मातीत-अशरीरी सिद्ध पद प्राप्त किया। १००० मुनियों ने भी सह मुक्ति प्राप्त की। **इनका चिह्न चन्द्रमा है।**

इन्द्र के साथ देवों ने उसी समय आकर परिनिर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाया। इन्द्राणी और देवियों सहित महा पूजा की। अग्नि-कुमार देवों ने अन्तिम संस्कार किया। तदनन्तर नर-नारियों ने अद्भुत महिमा से अष्ट प्रकारी पूजा कर निर्वाण लाडू चढ़ाकर प्रभूत पुण्यार्जन

किया। अपने-अपने भावानुसार सभी पुण्य राशि बटोर कर अपने-अपने स्थान चले गये।

श्री धर्म भूपति पाल पुहमी, स्वर्ग पहले सुर भयो।
पुनि अजितसेन छ खण्ड नायक, इन्द्र अच्युत में थयो॥
वर पद्मनाभि नरेश निर्जर, वैजयन्त विमान में।
चन्द्राभ स्वामी सातवें भव, भये पुरुष पुराण में॥
ललितकूट के दर्शन करने का फल ९६ लाख उपास का फल होता है।

चिह्न 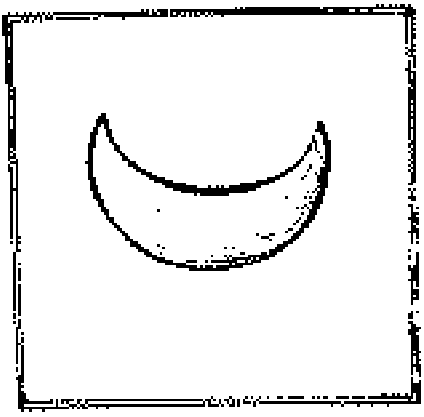 चन्द्रमा

प्रश्नावलि—

१. चन्द्रप्रभु का चिह्न क्या है?
२. इनके कितने पूर्वभव आप जानते हैं? किसी एक भव का वर्णन करिये?
३. दीक्षा वृक्ष और समवशरण की प्रथम रचना का स्थान क्या है?
४. जन्म और मोक्ष की तिथि बताइये?
५. इनके शरीर की ऊँचाई कितनी और रंग कैसा था?
६. चन्द्रप्रभु के माता-पिता और नगरी का नाम बताईये?
७. आपके जिनालय में चन्द्रप्रभु भगवान हैं क्या?
८. इनका कुमार और राजकाल कितना था?
९. किस वन में किस वृक्ष के नीचे केवलज्ञान हुआ?

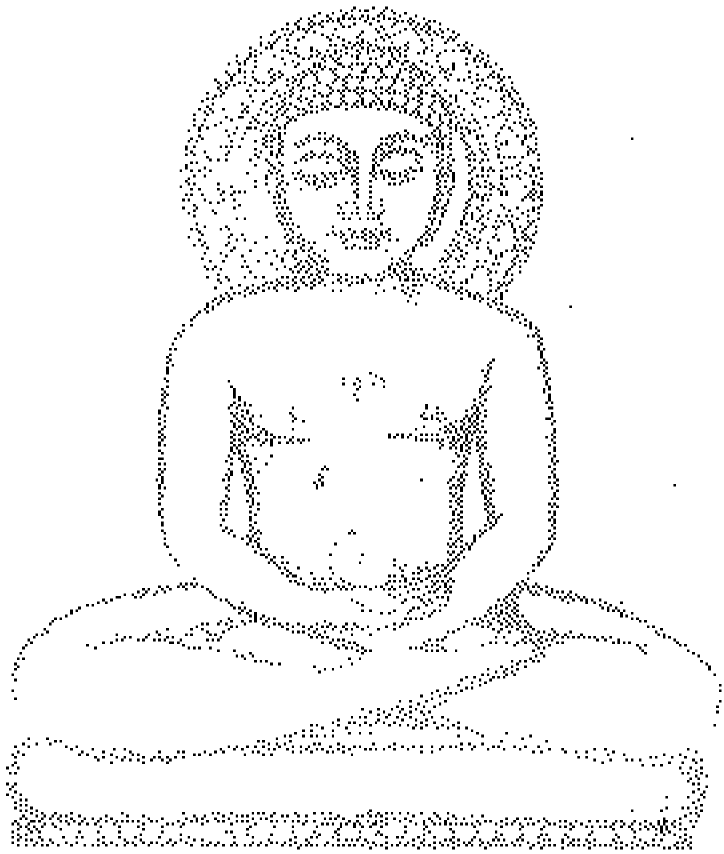

९–१००८ श्री पुष्पदन्त जी

शान्तं वपुः श्रवणहारी वचश्चरित्रं, सर्वोपकारी तवदेव ! ततो भवन्तम् ।
संसार मारव महास्थलरुद्रसान्द्र च्छाया महीरुह मिमेसुविधि श्रयामः ॥

(आ० गुणभद्र)

पूर्वभव—

"मनोहर उद्यान में भूतहित नाम के तीर्थङ्कर पधारे हैं" सुनते ही महाराजा महापद्म पुलकित हो उठा। सिंहासन से सात कदम चलकर उस दिशा में नमस्कार किया। आनन्द भेरी बजी। आज्ञाकारिणी, सर्वगुण सम्पन्न प्रजा—'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति को चरितार्थ करती हुयी—नानाविध रत्नपात्रादि सामग्री लेकर जिन वन्दना को तैयार हो गई। मानो 'पुण्डरीकनी' नगरी अपने नाम को सार्थक करना चाहती है क्योंकि सभी पुण्डरीक सफेद कमल लिये थे जिन पूजन को। महापद्म के राज्य में कभी दण्ड विधान नहीं हुआ था, क्योंकि वह अपने समान ही प्रजा को शिक्षित और न्यायप्रिय बनाये हुए था। किसी को

किसी प्रकार का अभाव नहीं था। प्रजा उसकी भक्त थी। 'पुण्डरीकनी' नगरी को 'पुष्कलावती देश' अपना गौरव समझता था। यह था पुष्करार्द्ध के पूर्व विदेह में।

महाराज महापद्म ने परिजन-पुरजन के साथ भगवान की तीन प्रदक्षिणा दी, अष्टविध पूजा की और यथायोग्य स्थान पर बैठकर धर्मोपदेश श्रवण कर संसार शरीर भोगों से विरक्त हो गया। "मोह, माया, मिथ्यात्व की जड़ बिना तप के नहीं उखड़ सकती, अतः मैं दीक्षा लेकर कर्मों का उन्मूलन करूँगा।" इस प्रकार दृढ़ निश्चय कर अपने पुत्र धनद के लिए राज्य समर्पण कर स्वयं अनेक राजाओं के साथ दीक्षित—मुनि हो गये। अनुक्रम से ११ अंगरूपी आगम के पारगामी बने। सोलह कारण भावनाओं का चिन्तन कर तीर्थङ्कर गोत्र का बन्ध किया। अन्त में समाधिमरण कर चौदहवें प्राणत स्वर्ग में इन्द्र उत्पन्न हुए।

उनकी आयु २० सागर २ लाख पूर्व की थी, शरीर ऊँचाई साढ़े-तीन हाथ, शुक्ल लेश्या, मानसिक प्रवीचार था, पाँचवीं पृथ्वी तक अवधिज्ञान था, दस महीने बाद श्वास लेते थे, बीस हजार वर्ष बाद मानसिक अमृत आहार था, अणिमादि ऋद्धियों से सम्पन्न और महा-बलवान था। अपूर्व और अद्भुत वैभव का अधिपति होकर भी भोगों में उदासीन और जिनभक्ति में दत्तचित्त रहता था।

गर्भावतरण—

इन्द्र की आयु मात्र ६ महीने रह गयी। यह जानकर भी शोक रहित था। पुण्य की महिमा अचिन्त्य है। सौधर्मेन्द्र ने कुबेर को आज्ञा दी और उसने जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की काकन्दी नगरी के महाराजा सुग्रीव के प्रांगण में त्रिकाल रत्न वृष्टि करना प्रारम्भ कर दिया। इक्ष्वाकु वंशी, काश्यप गोत्रीय श्रेष्ठ क्षत्रिय महाराज ने भी यह शुभोदय और भावी कल्याण का चिह्न है, समझकर उस रत्न-राशि को दान में उपयुक्त किया। फलतः दान लेने वालों का नाम ही नहीं रहा। लक्ष्मी का भोग बांट कर ही करना चाहिए। सज्जनों का वैभव सामान्य होता है। जिसका उपभोग सभी कर सकते हैं।

महारानी जयरामा बड़े हर्ष से सिद्ध परमेष्ठी की भक्ति और ध्यान करती थी। आज सायंकाल उसे अपूर्व आनन्द हो रहा था। धीरे-धीरे

सखियों के साथ जिनगुण का कथन करते हुए निद्रा की गोद में खो गई। रात्रि के पिछले प्रहर में उसने १६ स्वप्न देखे और अन्त में अपने मुख में वृषभ को प्रवेश करते देखा। प्रातः पतिदेव से निवेदन कर उनका फल "तीनलोक का स्वामी पुत्र होगा" सुनकर दोनों दम्पत्ति परमानन्दित हुए। फाल्गुन कृष्णा नवमी के दिन मूल नक्षत्र में वह इन्द्रराज च्युत हो आ विराजा इस महादेवी के गर्भ में। इसके पूर्व ही इन्द्र की आज्ञा से रुचकगिरि निवासिनी देवियों ने माता की गर्भ शोधना कर दी थी। यद्यपि वह रजस्वला नहीं होती थी और न उसके मल-मूत्र विकार ही थे तो भी देवियों ने अनेकों दिव्य-सुगंधित पदार्थों से गर्भाशय को सुगंधित कर दिया था। भावी भगवान सुख से आ विराजे।

जन्मोत्सव—जन्मकल्याणक—

देवांगनाओं द्वारा सेवित माता का गर्भकाल पूर्ण हो गया। उन्हें किसी प्रकार का कष्ट या भार नहीं हुआ था। आज चारों ओर हर्ष छाया था। घर-आंगन देव देवियों, इन्द्र इन्द्राणियों से खचित था। कोई आता और कोई जाता। चहल-पहल थी।

मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदा के दिन जैत्रयोग में इस महादेवी ने उत्तमोत्तम पुत्र रत्न उत्पन्न किया। प्रसूतिगृह में जाकर स्वयं इन्द्राणी बाल प्रभु को लायी और इन्द्र की गोद में दिया। सफल मनोरथ इन्द्र इन्द्राणी सपरिवार सुमेरु की पाण्डुक शिला पर पहुँचे और उस सद्योजात बालक का १००८ कलशों से अभिषेक किया। इन कलशों में क्षीर सागर (५वें समुद्र) से देव लोग हाथों हाथ जल लाये थे। दुग्ध गंगा बह चली। इन्द्राणी ने आरती उतारी, शरीर पोंछकर वस्त्रालंकार पहनाये। इन्द्र ने हजार नेत्र बनाकर रूप राशि पान किया और **पुष्पदन्त** नाम विख्यात कर मगर का चिह्न निर्धारित किया। सोत्साह काकन्दी आये आनन्द नाटक कर अपने-अपने धाम चले गये। राजा और पुरजन लोगों ने भी यथा शक्ति जन्मोत्सव मनाया।

देव कुमारों के साथ वृद्धि को प्राप्त सुविधिकुमार (दूसरा नाम) शनैः शनैः शैशव से बाल और बालावस्था से कुमार काल में आये ये चन्द्रप्रभु के मोक्ष जाने के बाद ९० करोड़ सागर बीत जाने पर हुए। इनकी आयु दो लाख पूर्व की थी। १०० धनुष का शरीर था।

५० हजार पूर्व कुमार काल में पूर्ण हुए। पिता ने सर्वगुण सम्पन्न योग्य जानकर अनेकों सुयोग्य कन्याओं के साथ विवाह किया और राज्य भी प्रदान कर दिया।

राज्यकाल—

पुष्पदन्त की रानियों के रुप लावण्य और गुण प्रकर्षता से देव-ललनाएँ भी लज्जित थीं। उनके हाव भाव और क्रीडाओं से मुग्ध राजा भोगों में पूर्ण रुप से निमग्न थे, किन्तु तो भी वे प्रजापालन में पूर्ण सावधान थे। उनके राजगद्दी पर आते ही असंख्य राजा मित्र हो गये। सर्वत्र अमन-चैन छा गया। भिक्षुक खोजने पर भी नहीं मिलते थे। सभी सर्व प्रकार सुखी थे। राज्य की सर्व प्रकार वृद्धि हुयी। सुख शान्ति और आमोद-प्रमोद से शासन करते हुए ५० हजार पूर्व और अट्ठाईस पूर्वाङ्ग वर्ष काल समाप्त हो गया। किसी एक दिन वे अपने महल पर आसीन दिशाओं का सौन्दर्य देख रहे थे। मार्गशीर्ष माह के बादल धीमे-धीमे आकाश में घुमड़ रहे थे। सहसा एक ज्योति चमकी और उसी क्षण विलीन हो गयी। राजा श्री पुष्पदन्त का हृदय इस दृश्य से दहल उठा। उनकी दृष्टि बाहर से भीतर गई। "संसार की असारता स्पष्ट हो गई। संसार में कुछ भी स्थिर नहीं, सार नहीं। एक मात्र आत्मा ही अमर है। यहाँ न कुछ शुभ है, न सुख दायक है, न मेरा ही कुछ है। मेरा आत्मा ही मेरा है, परमाणु मात्र भी मुझसे परे है। मैं ही मेरा सुख, शुभ, शान्ति और नित्य हूँ। ओह! मोहाविष्ट हो आज तक पर को अपना मान कर घूमता रहा। अब एक क्षण भी विलम्ब न करना है।" इस प्रकार स्वयंबुद्ध महाराज ने अपने सुयोग्य पुत्र सुमति को राज्यभार अर्पण किया।

दीक्षा कल्याणक—

श्री पुष्पदन्त जन्म मरण से छुटकारा पाने को कटिबद्ध हुए। इधर लौकान्तिक देवर्षि आकर उनके चारों ओर उपस्थित हुए। वे कहने लगे "प्रभु आप धन्य हैं। मनुष्य भव पाना आप ही का सार्थक है। हम स्वर्ग वासी होने से संसार की असारता को जानकर भी त्याग नहीं सकते। आपका विचार महान् है। हमें भी शीघ्र यह अवस्था प्राप्त हो।

आप पूज्य हैं, विवेकी हैं।" इस प्रकार स्तुति कर अपने नियोग का सम्पादन कर ब्रह्मलोक को चले गये।

देवेन्द्र भी सज धज कर 'सूर्य प्रभा' नामक पालकी लेकर आ पहुँचा। मंगल स्नान और वस्त्रालंकार से अलंकित प्रभु शिविका में सवार हो क्रमशः राजा, विद्याधर और देवों द्वारा पुष्पक वन में जा पहुँचे। इन्द्र द्वारा स्थापित रत्नचूर्ण से मण्डित शिला पट्ट पर पूर्वाभिमुख विराज कर सिद्ध साक्षी में मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदा के दिन शाम के समय एक हजार राजाओं के साथ दिगम्बर मुद्रा धारण की। दीक्षा लेते ही पंचमुष्टी लौंच करने पर मनः पर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ। दो दिन का उपवास ले प्रभु ध्यान में तल्लीन हो आत्मदर्शन में निमग्न हो गये।

पारणा—

आत्मानन्द का स्वाद कौन बता सकता है ? स्वयं ही जाने जो पावे। प्रभु के निश्चल ध्यान में दो दिन पूर्ण हो गये। तीसरे दिन चर्या मार्ग से आहार को निकले। वन से धीरे-धीरे जीव रक्षण करते प्रभु ने शैलपुर में प्रवेश किया यहाँ का राजा पुष्यमित्र अपनी स्वर्णिम कान्ति से प्रतिभा बिखेरता द्वारप्रेक्षण को खड़ा था। प्रभु को देखते ही वह मारे हर्ष के गद्-गद् और रोमाञ्चित हो गया। सपत्नीक विनय, भक्ति और श्रद्धा से मुनिराज पुष्पदन्त जी का पड़गाहन कर, शुद्ध-निर्दोष उत्तम आहार दिया। नवधाभक्ति से दिये आहार दान के प्रभाव से उसके घर रत्न वृष्टि आदि पञ्चाश्चर्य हुए। तीर्थङ्कर को प्रथम पारणा देने वाला ३ भव से अधिक संसार में नहीं रहता। सातिशय पुण्यार्जन कर शीघ्र मुक्ति पाता है। यह है आहार दान की महिमा। इस प्रकार दाताओं को पुण्य प्राप्त कराते हुए वे मुनिराज अखण्ड मौन से कठोर आत्म साधना में संलग्न हुए।

छद्मस्थ काल—

तपाग्नि से परिशुद्ध आत्मा उत्तरोत्तर ज्ञान-घन स्वभाव को पा रहा था। सूर्य के ऊपर से बादलों के हटने पर जिस प्रकार उसकी किरणें प्रकाशित होती जाती हैं उसी भाँति कर्म-कल्मष के दूर होने से आत्म प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा था। चार वर्ष के अथक परिश्रम से प्रभु ने सघन, शक्तिशाली घातिया कर्मों को जर्जरित कर डाला।

केवलज्ञान कल्याणक—

परास्त शत्रु या तो आत्म-समर्पण कर देता है या भागकर छुप जाता है। भगवान के कर्म-शत्रु भी कांप रहे थे, क्या करें क्या नहीं। टिकने का कोई सहारा नहीं था। शुक्ल-ध्यान के तीर आर-पार हो रहे थे। अशक्त घातिया क्या करते, धराशायी हो गये। प्रभु दो दिन का उपवास धारण कर अपने दीक्षा वन—पुष्पक वन में अक्ष (बहेड़ा) वृक्ष के तले विराजे। अब क्या था, कार्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन मूला नक्षत्र में शाम के समय आकाश में चन्द्र मुस्कुराया इधर प्रभु को केवल-ज्ञान रूपी सूर्य प्राप्त हुआ। अनन्त चतुष्टय के धारी हो गये प्रभु।

इन्द्र आया। देव आये। देवियाँ आयीं। कुबेर ने कल्पनातीत समवशरण बनाया। तीन कटनियों से मण्डित वेदी के मध्य मणिमय सिंहासन रचा। उस पर चार अंगुल अधर विराजे प्रभु सर्वज्ञ होकर। १२ सभाओं से वेष्टित प्रभु अद्‌भुत शोभा धारण कर रहे थे। दिव्योपदेश प्रारम्भ हुआ। देश-देश में विहार किया। २२५ सुवर्ण कमलों पर चरणन्यास कर विहार करते हुए भगवान ने समस्त आर्य-खण्ड को धर्मामृत पिलाया। इस प्रकार २८ पूर्वाङ्ग ४ वर्ष कम १ लाख पूर्व तक प्रभु ने मोक्षमार्ग का उपदेश दिया। समस्त तत्वों का यथार्थ स्वरूप दर्शाया। अनादि कर्म बंध आत्मा को बन्धन मुक्त कर अनन्त काल तक सुखपूर्वक रहने की युक्ति सिखायी।

समवशरण वैभव —

इनके समवशरण में विदर्भ को आदि लेकर सप्तर्द्धि सम्पन्न ८८ गणधर थे। १५०० श्रुतकेवली, १ लाख ५५ हजार ५०० शिक्षक थे, ८ हजार ४ सौ अवधिज्ञानी, ७ हजार ५०० केवलज्ञानी, १३ हजार विक्रिया ऋद्धिधारी, ७ हजार ५०० मनःपर्ययज्ञानी, ६६०० वादि-मुनिराज मंगल स्वरूप उनकी सेवा में तत्पर थे। समस्त मुनिरत्नों की संख्या दो लाख थी। "घोषा" नाम की प्रमुख गणिनी आर्यिका को आदि ले तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएँ थीं। दो लाख श्रावक और पाँच लक्ष श्राविकाएँ सभा में विराजती थीं। असंख्य देव-देवियाँ और संख्यात संज्ञी तिर्यञ्च धर्म लाभ लेते थे। इनका यक्ष अजित और यक्षी महाकाली (भृकुटी) गंध कुटी में प्रभु के पार्श्व भाग में ही रहते थे।

प्रभु नियमित रूप से चारों संध्याओं में मेघवत् भव्य जीव रूपी शस्यों का अभिषिंचन करते हुए धर्माम्बु वर्षण करते थे।

योग निरोध---

आयु का १ मास शेष रहने पर आपने योग निरोध किया अर्थात् देशना बन्द की। निष्प्रयोजन कुछ भी कार्य नहीं होता। अत: समवशरण रचना भी समाप्त हो गयी। अविचल रूप से भगवान सम्मेदाचल के **सुप्रभास** शिखर पर योगासन से आ विराजे। आपके साथ १००० मुनिराज जो समान आयु के धारी थे योग लीन हो गये।

मुक्ति गमन---

वर्षाकाल। रिमझिम सुहावनी बौछार मयूरी और मयूरों का मोहक नृत्य। प्रकृति का सौन्दर्य उमड़ पड़ा मानों प्रभु के ध्यान की परीक्षा ही करना चाहता हो। उधर प्रभु संसार विमुख अन्तरङ्ग वासी, अपने में समाहित कर्मों की लड़ियों के काटने में संलग्न थे। भला, प्रलयकालीन झंझा भी सुमेरु को कंपा सकता है? नहीं। तड़-तड़ कर्म जंजीरें एक साथ टूट पड़ीं। परमाणु-परमाणु बिखर कर धूल में मिल गये। अता-पता भी नहीं रहा। भाद्रपद शुक्ला अष्टमी को प्रभात की सुहावनी बेली (पूर्वाह्न) में भगवान सिद्ध सिला पर जा विराजे। धर्म द्रव्य का आगे अस्तित्व न होने से वहीं रहना अनिवार्य है। पूर्ण शुद्ध परमात्म दशा प्रकट हो गई।

मोक्ष कल्याणक---

बुद्धिजीवी प्राणी सदा अपने स्वार्थ सिद्ध करने में तत्पर रहते हैं। देव-देवियाँ और देवेन्द्र-शचि क्यों चूकते स-समारम्भ-सम्मेदाचल पर आ समन्वित हुए। नाना प्रकार पूजा स्तवन कर श्री पुष्पदन्त स्वामी का गुणानुवाद किया। अग्निकुमार देवों ने मुकुटों से अद्भुत अग्नि द्वारा संस्कार क्रिया सम्पादन कर अपने स्वयं शीघ्र मोक्ष प्राप्ति की कामना की। नर-नारियों ने भी पुण्यवर्द्धक, पाप नाशक महा महोत्सव किया। दीप जलाये, लाडू चढ़ाये, गंध-पुष्पादि अर्पण किये। मूला नक्षत्र में प्रभु मुक्त हुए। सभी महामहिमा प्रकट कर अपने-अपने स्थान को चले गये।

योऽजायत क्षितिभृदत्र महाविपद्मः,
पश्चादभूद्दिवि चतुर्दश कल्पनाथः।
प्रान्ते बभूव भरते सुविधिर्नृपेन्द्रः,
तीर्थेश्वरः स नवमः कुरुताच्छ्रियं वः ॥६२॥

जो प्रथम भव में मध्यलोक में ही महापद्म राजा हुए। तप कर चौदहवें कल्प में श्रेष्ठ इन्द्र हुए, वहाँ से चय कर इसी भरत क्षेत्र में नौवें तीर्थङ्कर हुए वे पुष्पदन्त-सुविधिनाथ आप सबका रक्षण करें।

चिह्न 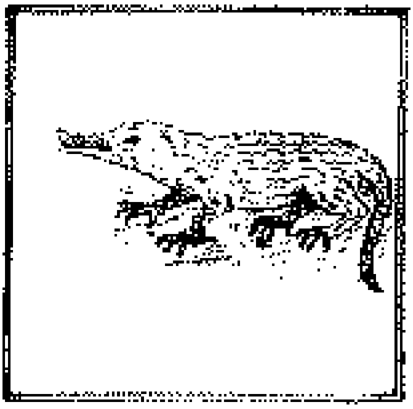 मगर

प्रश्नावली—

१. पुष्पदन्त भगवान का दूसरा नाम क्या है ?
२. इनकी पहिचान क्या है ? ये कौनसे नम्बर के भगवान हैं ?
३. इनका विवाह हुआ या नहीं ? राज्य कितने दिन किया ?
४. इनके माता-पिता और जन्म स्थान के नाम बताओ ?
५. इनके कितने और कौन-कौन से कल्याणक हुए ?
६. जन्म नक्षत्र और ज्ञान-कल्याणक की तिथि बताओ ?
७. किस दिन मोक्ष गये ? कहाँ से गये ?
८. सम्मेद शिखर कहाँ है ? आप गये या नहीं ?
९. इनके समवशरण में कितने मुनि और आर्यिकाएँ थीं ?

१०-१००८ श्री शीतलनाथ जी

पूर्व भव परिचय—

"राजन् वन की शोभा निराली ही हो गई है। बसन्त ऋतुराजा आपके सुख साम्राज्य से ईर्ष्या कर अपना सारा वैभव लेकर आ गया है। उद्यान में आम्र वृक्ष मंजरियों से लद गये हैं, काकलियों की मधुर कलरव ध्वनि गूंज रही है। भौंरों का संगीत कर्णों का आकृष्ट किये है। कुन्द पुष्पों से दिशाएँ धवलित हो गई हैं। मौल सिरि के सुगंधित पुष्प मधुपों से आवृत्त हैं। सरोवरों में कमल, पुण्डरीक एवं कुमुद विहंस रहे हैं उनकी पीली पराग (केशर) से जल पींजिरित (पीला) हो गया है। मन्द-सुगन्द पवन से झूमते हुए लता-गुल्म आपको बुला रहे हैं। उद्यान की प्रत्येक वस्तु आपकी प्रतीक्षा कर रही है।" इस प्रकार विनम्र निवेदन करते हुए वन पालक ने सुसीमा नगरी के अधिपति महाराज पद्मगुल्म के समक्ष कुछ मधुर-सुगंधित फल-पुष्प भेंट करते हुआ नमस्कार किया।

पुष्करार्द्ध के पूर्व मन्दराचल के पूर्व विदेह स्थित वत्स देश के गौरव स्वरूप सुसीमा नगरी का अधिपति साम, दाम, दण्ड और भेद नीति का ज्ञाता था। संधि; विग्रह आदि तत्वों का वेत्ता था स्वामी, मन्त्री, किला, खजाना, मित्र, देश और सेना इन सात शाखाओं से उसका राज्यरूपी वृक्ष बुद्धि रूपी जल से अभिसिंचित हो बढ़ रहा था-विस्तृत हो गया था। धर्म, अर्थ और काम रूप फलों से फलित था। शत्रुओं का नाम न था। भोगों में आकण्ठ मग्न राजा बसंत श्री को पाकर उन्मत्त सा हो गया। सपरिवार अर्थात् रानियों सहित एवं पुरजनों सहित वन विहार को चल पड़ा। वन महोत्सव में निमग्न राजा ने आते हुए काल को नहीं समझा किन्तु कुछ ही समयोपरान्त वह वन श्री विद्युत वत् विलीन हो गई। राजा विस्मित हो उसे खोजने लगा पर कहाँ पाता? हताश राजा विषयों से विरक्त हो गया। भोगों की असारता से उसका मन खिन्न हो गया। वह विचारने लगा, ओह! मैंने मेरी आयु का बहुभाग यूं ही विषयों में गमा दिया। मोह में पड़कर आत्मा को भूल ही गया। इन नश्वर विषयों में अंधा बना रहा। अब अन्तरंग ज्योति प्रकट हुयी है। मेरे हृदय की दिव्य ज्योति में अब मैं आत्मान्वेषण करूँगा। बस, बस अब यही करना है' शीघ्र राज्य जंजाल से छूट मुनि दीक्षा धारण कर निर्जन वन में आत्मानन्द का आस्वाद लूंगा"।

आत्मोन्मुख राजा उद्यान से राजप्रासाद में आये और अपने नन्दन नामके पुत्र को राज्यसिंहासनारूढ़ किया। समस्त वैभव का परित्याग कर आनन्द नामक आचार्य श्री के चरणाम्बुजों में जा मुनि दीक्षा धारण कर ली। समस्त अन्तरङ्ग-विषय-कषायों का परित्याग किया। आत्मशुद्धि करने लगे। शास्त्राध्ययन में मन लगाया। ग्यारह अंगों तक का अध्ययन किया। तत्त्व परिज्ञान कर सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन किया। तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध किया। अन्त में समाधि सिद्ध कर पन्द्रहवें आरण स्वर्ग में इन्द्र हुए। २२ सागर आयु, ३ हाथ का शरीर और शुक्ल लेश्या थी।

गर्भ कल्याणक—

भद्रपुर नगर के राजा दृढ़रथ की रानी सुनन्दा का आंगन दिव्य ज्योति से जग-मगा उठा। अनेकों बहुमूल्य रत्नों के ढेर लग गये। आज जैसे ओलों से भूमि शुभ्र हो जाती है और धड़-धड़ आवाज से आकाश

गूंज उठता है उसी प्रकार रत्नों की कान्ति से प्रांगण रंग-बिरंगा हो उठा। जय-जय ध्वनि से कर्ण कुहर तृप्त हो गये। दास-दासियों का कोलाहल मच गया। कोई उठावे, कोई दिखावे कोई रमावे यह अच्छा, यह सुन्दर आदि वार्तालापों से कोलाहल मच गया। इक्ष्वाकुवंश का यश मूर्तिमान हो आया क्या ? महाराज स्वरथ चकित नहीं थे। विवेक से स्थितप्रज्ञ रहे और उन रत्नों से राज्य को दरिद्र हीन बना लिया। छः माह की अवधि पूर्ण हुयी। महारानी सुनन्दा आनन्द की धाम थी। शील, संयम आदि गुणों की खान और अद्भुत शरीर शोभा से युक्त थीं।

चैत्र मास प्रारम्भ हुआ। वृक्ष लताओं ने पुरातन पत्तों को छोड़कर नयी कोपलों को धारण किया। चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन ही माता सुनन्दा ने भी पिछली रात्रि में १६ शुभ स्वप्नों के साथ पूर्वाषाढ नक्षत्र में गर्भाधान किया। स्वभाव से रज-रक्त रहित उदर होने पर भी रुचकगिरि के भवनों से आयी देवियों ने नाना प्रकार सुगंधित दिव्य-द्रव्यों से सुवासित कर दिया था। जड़ रूप पुण्य कर्म भी जीव के सान्नि-ध्य में आ, क्या क्या नहीं करता ? बहुत कुछ सुख सामग्री प्रदान करता है। प्रातः महारानी ने राजसभा में पतिदेव से स्वप्नों का फल ज्ञात करना चाहा। महाराजा ने "आरण स्वर्ग का इन्द्र गर्भ में अवतरित हुआ है जो तीर्थङ्कर बन मुक्ति प्राप्त करेगा।" कह कर अति हर्षित हुआ। नानाविध अनेकों देवियों से सेवित माता बिना किसी खेद के सुख सागर में निमग्न हो, समय यापन करने लगीं। देवेन्द्र ने सपरिवार गर्भ कल्याणक पूजा कर देवियों को सेवार्थ नियुक्त किया।

जन्म कल्याणक—

क्रमशः नव मास पूर्ण हुए। माघ कृष्णा द्वादशी का दिन आया, पूर्वाषाढा नक्षत्र था। आकाश जय-जय नाद से गूंज उठा। सागर के जल की भाँति इन्द्र सेना दल उमड़ पड़ा। ऐरावत हाथी आकाश में आ खड़ा हुआ। कारण अभी-अभी महादेवी सुनन्दा ने शिरीष कुसुम से भी अधिक कोमल, सर्वाङ्ग सुन्दर पुत्र रत्न को जन्म दिया। भद्रपुर आनन्दोत्सव से सज उठा। शचि द्वारा लाये बालक को हजार नेत्रों से देखकर भी अतृप्त इन्द्र मेरु शिखर पर आ पहुँचा। पाण्डुक शिला पर बने तीन सिंहासनों में से मध्यवाले सुदीर्घ सिंहासन पर पूर्वाभिमुख सद्योजात प्रभु बालक को विराजमान किया। १००८ कलशों से सानन्द

सभी इन्द्र इन्द्राणियाँ, देव देवियों ने महा मस्तकाभिषेक कर जन्मोत्सव मनाया। पुनः बालक को माता-पिता को देकर ताण्डव नृत्य प्रदर्शन कर इन्द्र राजा अपने परिवार को लेकर स्वर्ग लोक को चला गया। महाराजा सुदृढ ने भी विशेष रूप से दान, पूजादि कर पुत्र जन्मोत्सव मनाया।

कुमार काल—

इन्द्र ने जन्मोत्सव समय इनका **"शीतलनाथ"** नाम प्रथित कर **कल्प वृक्ष** का चिह्न निर्धारित किया। इनके देखने मात्र से लोगों का हृदय शीतल-शान्त हो जाता था। श्री पुष्पदन्त के मोक्ष जाने के बाद ९ करोड़ सागर वर्ष बीत जाने पर इनका जन्म हुआ। इनके जन्म लेने के पूर्व पल्य के चौथाई भाग तक धर्म का विच्छेद रहा। इनका पूर्ण आयु प्रमाण एक लाख पूर्व की थी। शरीर की ऊँचाई ९० धनुष थी। शरीर की कान्ति **सुवर्ण** समान थी। इनका कुमार काल ¼ पूर्व मात्र रहा। कुमार अवस्था में समस्त भोगोपभोग पदार्थों तथा मनोरंजन के साधन देवेन्द्र द्वारा समन्वित किये जाते थे।

राज्यकाल—

कुमार शीतल कौमार अवस्था पार कर यौवन की देहली पर आये। पिता ने सर्वगुण सम्पन्न और राज्य योग्य देखकर प्रथम अनेकों सुन्दर, शील गुण सम्पन्न कन्याओं के साथ उनका विवाह कर दिया। शीतलनाथ मनोरंजक अप्सराओं को भी तिरस्कृत करने वाली उन ललनाओं के साथ नाना प्रकार क्रीडाएँ करने लगे। पिता द्वारा प्रदत्त राज्य पाकर प्रभु ने प्रजा का पुत्र वत् पालन, और सम्यक् प्रकार वर्द्धन किया। गत्यादि शुभ नाम कर्म, सातावेदनीय उदय, ऊँचगोत्र, अपवर्त अकाम मरण रहित आयु, तीर्थङ्कर गोत्र कर्म ये सब कर्म मिलकर उत्कृष्ट भोगानुभव करते थे। उनका सुख उपमातीत था। राज्य भोगों में आधा पूर्व समय समाप्त हो गया।

वैराग्य—

शीत काल अपना वैभव बिखेरे था। रात्रि पाले से व्याप्त हो जाती। प्रातः तरु पत्तों पर ओस बिन्दु मोती से ढलकते नजर आते। सूर्योदय की लाली अभी छायी ही हुयी थी कि राजा शीतलनाथ वन

विहार को निकले। रवि रश्मियों से द्योतित ओस बिन्दुओं का सुन्दर वितान उनकी दृष्टि में आया और देखते ही देखते वह नष्ट हो गया। बस, बाह्य दृष्टि को अन्तर्क्षेत्र को निरीक्षण करने का अवसर मिला। अर्थात् इसी निमित्त से उन्हें वैराग्य हो गया।

वे विचारने लगे, प्रत्येक पदार्थ पर्याय अपेक्षा नाशवान है, क्षण-क्षण में बदलते हैं। आज मुझे दुःख, दुःखी और इनके निमित्त का सही परिज्ञान हुआ है। इस दुःख की जड़ मोह कर्म को अब शीघ्र ही उन्मूलित करूँगा। यह सोचना कि मैं सुखी हूँ, ये सब मेरे सुख हैं, पुण्य कर्म से आगे भी मिलेंगे, महा अज्ञान है-महा मोह है। कर्म पुण्य रूप हो या पाप रूप, दोनों ही आत्म स्वरूप के घातक हैं। यद्यपि पाप कर्म मेरा नष्ट सा हो चुका है अब इस पुण्य कर्म को भी भस्म करूँगा। सच्चा सुख उदासीनता में है, साम्यभाव से प्राप्त है। आत्म विकास का दृढ़ निश्चय करते ही उन्होंने अपने पुत्र को राज्यार्पण किया। उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर उनके वैराग्य भाव की पुष्टी कर प्रभूत पुण्यार्जन किया।

दीक्षा कल्याणक—

देवर्षियों के जाते ही इन्द्र महाराज शुक्रप्रभा नामकी पालकी ले आये। प्रथम प्रभु का अभिषेक कर अलंकृत किया, पूजा की और शिविकारूढ होने की प्रार्थना की। प्रभु भी शीघ्र सवार हुए। राजाओं के बाद देवगण पालकी ले सहेतुक वन में जा पहुँचे। माघ कृष्णा द्वादशी के दिन पूर्वाषाढ नक्षत्र में शाम के समय १००० राजाओं के साथ दिगम्बर दीक्षा स्वयं धारण की। दो दिन उपवास की प्रतीज्ञा की। अखण्ड मौन से ध्यान प्रारम्भ किया। देवेन्द्र दीक्षा कल्याण पूजा कर देव लोक गये।

पारणा—

दो दिन बेला के अनन्तर प्रभु आहार के लिए चर्या मार्ग से निकले। ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक उन ऋषिराज ने अरिष्ट नगर में प्रविष्ट किया। वहाँ के राजा पुनर्वसु ने बड़ी भक्ति से पडगाहन किया। बड़ी प्रसन्नता से नवधा भक्ति से क्षीरान्न का आहार दिया। निरंतराय आहार होने पर देवों द्वारा पंचाश्चर्य हुए। भगवान मुनिराज ने, विविध प्रकार भयंकर कठोर तप करते हुए आत्मान्वेषण किया।

छद्मस्थ काल—

घोरानुघोर तप करते हुए तीन वर्ष व्यतीत किये अर्थात् छद्मस्थ-काल व्यतीत किया।

केवलज्ञान कल्याणक—

पौष कृष्णा चतुर्दशी के दिन सायंकाल, पूर्वाषाढ नक्षत्र में बिल्व-वृक्ष के नीचे दो दिन का उपवास कर आ विराजे। पीताभा से चमत्कृत प्रभु उसी समय सकलज्ञान साम्राज्य के अधिपति हुए। अर्थात् पूर्णज्ञानी हुए इन्द्रादिक चतुर्णिकाय देव-देवियों ने आकर केवलज्ञान कल्याणक महोत्सव किया। नानाविध फल-पुष्पादि से अष्टविध पूजा की। महोत्सव कर स्वर्ग गये। नर-नारियों, राजा महाराजा, रानियों आदि ने भी अष्ट प्रकारी पूजा की।

समवशरण रचना—

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने ८ योजन ३२ कोस प्रमाण विस्तार वाला, गोलाकार अष्टभूमियों से वेष्टित, बारह सभाओं से मण्डित श्रेष्ठतम अनुपम समवशरण मंडप दिव्य शक्ति से बनाया। यह आकाश में भूमि से ५०० योजन ऊपर था, चारों ओर १-१ हाथ लम्बी-चौड़ी २०००० सीढ़ियाँ बनाता है। आबालवृद्ध सभी अन्तर्मुहूर्त में ऊपर जा बैठते हैं। केवलज्ञान प्राप्ति का बिल्व वृक्ष अशोक वृक्ष बनकर समवशरण की शोभा बढ़ाता है। ठीक मध्य भाग, तीन कटनियों के सुवर्ण सिंहासन पर भगवान अधर विराजे। शुद्ध ज्ञान की निर्मलता से शरीर भी परमौदारिक परिशुद्ध हो जाने से उनका चारों ओर मुख दिखलाई देने लगा। त्रिकाल दिव्यध्वनि द्वारा तत्त्वोपदेश, धर्मोपदेश होता। नर-देव और पशु-पक्षी भी यथायोग्य स्थान में बैठकर धर्म श्रवण कर योग्य व्रत-दीक्षा श्रावकादि के नियम धारण करते। इस प्रकार समस्त आर्यखण्ड को पावन चरण धूलि से पवित्र करते हुए सर्वत्र धर्मामृत वर्षण किया। इनके उभय पार्श्व में सतत सेवक भाव युत ब्रह्मेश्वर (ब्रह्म) यक्ष और मानवी (चामुंडे) यक्षी विद्यमान रहती थीं। मध्य में पद्मासन से भगवान विराजते थे।

इनके समवशरण में अनगार को प्रमुख कर ८१ गणधर थे। ये सप्तऋद्धि और मनः पर्यय ज्ञान सम्पन्न थे। समवशरण में ७०००

सामान्य केवली, १४०० पूर्वधारी, ४६२०० पाठक-उपाध्याय, ७५०० विपुलमति मनः पर्ययी, १२००० विक्रियार्द्धि धारी, ७२०० अवधिज्ञानी, ५७०० वादी थे, सब मिलकर १००००० मुनिराज तथा धारणा श्री को प्रधान कर ३८०००० आर्यिकाएँ, श्री मन्दर को प्रमुख कर २ लाख श्रावक और ४००००० श्राविकाएँ थीं। असंख्यात देव देवी और संख्यात तिर्यञ्च थे। दिव्य ध्वनि खिरने के समय सभी स्तब्ध शान्त भाव से धर्म श्रवण करते थे।

योग निरोध—

आयु के निषेकों को केवली भी स्थिर नहीं कर सकते। वे तो प्रति समय एक-एक कर जाते ही हैं—झड़ते ही हैं। अस्तु १ मास आयु शेष रहने पर भगवान ने धर्मोपदेश देना बन्द किया। वे शेष कर्मों की धार उड़ाने को तत्पर हुए। योग निरोध कर श्री सम्मेद गिरि के **विद्युत्प्रभ कूट** पर आ विराजे।

मोक्ष कल्याण—

१ माह का प्रतिमा योग पूर्ण हुआ। तृतीय शुक्ल ध्यान को प्रारम्भ शेष कर्मों के नाश करने को उद्यत हुए और अन्त में चतुर्थ व्युपरक्रिया-निवृत्ति शुक्ल ध्यान कुठार से शेष चारों अघातिया कर्मों को समूल दग्ध कर शिव रमणी भर्ता अर्थात् मुक्तिरमा के कंथ हो गये। अश्विन शुक्ला ८ मी को पूर्वाषाढा नक्षत्र में संध्या समय समस्त कर्म समूह को विध्वंश कर परम मोक्ष पद प्राप्त किया। अपनी शरीर कान्ति से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करते हुए इन्द्र देव, इन्द्राणियाँ, देवियाँ आकर मोक्ष कल्याणक महा पूजा महोत्सव करने लगे। आनन्द से उत्सव मनाकर अपने-अपने स्वर्ग धाम चले गये। जन्म ग्रहण समय में जिन्होंने तीनों लोक के प्राणियों को क्षण भर के लिए सुखी बना दिया उनके अलौकिक माहात्म्य का कौन कथन कर सकता है ? कोई नहीं।

विशेष आख्यान—

इनके काल में मलय देश का स्वामी राजा मेघरथ हुआ। इसका मंत्री सत्यकीर्ति था। यहाँ जिनभक्त और तत्त्व वेत्ता था। राजा को सतत चार प्रकार के उत्तम दानादि में प्रवृत्त करने की चेष्टा करता था।

किन्तु कपोत लेश्या के धारी राजा ने उसकी बात न मानकर मिथ्यात्वी भूतशर्मा ब्राह्मण के पुत्र मुण्डशालायन के कथन से १० प्रकार के मिथ्या-दान प्रचलित किए। १ कन्यादान, २ हाथी ३ सोना ४ घोड़ा ५ गाय ६ दासी ७ तिल ८ पृथ्वी ९ रथ और १० घर दान को उत्तम दान घोषित किया। मोह कर्म का ऐसा ही माहात्म्य है। उसके त्याग से ही शुद्ध हो सकता है। अतः मिथ्याबुद्धि त्याग सम्यक्त्व ग्रहण करना चाहिए।

चिह्न कल्प वृक्ष

प्रश्नावली—

१. दसवें तीर्थङ्कर का नाम, चिह्न और जन्म स्थान बताओ ?

२. शीतलनाथ का मोक्ष स्थान और तिथि बताओ ?

३. इनके माता पिता का क्या नाम है ?

४. राज्य काल कितना है ?

५. इनकी धर्म सभा का नाम क्या है। उसका वर्णन करो ?

६. भगवान किसे कहते हैं ?

७. भगवान के गर्भ कल्याणक का वर्णन करो ?

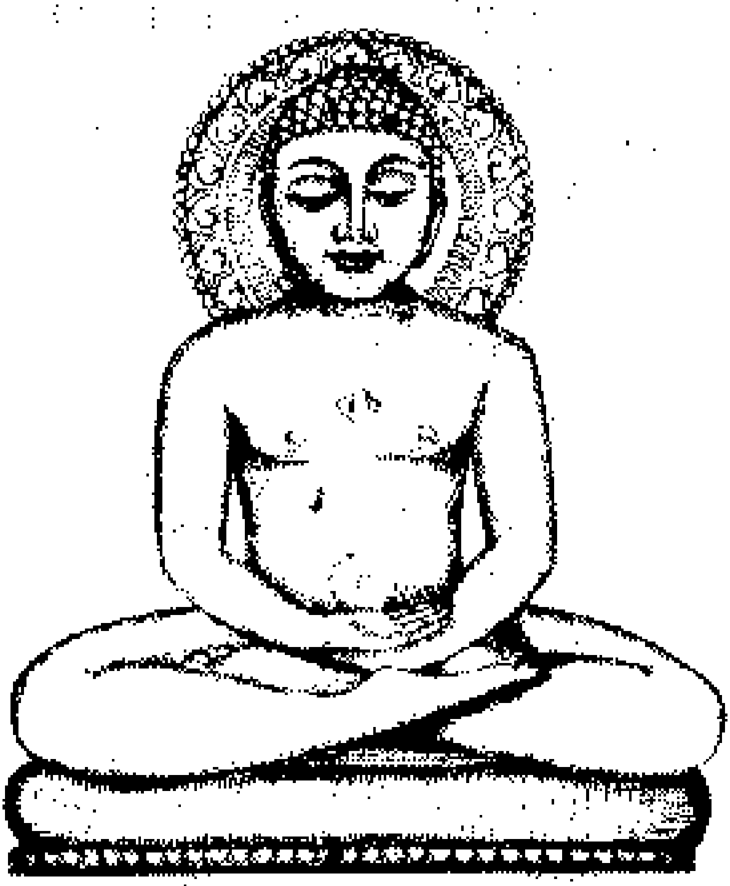

११-१००८ श्री श्रेयांसनाथ जी

पूर्वभव वृत्तान्त—

चारों ओर राजा नलिनप्रभ के प्रशंसा गीत सुनाई पड़ते थे। वह उत्साह, मंत्र और प्रभाव तीनों शक्तियों से युक्त था। उसकी राजधानी में निरन्तर मंगल-क्षेम कुशल था इसीलिए "क्षेमपुर" सार्थक नाम था। उसकी बुद्धि का ठिकाना नहीं था। कठिन से कठिन समस्याओं को क्षणमात्र में हल कर लेता था। उसका अन्त:पुर सुशील व सुन्दर स्त्रियों से भरा था, आज्ञाकारी पुत्र थे, निष्कण्टक राज्य था, अटूट सम्पत्ति थी, स्वयं स्वस्थ था, निरोग था। संक्षेप में सर्वसुख सम्पन्न था। यह क्षेमपुर पुष्करार्द्ध द्वीप में पूर्व विदेह के सुकच्छ देश में स्थित है। सीता नदी के तट पर रहने से धन-धान्य से परिपूर्ण था।

"महाराजेश्वर! आपके पुण्य से 'सहस्राम' वन में अनन्त नाम के जिनेन्द्र पधारे हैं। उनके प्रताप से छहों ऋतुओं के फल फलित हो गये

है, सर्प-नकुल, चूहा-बिल्ली आदि जाति विरोधी जीव भी परस्पर परम प्रीति से क्रीड़ा कर रहे हैं।" इस प्रकार विज्ञप्ति कर वन पालक ने सब ऋतुओं के फल-फूल भेंट कर निवेदन किया। प्रसन्न चित्त राजा ने सर्व वस्त्रालंकार वनमाली को देकर स्वयं प्रजा एवं परिजनों के साथ, शुद्ध अष्ट द्रव्यादि ले जिन वन्दन को आये। भक्ति और श्रद्धा से पूजा की। यथा स्थान बैठकर धर्मोपदेश श्रवण किया। भेद-विज्ञान जाग्रत हुआ। संसार से विरक्ति हो गई। स्तुति कर, दीक्षा की याचना की। अपने सुपुत्र पुत्र को राज्यभार अर्पण किया और स्वयं बाह्याभ्यन्तर सर्व परिग्रह का त्याग किया। ग्यारह अङ्गों का अध्ययन किया। सोलह कारण भावनाओं का चिन्तन किया और तीर्थङ्कर गोत्र बन्ध किया। सम्यक् समाधि-मरण कर अच्युत स्वर्ग में इन्द्र हुआ। २२ सागर आयु, तीन हाथ का शरीर, शुक्ल लेश्या, अवधिज्ञान (भवावधि) से युक्त था।

गर्भ-कल्याणक—

उषा विहंसने लगी। प्राची ने लाल चादर ओढ़ली। पक्षी गण कलरव करने लगे। प्रकृति उल्लास में झूम रही थी। इधर महारानी सुनन्दा देवी ने निद्रा का परित्याग किया। महाराजा विष्णु भी आज विशेष प्रसन्नचित्त थे। यही नहीं सिंहपुर नगर ही मानों विशेष उल्लास में डूबा था। जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र का मानों मुकुट ही हो। इक्ष्वाकु-वंश का यश ही मानों चारों ओर बिखर गया हो। राजप्रासाद में दास दासियाँ हर्षोत्फुल्ल हो गयीं। ठीक ही है। स्वामी के सुख-दुःख में सुख-दुःख मानना श्रेष्ठ सेवकों का कर्त्तव्य ही है।

"अरी, क्या कर रही हो? शीघ्र मेरे स्नान की व्यवस्था करो? वस्त्रालंकार लाओ" सुनते ही दासियाँ दौड़ पड़ी। कुछ ही क्षणों में महादेवी सुनन्दा सोलह शृंगार से विभूषित हो गईं। सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान करते हुए रात्रि के पिछले प्रहर में देखे १६ स्वप्नों का रहस्य जानने की इच्छा से व्यग्र थी। शीघ्र तैयार हो राजसभा में पधारीं। महाराज से अपने १६ स्वप्न कहे। "हे नाथ, आज जेष्ठ कृष्णा षष्ठी-छठ के दिन अन्तिम प्रहर रात्रि में मैंने विस्मयकारी अनुपम स्वप्नों के बाद अपने मुख में प्रविष्ट होते वृषभ को देखा है। इसका फल जानने की इच्छा रखती हूँ।" राजा ने भी आन्तरिक आनन्द की वृद्धि करने वाला "आपके तीन लोकाधिपति होने वाला पुत्र गर्भ में आया है" यह फल

बतलाया। यह चर्चा पूरी भी नहीं हुयी थी कि आकाश में देवेन्द्र सपरिवार आ गये। गर्भ कल्याणक महोत्सव मनाया। ६ माह से त्रिकाल रत्नों की वर्षा हो रही थी उसका रहस्य आज सब की समझ में आया। इन ६ महीनों में राजकोष ही नहीं अपितु सम्पूर्ण राज्य की प्रजा का खजाना भर गया था, रत्न राशियों के ढेर लग गये। इन्द्र ने रुचकगिरी निवासियों को प्रथम ही गर्भ शोधना की आज्ञा दी थी। अतः गर्भस्थ भगवान बालक आनन्द से आ विराजे थे। सब अति उत्साह से माता-पिता (राजा-रानी) की पूजा कर, नाना प्रकार यशोगान कर देवेन्द्र सपरिवार अपने स्थान को प्रस्थान कर गये। राजा-प्रजा भी सुख सागर में निमग्न हुए।

जन्मोत्सव—

दिन चले जा रहे थे। काल का काम ही है। एक के बाद एक मास पूरे हुए। माँ को न प्रमाद था न कोई बाधा। अपितु उनकी शरीर कान्ति और मनोबल बढ़ता जा रहा था। निर्मल ज्ञान प्रकाशित हो रहा था। शुद्ध सम्यक्त्व की ज्योति साम्यभाव के साथ प्रस्फुटित हो रही थी। आमोद-प्रमोद से नवमास पूर्ण हुए। वह घड़ी आई जिसके लिए आबाल वृद्ध पलक पाँवड़े बिछाये प्रतीक्षा कर रहे थे। फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में महादेवी सुनन्दा को तीर्थङ्कर की माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस बालक का जन्मोत्सव मनाने इन्द्र भी अपने भोगों को छोड़ कर दौड़ पड़ा उसके प्रताप और यश का क्या कहना ? उस उत्सव का महत्त्व भी अवर्णनीय है। इन्द्र ही जाने उसने क्या-क्या किया।

जन्माभिषेक......

माँ सुख निद्रा में निमग्न है और बालक शचि द्वारा ऐरावत हाथी पर आसीन। इन्द्र ले गया पाण्डुक शिला पर। देवगण भर लाए क्षीर-सागर से जल। मध्यपीठ पर पूर्वमुख विराजे बालक, होने लगा अभिषेक। बह चला जल, प्रवाह हो जैसे नदी का। पवित्र गंधोदक धारा में डूब गये देव-देवियाँ, इन्द्र शची। सभी ने तो अभिषेक किया। पुण्य का संचय किया। पापों का संक्षय किया। जन्म को सफल किया। इन्द्राणी ने प्रभु का शृंगार किया। देवियों के साथ निरांजना उतारी। उमंग

भरे आये सिंहपुरी । माता-पिता को बालक देकर आनन्द नाटक किया इन्द्र ने । नाकपति के स्वर्ग लौट आने पर राज प्रासाद में जन्मोत्सव मनाया । इन्द्र द्वारा घोषित **श्रेयांसनाथ** नाम का सबों ने समर्थन किया । आपका चिह्न **'गेंडा'** प्रख्यात हुआ ।

बाल लीला—

प्रभु बालक बढ़ने लगे बाल चन्द्रवत् । इन्द्र द्वारा नियुक्त देव-देवियाँ बाल रूप धारण कर इनके साथ क्रीड़ा, मनोविनोद, हास-विलास, खेल-कूद करते थे । इनका भोजन, वस्त्रालंकार भी यथा समय इन्द्र ही उपस्थित करता था । दिन चले जा रहे थे अपने स्वभाव से ।

कुमार काल और राज्य भोग...

शीतलनाथ भगवान के जन्म के बाद १ करोड़ सागर और १ लाख पूर्व में से १०० सागर और १५०२६००० वर्ष कम करने पर जितना काल रहा उतने बाद श्रेयांसनाथ का जन्म हुआ । इनके जन्म के पूर्व आधे पल्य तक धर्म का विच्छेद रहा । इनके जन्म लेते ही पुनः धर्मोद्योत हो गया । इनकी आयु ८४ लाख वर्ष की थी । शरीर की कान्ति **सुवर्ण** के समान थी । शरीर की ऊँचाई ८० धनुष थी । वे बल, पराक्रम तथा तेज के भण्डार थे । कुमार अवस्था में २१ लाख वर्ष सुख-सागर में व्यतीत हुए ।

कुमार वय को पार कर यौवन में प्रवेश हुए । पिता ने अनेकों कला गुण विज्ञान विभूषित नव यौवना सुन्दरियों के साथ विवाह कर दिया । राज्य संचालन में योग्य देखकर अपना राज्य समर्पण किया । इन्द्र ने राज्याभिषेक किया । सब राजा उन्हें भक्ति से नमस्कार करते थे । वे चन्द्रमा के समान सबको प्रसन्न करते थे । उनके राज्य में प्रजा भरपूर सुखोपभोग करती थी । परन्तु अभिमानी दुर्जनों को वे सूर्यवत् संतप्त कारक थे । वे महामणि के समान परम् तेजस्वी, समुद्रवत् गंभीर, मलयाचल की पवन समान शीतल थे । धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थ उनके पूर्वोपार्जित पुण्य से पराकाष्ठा पर पहुँच चुके थे । नाना विनोदों में उनका समय व्यतीत होता था । इस प्रकार ४२ लाख वर्ष राज्य किया ।

मानव तर्कणाशील है । किसी एक दिन बसन्त परिवर्तन देख इन्हें वैराग्य हो गया ।

निष्क्रमण कल्याणक—

वे विचारने लगे "यह संसार असार है जीवन व्यय होने वाला है। यौवन ढलती छाया है। एक मात्र धर्म ही नित्य है। वह धर्म आत्म-स्वभाव रूप है। अब मुझे उसे ही प्राप्त करना चाहिए। उसकी प्राप्ति तप से ही हो सकती है। अवश्यमेव तप कर संसार के कारणभूत कर्म जाल को सर्वथा भस्म करूँगा।" इस प्रकार दृढ़ निश्चय कर उन्होंने अपने श्रेयस्कर पुत्र को राज्यभार प्रदान किया। लौकान्तिक देवों ने आकर उनके वैराग्य का समर्थन किया और अपने ब्रह्मलोक चले गये। सौधर्मेन्द्र अवधि से प्रभु को विरक्त जानकर "विमलप्रभा" नाम की पालकी लेकर आया। प्रभु का निष्क्रमण कल्याणक अभिषेक किया। अलंकृत कर उनके अभिप्रायानुसार मनोहर नाम के उद्यान में आकाश मार्ग से ले गये। वहाँ शुद्ध, निर्मल शिलापट्ट पर रत्नचूर्ण से पूरित स्वास्तिक पर वे विराजे। दो दिन का उपवास धारण कर पूर्वाभिमुख विराज कर फाल्गुण कृष्णा एकादशी के दिन श्रवण नक्षत्र में सवेरे के समय १ हजार राजाओं के साथ दीक्षा धारण की। उसी दिन उन्हें मन: पर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ। अखण्ड मौन से भगवान मुनिराज ध्यानारूढ हो गये।

पारणा और छद्मस्थ काल—

दो दिन के बाद वे धीर-वीर, परम वीतरागी मुनीन्द्र आहार के निमित्त चर्या मार्ग से निकले। क्रमश: सिद्धार्थ नगर में गये। वहाँ का राजा नन्द था। उसकी कान्ति सुवर्ण सदृश थी। भगवान मुनिराज को आते देख उसने अत्यन्त विनम्र भाव से, नवधाभक्ति पूर्वक पडगाहन कर निरंतराय क्षीरान्न से पारणा करा नव पुण्य बंध किया। पंचाश्चर्य प्राप्त किये। देवों से प्रशंसनीय हुआ। अनन्त कर्मों की निर्जरा की। मुनिराज भी निर्दोष आहार ले तपोलीन हो गये। निरन्तर ज्ञान ध्यान और मन: शुद्धि को वृद्धिगत करते हुए दो वर्ष का छद्मस्थ काल व्यतीत किया।

केवलज्ञान कल्याणक—

दो वर्ष पूर्ण होने पर वे दो दिन का उपवास धारण कर मनोहर उद्यान में तुंबुर (पलास) नामक वृक्ष के नीचे निर्विकल्प ध्यानारूढ हो

गये। वर्षा हर समय लाभ दायक है। निदाघ काल में वर्षा तो प्राणियों को विशेष सुखद होती है। इसी प्रकार धर्म विस्मृत युग में भगवान को माघ कृष्णा अमावस्या के दिन श्रवण नक्षत्र में शाम के समय केवलज्ञान भास्कर उदित हुआ। लोकालोकावभासी पूर्ण ज्ञान को पाकर भगवान अनन्त चतुष्टय रूप अन्तरङ्ग और समवशरणादि बाह्य लक्ष्मी के नायक हो गये।

समवशरण—

कुबेर ने इन्द्र की आज्ञानुसार ७ योजन अर्थात् २८ कोस प्रमाण विस्तार वाला अति रमणीय, निरुपम सभा मण्डप रचा। द्वादश सभाओं-गणों से परिवेष्टित गंधकुटी में श्री प्रभु शोभित हुए। उभय धर्म का दिव्य उपदेश हुआ। नाना देशों में विहार किया। उनके समवशरण में कुन्थु आदि ७७ गणधर थे, १३११ चौदह पूर्वी, ४८२०० पाठक, ६००० अवधि ज्ञानी, ६५०० केवली, ११००० विक्रियर्द्धि के धारी, ६००० मनः पर्यय ज्ञानी, ५००० मुख्य वादी थे। इस प्रकार सब ८४००० मुनिराज उनकी सेवा करते थे। 'धारणा' प्रमुख गणिनी को आदि लेकर १ लाख बीस हजार आर्यिकाएँ थीं। दो लाख श्रावक और ४ लाख श्राविकाएँ उनकी पूजा करती थीं। असंख्य देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यञ्च ने धर्मोपदेश श्रवण कर यथा योग्य व्रतादि धारण किये थे। भगवान ने अपनी दिव्य वाणी से समस्त आर्य खण्ड को अभिसिंचित किया।

योग निरोध—

आयु का १ मास शेष रहने पर देशना बन्द हो गयी। समवशरण विघटित हो गया। प्रभु श्री सम्मेद गिरी की **संकुट (संबल) कूट** पर आ विराजे। इनके जिन शासन प्रवर्द्धक यक्ष कुमार (ईश्वर) और यक्षी गौरी (गोमधकी) थी। ये भी अपने-अपने स्थान पर चले गये। निरन्तर देव विद्याधरादि इनकी पूजा करते रहे। १ हजार राजाओं के साथ प्रतिमा योग धारण कर खड़े हो गये। शुक्ल ध्यान के प्रबल प्रभाव से उन्होंने शेष अघातिया कर्मों को अशेष किया और श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन ८५ कर्म प्रकृतियों से रहित शुद्ध परमात्म दशा प्राप्त की—मुक्त हुए।

मोक्ष कल्याणक—

श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन धनिष्ठा नक्षत्र में संध्या समय चतुर्णिकाय देवेन्द्र, देव-देवियाँ आदि संबल कूट पर आये। अग्नि कुमार देवों ने औपचारिक अग्नि संस्कार किया। सबों ने मोक्ष कल्याणक वृहद् पूजा, स्तुति कर महोत्सव मनाया। रत्न-दीपमालिका जलायी, नृत्य-संगीतादि किये और "हमें भी यही दशा प्राप्त हो" इस भावना के साथ अपने-अपने स्थान पर चले गये। पुनः मनुज-विद्याधर, श्रावक-श्राविकाओं ने नाना मनोहर स्तोत्रों से स्तुति कर अर्चना की, मोदक चढ़ाया। अष्ट-द्रव्यों से पूजा कर पुण्यार्जन किया।

विशेष—

इनके समय में प्रथम अर्द्धचक्री—नारायण हुआ यह प्रथम भव में विश्वनन्दी था, वहाँ मुनि हो निदान बंध कर महाशुक्र विमान में १६ सागर आयु लेकर देव हुआ। पुनः जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के सुरम्यदेश की पोदनपुर नगरी में महाराज प्रजापति की प्रिया मृगावती से त्रिपृष्ट नाम का पुत्र हुआ अपने बल पराक्रम से तीन खण्डों को विजय कर यह प्रथम नारायण प्रसिद्ध हुआ। इनका बड़ा भाई विजय बलभद्र था। इनका ८० धनुष ऊँचा शरीर और ८४ लाख वर्ष की आयु थी। अश्व-ग्रीव को मारकर त्रिखण्डाधिपति बना। त्रिपृष्ठ के धनुष, शङ्ख, चक्र दंड, तलवार, शक्ति और गदा ये ७ रत्न थे। विजय बलभद्र के गदा, रत्नमाला, हल और मूसल ये चार रत्न थे। त्रिपृष्ठ गृहवास में रौद्र-ध्यान से मरण कर ७वें नरक गया और बलभद्र समस्त आरम्भ-परिग्रह त्याग मुनि हो मोक्ष पधारे। एक साथ राज्यादि कर अन्त में दोनों ही विपरीत दशा को प्राप्त हुए। हे भव्यों! मोह को धिक्कार है। अपने जीवन को त्यागमय बनाओ। बिना सम्यक् तप किये सच्चा सुख नहीं मिल सकता। अतः यथाशक्ति तप करना चाहिए।

चिह्न 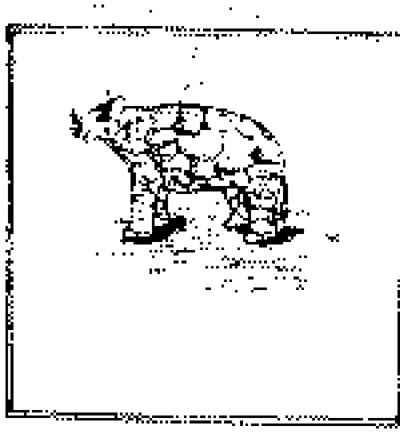 गैंडा

प्रश्नावली—

१. इस उपाख्यान में क्या विशेषता है? उससे क्या शिक्षा मिली?

२. श्रेयांसनाथ भगवान का चिह्न, जन्म स्थान, तपोवन कौन है?

३. इनका संक्षिप्त जीवन परिचय बताओ?

४. इन्होंने राज्यशासन और विवाह किया था नहीं?

५. इनके संतान थी या नहीं?

६. दीक्षा कब, कहाँ और किस प्रकार ली?

७. आपको भोग अच्छा लगता है या त्याग?

८. भोगों से क्या हानियाँ हैं?

९. त्याग का माहात्म्य क्या है?

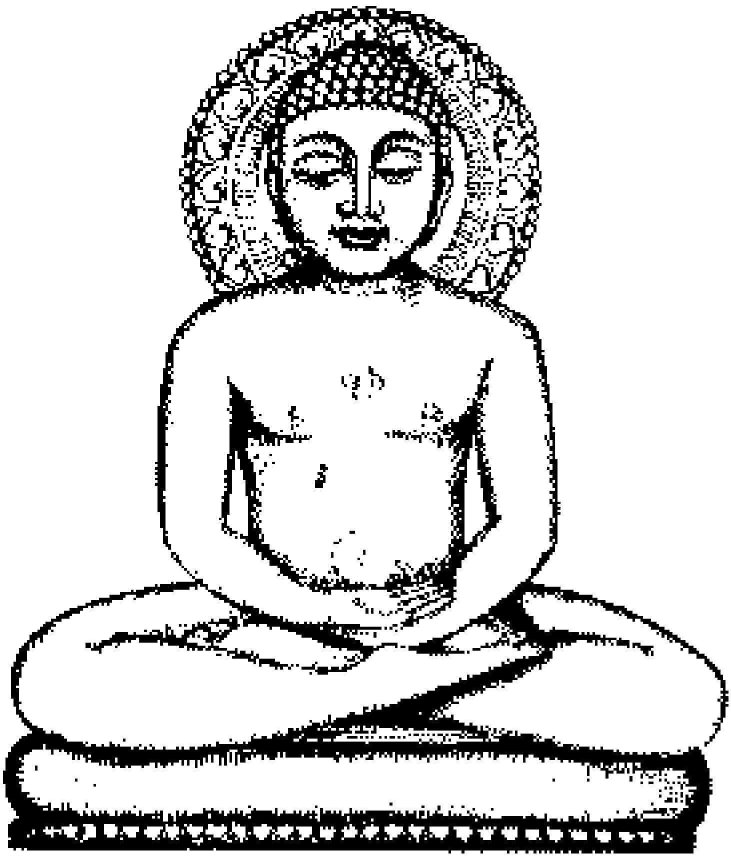

१२–१००८ श्री वासुपूज्य जी

पूर्व भव परिचय......

तृतीय द्वीप है पुष्करार्द्ध। पूर्व मेरु की ओर बहती है सीता नदी। इसके पश्चिम किनारे पर बसा है 'वत्सकावती' देश। इसमें है रत्नपुर नगर। वहाँ का राजा था पद्मोत्तर। उसके कीर्ति गुणों में सबके वचन प्रवर्तते थे। वह पुण्यरूप था, सब की आँखों का तारा, धर्मरूप आजिविका का धारक, मेल मिलाप की वाणी से संयुक्त, तेज रूप शरीर से मण्डित बुद्धि का भंडार था। धन दान में व्यय करता था। भक्ति जिन देव में ही थी। इसी प्रकार के गुणों से मण्डित शील शिरोमणि उसकी महादेवी लक्ष्मी थी। प्रजा सुखी थी।

एक समय मनोहर पर्वत पर युगमंधर नामक जिनराज पधारे। पद्मोत्तर राजा पुरजन, परिजन सहित वन्दनार्थ गया। महा विभूति से अष्ट प्रकारी पूजा की। धर्मोपदेश सुना अपने पुत्र धनमित्र को राज्य

और अधोलोक में भी एक क्षण को शान्ति व्याप्त हो गई। दिशाएं और आकाश भी निर्मल हो गये। माता-पिता "क्या करें" यह सोच भी नहीं पाये कि इन्द्र राज स्वर्ग लोक का वैभव लुटाता, गाता, बजाता, नाचता आ धमका। शचि देवी ने माया प्रसार कर माँ को सुख निद्रा में सुला दिया। बालक प्रभु को उठा लायी। कितना सुख उस सद्योजात बच्चे के स्पर्श का हुआ वह स्वयं इन्द्राणी ही अनुभव कर रही थी। इन्द्र ने अतृप्त हो १ हजार नेत्र बनाये। सुमेरु पर्वत पर ले गया। और सागर से विशाल घड़े भर-भर कर इन्द्र, देव, शचि, देवियों ने क्रमशः १००८ कलशों से महाभिषेक किया। सर्वाङ्ग में गंधोदक लगाया। शचि ने कोमल वस्त्र से पोंछ कर सुखद, योग्य, अनुपम आभूषण, वस्त्र पहनाये। काजल लगाया, आरती उतारी, नृत्य किया। पुनः लौटकर चम्पानगरी में आये। धूम-धाम से बालक को माँ की गोद में विराजमान किया नाम वासुपूज्य और लाञ्छण भैंसा घोषित किया। आनन्द से ताण्डव नृत्य किया और सपरिवार अपने नाक लोक को चला गया।

श्रेयांसनाथ के ५४ सागर बीतने पर और अन्त में तीन पल्य तक धर्म का विच्छेद होने के बाद इनका जन्म हुआ। इनकी आयु ७२ लाख वर्ष की थी। शरीर ऊँचाई ७० धनुष और वर्ण कुंकुम समान लाल था। उर्वरा भूमि में जिस प्रकार अनेक गुणी बीज की वृद्धि होती है उसी प्रकार इनका आश्रय पाकर गुण समूह निरंतर वृद्धि को प्राप्त होने लगे। वे इनके आश्रय से श्रेष्ठतम हो गये थे। देव गण समवयस्क बालक रुप धारण कर इनके साथ खेलते थे। वस्त्रालंकार, भोजन की व्यवस्था स्वयं इन्द्र के हाथ में थी। भला क्या सीमा है इन भोज्य पदार्थों की ? स्वर्ग ही धरा पर उतर आया। इस प्रकार उनके १८ लाख वर्ष कुमार काल के व्यतीत हो गये।

माता-पिता की स्वभाविक इच्छा पुत्र के विवाह की होती है। वे अपने कुल वृद्धि का स्वप्न विवाह काल के बाद से ही देखने लगते हैं। महाराजा वासुपूज्य और जयावती भी इसके अपवाद न थे। परन्तु भावी बलवान होती है। वासुपूज्य कुमार को विवाह का प्रस्ताव मान्य नहीं हुआ। उनकी दृष्टि में बन्धु-बन्धन, शरीर-कारागार, नारी-नागिन, भोग-भुजंग और संसार-असार था। फिर भला कैसे रमते ?

निष्क्रमण कल्याणक—

यौवन पूर्ण शक्ति और प्रभाव के साथ आया, परन्तु वासुपूज्य कुमार को तनिक भी प्रभावित नहीं किया। उन्होंने अनादि काल से चले आये जन्म मरण के फेर को जड़ से उखाड़ फेंकने का निश्चय किया। द्वादशानुप्रेक्षाओं का चिन्तन किया। इसी समय लौकान्तिक देवर्षियों ने आकर उनके वैराग्य की पुष्टी की। अनुमोदना कर अपने ब्रह्मलोक में चले गये। काल लब्धि पाकर वे कर्म शत्रुओं का उन्मूलन करने को कटिबद्ध हो गये। चतुर्णिकाय देव दिव्य विमान-पालकी लेकर आये। प्रथम उनका अभिषेक किया वस्त्रालंकार से विभूषित किया और पुन: शिविका में आरूढ़ कर मनोहर नाम के वन में ले गये। आत्मीय-जनों को आश्वासन दे स्वयं बुद्ध कुमार ने "नम: सिद्धेभ्य:" उच्चारण कर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली, पञ्चमुष्ठी लौंच कर दिगम्बर हो गये। फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी के दिन विशाखा नक्षत्र में संध्या के समय दो दिन के उपवास की प्रतीज्ञा लेकर मौन से ध्यानारूढ़ हो गये।

पारणा—

दो दिन का योग पूर्ण हुआ। मुनिश्वर आहार की इच्छा से पारणा के लिए चर्या पथ से वन के बाहर आये। महानगर का राजा सुन्दर (सुरेन्द्रनाथ) आज विशेष भक्ति से द्वारापेक्षण को सपत्नीक द्वार पर खड़ा था। प्रात: से उसकी दायीं आँख और भुजा फड़क रही थी, मन उल्लास से भरा था। रानी भी प्रसन्न चित्त उत्तम पात्र के पधारने की आशा में हर्षित थी। "यादृशी भावना यस्य फलं भवति तादृशं" के अनुसार प्रभु वासुपूज्य मुनिराज ईर्या पथ शुद्धि पूर्वक शनै: शनै: उसके द्वार पर आ खड़े हुए। हे स्वामिन्! अत्र-अत्र, तिष्ठ-तिष्ठ, नमोऽस्तु नमोऽस्तु बोलकर सम्यक् विधिवत् आहार को आह्वान किया। नवधा भक्ति से, उत्तम, प्रासुक, शुद्ध क्षीरान्न से त्रिकरण शुद्धि पूर्वक पारणा कराया। दाता, पात्र, विधि की विशेषता से उसके आँगन में आश्चर्यकारी, सर्वोत्तम रत्नों की वर्षा प्रारम्भ हुयी तथा अन्य भी पञ्चाश्चर्य हुए। प्रभु, पुन: वन में लौट गये। कठिनतम तप तपने लगे। नानाविध नियम, व्रत, उपवासों द्वारा कर्मों को चूर-चूर करने लगे। कर्म भी बिचारे जान लेकर भाग खड़े हुए।

छद्मस्थ काल और केवलोत्पत्ति (केवल ज्ञान कल्याणक)—

आपका छद्मस्थ काल १ वर्ष रहा। इस वर्ष में समस्त अन्य विकल्पों का त्याग कर प्रभु योगारूढ़ रहे। घन घोर तप और अखण्ड मौन के द्वारा दीक्षा वन में जाकर छद्मस्थ काल बिताया। पुन: उसी वन में उपवास धारण कर कदम्ब वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ-आत्म लीन साधु श्रेष्ठ ने माघ शुक्ला द्वितीया के दिन विशाखा नक्षत्र में संध्या समय में उन्हें जगद्योतक "केवलज्ञान" हो गया। चतुर्णिकाय देवों ने सपरिवार उपस्थित होकर प्रभु की अभ्यर्थना की। आत्म प्रकाश आदि अनेकों कार्य सम्पन्न किये। केवलज्ञान पूजा कर देव देवियाँ परम हर्ष को प्राप्त हुए। इन्द्र के आदेशानुसार कुबेर ने भगवान के दिव्योपदेश की व्यवस्था की। ६।। योजन के विस्तार में अर्थात् २६ कोस का व्यास वाला गोलाकार समवशरण मण्डप तैयार किया। इसमें खाई, कोट, वापिका, ध्वजा, चैत्य आदि आठ भूमियाँ तैयार कर मध्य में तीन कटनी युक्त १२ सभाओं से परिवेष्टित गंध कुटी तैयार की। गंध कुटी के मध्य रत्न जटित सुवर्ण सिंहासन पर अन्तरीक्ष भगवान विराजे। देव, विद्याधर, नर नारियाँ, संख्यात तिर्यञ्च भव्य प्राणियों से खचित सभा मण्डप में भगवान ने सप्त, तत्व, नव पदार्थ, छद्रव्य, पञ्चास्तिकाय आदि तत्वों का उपदेश दिया। समस्त तत्व उत्पाद, व्यय ध्रौव्यात्मक हैं। अनेकान्त सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

आपके समवशरण में ६००० सामान्य केवली, १२०० पूर्वधारी, ३९२०० पाठक, ६००० विपुलमती ज्ञानी, १०००० विक्रियाद्धिधारी, ५४०० अवधि ज्ञानी, ४२०० वादी, ७२००० कुल साधुगण उनकी भक्ति में तत्पर थे। सधर्म आदि ६६ गणधर थे। वरसेना आदि १०६००० आर्यिकाएँ, द्विपृष्ठ को आदि ले २ लाख श्रावक, ४ लाख श्राविकाएँ थीं। इनका शासन यक्ष षण्मुख (कुमार) और गांधारी (विद्युत्माली) यक्षी थी। भव्य जीवों के प्रार्थना करने पर उन्होंने सम्पूर्ण आर्य खण्ड में विहार कर धर्मोपदेश दिया। अनेकों भव्यात्माओं ने व्रत नियम धारण किये। सर्वत्र सदाचार और शिष्टाचार का साम्राज्य छा गया तब भगवान चम्पापुरी में पधारे। १ हजार वर्ष पर्यन्त यहीं धर्माम्बु वर्षण कर भव्य रूपी शस्यों को फलित किया।

योग निरोध—

आयुष्य का एक मास शेष रहने पर प्रभु ने देशना देना बन्द कर

दिया। योग निरोध कर श्री मन्दारगिरि पर मनोहर वन में पर्यंकासन से आ विराजे। अन्तिम शुक्ल ध्यान के प्रभाव से शेष कर्मों का नाश करना प्रारम्भ किया। आपके साथ ही ६४ मुनिराज भी एकाग्रध्यान चिन्तन में लीन हुए।

मोक्ष कल्याणक—

ध्यानानल प्रज्वलित हो रहा था। कर्म कालिमा भस्म होने लगी। आत्म कंचन अपने शुद्ध स्वभाव में आने लगा। क्या देर लगी ? कुछ नहीं, ८५ प्रकृतियाँ खाक हो गई। १४ वें गुण स्थान में अ इ उ ऋ लृ उच्चारण में जितना समय लगता है उतने काल ठहर कर मुक्ति रमा के कंत हो मोक्ष सौध में जा विराजे ६४ मुनिराजों के साथ। उसी समय चतुर्णिकाय देव-देवियों से मन्दार गिरि खचाखच भर गया। जय-जय नाद गूंज उठा। चारों ओर हर्षोल्लास छा गया। नाच-कूद, स्तुति ध्वनि गूंज होने लगी। अग्निकुमार देवों ने अग्नि संस्कार कर मानों अपने समस्त कल्मषों को जला डाला। अपने-अपने भावों के अनुसार पुण्यार्जन और पापहानि कर देवगण मोक्ष कल्याणक पूजा-विधान कर दिवौलोक को प्रस्थान कर गये। नर-नारियों—श्रावक श्राविकाओं ने भी नानाविध दीपमालिका जलाकर अष्ट द्रव्यों से महा पूजा की। निर्मल सम्यक्त्व प्राप्त कर अनन्त संसार का नाश किया। भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी के दिन मुक्त हुए। संध्या समय विशाखा नक्षत्र में।

भगवान वासुपूज्य स्वामी बालब्रह्मचारी थे। इनके काल में द्विपृष्ठ नारायण हुआ और अचल बलभद्र, तारक नाम का प्रतिनारायण हुए। नारायण और प्रतिनारायण राज्य की लिप्सा से हिंसानन्दी रौद्र ध्यान का माहात्म्य से सातवें नरक में गये और अचल बलभद्र दीक्षा ले तप कर कर्मों को ध्वस्त कर मोक्ष पधारे। आशापाश संसार दुःखों की खान है और वैराग्य अनन्त सुख का निमित्त।

चिह्न भैंसा

१३–१००८ श्री विमलनाथ जी

पूर्वभव परिचय—

अनादि संसार में जीव भी अनादि से परिभ्रमण करता आ रहा है। क्या उसका वर्णन शक्य है? नहीं। अन्त के दो चार भवों का ही वर्णन हो सकता है।

धातकीखण्ड द्वीप जम्बू द्वीप से द्विगुणा विस्तार वाला है। आज हम ६ महादेशों को मात्र संसार मान बैठे हैं किन्तु यह सागर में बिन्दु के समान भी नहीं है। जैनागम में असंख्यात द्वीप-सागर कहे हैं उनमें यह दूसरे नम्बर का है इसमें मेरु के पश्चिम भाग में सीतानदी के तट पर रम्यकावती देश है। उसमें पद्मसेन राजा राज्य करता था। इसके राज्य में आश्चर्यकारी विचित्र रचना थी। चोर नहीं थे चोरी भी नहीं, कोई पर स्त्री हरण नहीं करता था, कोई भी वर्ण व्यवस्था का उल्लंघन नहीं करता था। झूठ बोलना, निन्दा करना, एक दूसरे का अपमान

करना इत्यादि पाप का नाम भी नहीं था। सर्व प्रजा धर्म, अर्थ और काम का समान रूप से पालन करती थी। उसके वैभव, आज्ञा ऐश्वर्य बराबर चलते थे। किन्तु न्याय, धर्म और विरक्ति भाव भी उतना ही भरा था।

"महाराजन्! प्रीतिकर वन में "सर्वगुप्त" केवली के शुभागमन से सर्व ऋतुओं के फल-फूल फलित हो गये हैं, जाति-विरोधी जीव बड़े प्रेम से क्रीड़ा कर रहे हैं। उद्यान की श्री अद्वितीय हो गयी है।" सामने फल-फूल भेंट करते हुए वन पालक ने निवेदन किया। राजा राजचिह्न के अतिरिक्त अन्य आभूषण माली को देकर भगवद्भक्ति प्रकट की, उस दिशा में ७ पैंड चलकर भगवान को परोक्ष नमस्कार किया। पुनः परिजन-पुरजन को साथ ले महा-विभूति से प्रत्यक्ष जिन पूजन को चला।

धर्मोपदेश सुन अपनी भवावली ज्ञात की। दो ही भव शेष हैं जानकर परम सन्तोष हुआ। विवेक महिमा भी अलौकिक होती है। अपने पुत्र पद्मनाभ को राज्यभार दे दीक्षा धारण की। घोर तप किया। भावलिंग होने से मनः शुद्धि शीघ्र होने लगी। ग्यारह अंग का ज्ञान उन्हें शीघ्र हो गया। दर्शन विशुद्धयादि सोलह कारण भावनाओं को भाकर (चिन्तन कर) तीर्थङ्कर नाम कर्म बांधा—अन्त में समाधि कर सहस्रार–बारहवें स्वर्ग में इन्द्र हुआ।

स्वर्गावतरण गर्भ कल्याणक—

मर्त्यलोक पुण्यार्जन का प्रमुख स्थान है और स्वर्ग उस पुण्य के भोगने का मनोरम उद्यान है। पद्मसेन राजा का जीव १८ सागर की आयु भोगोपभोगों में व्यतीत कर अवतरित होने के सम्मुख हुआ, मात्र ६ माह आयु बची। इधर भरत क्षेत्र के कांपिल्य नगर में इक्ष्वाकु वंशी राजा कृतवर्मा के आंगन में बहुविधि रत्न-वृष्टि होने लगी। क्या करें? किसे दें? कहाँ रखें? यही चर्चा थी सर्वत्र। महारानी जयश्यामा की नानाविधि से देवियाँ सेवा करने लगीं। रुचकगिरी निवासिनी देव-बालाएँ गर्भ शोधना में तत्पर हो गईं। रात-दिन कहाँ जा रहे हैं यह भी पता नहीं चला।

निदाघकाल आ गया। रवि प्रताप पूर्ण रूप से भू-पर छा गया। महाराजा कृतवर्मा का कुल प्रताप ही मानों उदय हो रहा है। ज्येष्ठ

कृष्णा दशमी के दिन रात्रि के पिछले प्रहर में सुख से सोते हुए १६ स्वप्न देखे। मुखकमल में प्रविष्ट होता उत्तम हाथी देखा। निद्रा भंग हुई। सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान करते हुए शैया का त्याग किया। स्नानादि क्रियाओं से निवृत्त हो सभा में पधारी। अर्द्धासन पर बैठ स्वप्नों का फल पतिदेव से पूछा। महाराज ने भी संतुष्ट हो "तीर्थङ्कर" पुत्र होगा कह—उसके असीम प्रमोद को बढ़ाया। उसी समय चतुर्णि-काय देवों ने आकर गर्भ-कल्याणक पूजा की। अर्थात् माता का सम्मान किया। भक्ति की और सातिशय पुण्यार्जन किया। अनेकों स्वर्गीय सुख-सुविधाओं के साथ गर्भ बढ़ने लगा। अर्थात् बालक की वृद्धि होने लगी किन्तु माँ की उदर वृद्धि नहीं हुयी। किसी प्रकार भी प्रमाद आदि या अन्य कष्ट कुछ भी नहीं हुआ। शरीर सौन्दर्य के साथ बुद्धि, कला, गुण विज्ञान वृद्धिगत हुए।

जन्म कल्याणक----

माँ को संतान मात्र की प्राप्ति आनन्दकर होती है फिर पुत्र हो तो और अधिक हर्ष होता है और जिसके तीन लोक का नाथ बनने वाला पुत्र हो, जिसने गर्भ में आने के पहले ही इन्द्र को नत कर दिया हो उस पुत्र की जननी के सुख-आनन्द और संतोष का क्या ठिकाना ?

माघ शुक्ला चतुर्थी के दिन उत्तरा भाद्र नक्षत्र में जगन्माँ जयश्यामा देवी ने विश्वत्रय के साथ अष्ट कर्म विजयी श्रेष्ठतम पुत्र को प्रसव किया। तीनों लोक क्षुभित हो गये। भूकम्प के समान स्वर्ग लोक कम्पित हुआ। इन्द्र तीर्थङ्कर जन्म ज्ञात कर सप्त प्रकार सेना सहित ऐरावत गज पर शचि सहित सवार होकर आया। नगर की तीन परिक्रमा कर इन्द्राणी को प्रसूतिगृह में भेजा। सद्योजात प्रभु की शरीर कान्ति से आलोकित कक्ष में इन्द्राणी आश्चर्य से कि कर्तव्य विमूढ सी हो गई। माया निद्रा में सुख से सुला, बालक को लाकर इन्द्र को दिया उसने भी १ हजार नेत्रों से प्रभु बालक की रूप राशि का पान किया। ससंभ्रम मेरु पर्वत पर जा पहुँचे।

मति, श्रुत, अवधि ज्ञान युत भगवान बालक को पाण्डुक शिला पर स्थित तीन सिंहासनों में मध्य स्फटिक सिंहासन पर बालक प्रभु को विराजमान किया। देवगण हाथों हाथ क्षीर सागर का जल लाये। १००८ कलशों से जन्माभिषेक कर सर्वांग में गंधोदक लगाया। इन्द्राणी

से अभिषेक कर कोमल वस्त्र से अंग पोंछा। सभी अलंकारों से अलंकृत किया वस्त्र पहना कर काजल एवं तिलक लगाया। पुन: नृत्य गान वादि-आदि से काम्पिल्य नगर में बालक को लाकर माता-पिता को सौंपा। हर्ष से आनन्द किया। बालक का नाम **विमलनाथ** कुमार प्रख्यात किया इनका चिह्न **सूकर** निश्चित किया। जन्म कल्याणक पूजा कर अपने-अपने स्थान पर चले गये।

कुमार काल—

द्वितीया के मयङ्क वत् बालक बढ़ने लगा उनके शरीर वृद्धि के साथ बुद्धि, कला, ज्ञान, प्रतिभा भी बढ़ रही थी। इतना ही नहीं समस्त प्रजा का सुख वैभव भी बढ़ रहा था। देव बालक प्रभु के साथ क्रीड़ा करते, खेलते, विनोद करते देवाङ्गनाएँ स्वर्ग से लाए वस्त्रालंकारों से सज्जित कर अपने को धन्य-कृतकृत्य समझतीं। इनकी आयु ६० लाख वर्ष थी। ये श्री वासुपूज्य स्वामी के बाद ३० सागर बीतने पर हुए। अन्त के १ पल्य तक धर्म का विच्छेद रहा। इनका शरीर ६० धनुष ऊँचा था, सुवर्ण के समान उनकी कान्ति थी, वे सर्व प्रकार पुण्य समूह थे। संसार को पवित्र करने वाले देव कुमारों के साथ क्रीड़ा करते हुए समस्त जनों के नयन सितारे थे। इनकी बाल लीलाओं में विवेक था, बुद्धि चातुर्य और वात्सल्य-मैत्री का भाव था। प्राणी मात्र के उत्थान का अभिप्राय रहता। कभी भी किसी के तिरस्कार की भावना जाग्रत नहीं होती थी। इस प्रकार १५ लाख वर्ष खेल-कूद में समाप्त हो गये।

राज्य भोग—

कुमार काल पूर्ण होते ही माता-पिता ने गार्हस्थ जीवन में प्रवेश कराया। पिता ने राज्यभार देकर अपना नियोग पूरा किया। लक्ष्मी उनके साथ जन्मी थी। स्वयं इन्द्र ने पट्टाभिषेक किया। कीर्ति जन्मान्तरों से साथ थी, सरस्वती ने स्वयं इन्हें स्वीकार किया। बड़े-बड़े ऋषि मुनियों में पाये जाने वाले गुण इनमें अंकुरित रूप में विद्यमान थे। कुन्द फूल के समान इनका यश लोक व्याप्त हो गया। इस प्रकार ३० लाख वर्ष राज्य भोगों में व्यतीत हो गये।

वैराग्य—

प्रत्येक कार्य की सिद्धि के पीछे कोई न कोई परोक्ष या प्रत्यक्ष निमित्त कारण अवश्य रहता है। पञ्चेन्द्रिय विषयों में आपाद-मस्तक

हुवे प्रभु एक दिन हेमन्त ऋतु की शोभा देख रहे थे। आकाश में मेघ आच्छादित हो रहे थे। पलक झपकने के साथ वह सुन्दर दृश्य विलीन हो गया। बस प्रभु का भी मोह परदा फट गया। उन्हें अपने पूर्वभव का स्मरण हो गया। एक भीषण रोगी की भांति उनका मन खेद खिन्न हो गया। वे सोचने लगे जब तक संसार की अवधि है, तब तक ये तीन ज्ञान, यह वैभव, यह वीर्य कुछ भी कार्यकारी नहीं। अब मुझे आत्म स्वालम्ब प्राप्त करना है। उसी समय सारस्वतादि लौकान्तिक देवों ने आकर उनकी पूजा की, स्तुति की और वैराग्य की पुष्टि कर अपने स्थान को चले गये।

दीक्षा कल्याणक—

पुण्य का करण्ट कहाँ नहीं पहुँचता ? मोक्ष के सिवाय सर्वत्र इसके तार लगे हैं। भगवान को विरक्ति होते ही इन्द्र गण अपना-अपना परिवार लेकर आये। इन्द्र 'देवदत्ता' नाम की पालकी लेकर आया। प्रभु का अभिषेक कर वस्त्राभूषण पहिना कर सहेतुक वन में ले गये। उद्यान की निराली शोभा के मध्य शुद्ध शिला पर "नमः सिद्धेभ्यः" कह कर विराजे। पञ्च मुष्टि लौंच किया। बेला का उपवास धारण कर १००० राजाओं के साथ माघ शुक्ला चतुर्थी के दिन उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में सायंकाल स्वयं दीक्षित हुए। उसी समय उन्हें मनः पर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया। वहीं योगासन से ध्यानारूढ़ हो स्वयं में स्वयं की खोज करने लगे।

पारणा—

दो दिन बीतने पर ध्यानी, परम मौनी प्रभु भगवान आहार के लिए चर्या मार्ग से नन्दनपुर में आये। सुवर्ण के समान कान्ति को धारण करने वाले महाराज जयकुमार ने अपनी पत्नी सहित नवधा-भक्ति से आहार देकर देवों द्वारा पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये। संसार का नाश करने वाला पुण्यार्जन किया। मुनिराज भी क्षीरान्न का प्रथम पारणा कर उद्यान में गये। विविध प्रकार कठोर तप कर कर्मों का नाश करने लगे उग्रोग्र संयम वृद्धि हो रही थी। अनन्त गुणी कर्मों की निर्जरा भी बढ़ रही थी।

छद्मस्थ काल—

तपोलीन प्रभु ने ३ वर्ष साधना में व्यतीत किये। पुनः एक दिन वे उसी समय दीक्षा वन में पधारे। जम्बूवृक्ष (जामुन) के नीचे बेला का नियम लेकर विराजमान हुए।

केवलोत्पत्ति—

माघ शुक्ला षष्ठी के दिन शाम के समय, उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में प्रथम मोहनीय कर्म को चूर, शेष तीनों घातिया कर्मों का भी निर्दयता से संहार किया और १६ प्रकृतियां अघातिया की भी नष्ट की। सब ६३ प्रकृतियों को भस्म कर चराचर प्रकाशक अक्षय केवलज्ञान को प्राप्त कर अर्हत् हुए। अर्थात् विश्व वंद्यशत इन्द्रों से पूज्य अर्हन्त परमेष्ठी बने।

केवलज्ञान कल्याणक—

केवलोत्पत्ति के साथ ही स्वर्ग में बाणिग बेल बजी। सभी इन्द्र अपनी-अपनी सेना परिवार के साथ हर्षोत्फुल्ल ज्ञान कल्याणक पूजा करने को आ गये। अनेकों उत्तम सुगंधित गंध, पुष्प, फल, अक्षतादि से भगवान विमलनाथ की पूजा की। प्रभु के धर्मोपदेशामृत का पान प्रत्येक भव्य प्राणी कर सके इस अभिप्राय से इन्द्र ने कुबेर को सभा-मण्डप रचने की आज्ञा दी। उसने भी असाधारण, भूमि से ५०० धनुष ऊपर आकाश में चारों ओर २०-२० हजार कंचनमयी सीढ़ियों से युक्त सभामञ्च तैयार कर "समवशरण" नाम दिया। इसके ठीक मध्य में गोलाकार गंधकुटी की रचना की। इसके चारों ओर वृत्त रूप में १२ विशाल हॉल बनाई। गंधकुटी के ऊपर सिंहासन, उससे ४ अंगुल अंतरीक्ष में प्रभु विराजे। इन्हें घेर कर १२ प्रकोष्ठों में क्रमशः गणधरादि श्रोतागण बैठे। भगवान का मुख आत्मविशुद्धि के कारण चारों ओर दिखलाई पड़ता था। अतः समस्त श्रोताओं को संतोष रहता था।

उनकी सभा में मन्दर को आदि कर ५५ गणधर थे। ११०० चौदहपूर्व, ग्यारह अंग के ज्ञाता थे, ३६५३० पाठक, ४८०० तीन प्रकार के अवधिज्ञानी, ५५०० केवली, ९००० विक्रियाद्धिधारी, ५५०० मनः पर्ययज्ञानी, ३६०० वादी थे। इस प्रकार सब मिलाकर ६८००० मुनि-

रत्नों से प्रार्थित प्रभु—भगवान राजते थे। पद्मा मुख्य गरिणनी के साथ १ लाख तीन हजार आर्यिकाएँ उनका स्तवन करती थीं। दो लाख श्रावक और चार लाख श्राविकाएँ थीं। सभी प्रभु के गुणगान और पूजा में रत रहकर धर्म लाभ लेती थीं। इनके सिवाय असंख्यात देव-देवियाँ और संख्यात तिर्यञ्च थे। इस प्रकार इन्द्र की प्रार्थना और भव्य प्राणियों के पुण्योदय से उन्होंने सम्पूर्ण धर्म क्षेत्र (आर्य खण्ड) में विहार किया। संसार भय से संत्रस्त जीवों को रक्षित कर मोक्षमार्ग पर लगाया।

योग निरोध—

आयु का १ माह शेष रहने पर आप धर्मदेशना संकोच कर श्री सम्मेद शिखर जी पर्वत पर आये। वहाँ **शंकुल (सुवीर)** कूट पर योगासन से विराजे। क्रमश: शेष कर्म प्रकृतियों को भी असंख्यात गुण-श्रेणी द्वारा निर्जरित करने लगे। इस कूट के दर्शकों को १ कोटि उपवास का फल प्राप्त होता है। प्रतिमायोग धारण कर भगवान विराजे।

जिस समय आयु कर्म की स्थिति से नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मों की स्थिति अधिक रहती है तो केवली भगवान समुद्घातक्रिया कर उन कर्मों की स्थिति को आयु के समान कर लेते हैं। अर्थात् आत्म प्रदेशों का दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूर्ण फैलाकर पुन: उसी क्रम से संकोचते हैं इस प्रकार ८ समयों में कर्म स्थितियों का समरूप कर लेना केवली समुद्घात कहलाता है। भगवान विमलनाथ स्वामी ने भी आषाढ़ कृष्णा अष्टमी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में प्रात:काल अति शीघ्र समुद्घात किया, सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति और व्युपरतक्रिया निवृत्ति दोनों शुक्ल ध्यानों का ध्यान किया। उसी समय ८५ प्रकृतियों का नाश कर जिस प्रकार कोई रोगी असाध्य रोग से मुक्त हो सुखी होता है, उसी प्रकार मोक्ष पधार कर अक्षय अनन्त सुख के धारी हो गये।

मोक्ष कल्याणक—

आसाढ़ कृष्णा अष्टमी को आज भी कालाष्टमी के नाम से पूजते हैं, उत्सव मनाते हैं। क्योंकि इन्द्र को, भगवान को मुक्ति हो गई यह विदित होते ही वह सुवीर कूट पर सपरिवार आया। मोक्ष-कल्याणक पूजा की। अग्निकुमारों से प्रभजन उत्पन्न करा संस्कार क्रिया की। अनेकों उत्तमोत्तम रत्नों के दीप जलाये। तदनुसार श्रावक-श्राविकाओं ने भी अनेक प्रकार आरती, भजन, स्तोत्रों द्वारा अपनी-अपनी भक्ति

प्रदर्शित की । अन्त में अति उत्साह भरे "हमें भी मुक्ति लाभ हो" इस भावना से अपने-अपने स्थान में चले गये ।

विशेष—

इनके काल में ही धर्म और स्वयंभू नाम के बलभद्र एवं नारायण हुए । स्वयंभू नारायण ने द्वारावती के राजा रुद्र का पुत्र मधु (प्रतिनारायण) को उसी के चक्र द्वारा मारकर तीन खण्ड का राज्य प्राप्त किया । मधु मरकर ७वें नरक में गया । क्या ही पुण्य-पाप का खेल है । पुण्य-पाप रूपी अग्नि में स्वयं ही यह जीव झुलसता है, मरता है और ८४ लाख योनियों में दुःख भोगता है । स्वयम्भू नारायण ने यद्यपि ३ खण्ड का राज्य पाया किन्तु भोगासक्त होने से नरकायु बंध कर उसी सातवें नरक में गया । अतः प्रेम या द्वेष की वासना कभी नहीं रखना चाहिए ।

धर्म बलदेव इस कृत्य से भयभीत हुए । संसार, शरीर भोगों का परित्याग कर दीक्षित हो कठोर तपः साधना से कर्म काष्ठ भस्म कर शुद्ध हो मोक्ष स्थान पर जा विराजे ।

चिह्न शूकर

प्रश्नावली—

१. विमलनाथ भगवान के जीवन की क्या विशेषता है ?
२. समुद्घात किसे कहते हैं ?
३. केवली भगवान आयु के बराबर अन्य कर्मों की स्थिति को किस प्रकार करते हैं ?
४. नारायण कितने खण्डों का राजा होता है ?
५. इनकी जन्म नगरी का नाम बताओ ? माता-पिता का क्या नाम है ?
६. इनका मोक्ष स्थान कहाँ है ? उसके दर्शन का क्या फल है ?
७. इनके समवशरण में कितने मुनि, श्रावक और श्राविका थीं ?

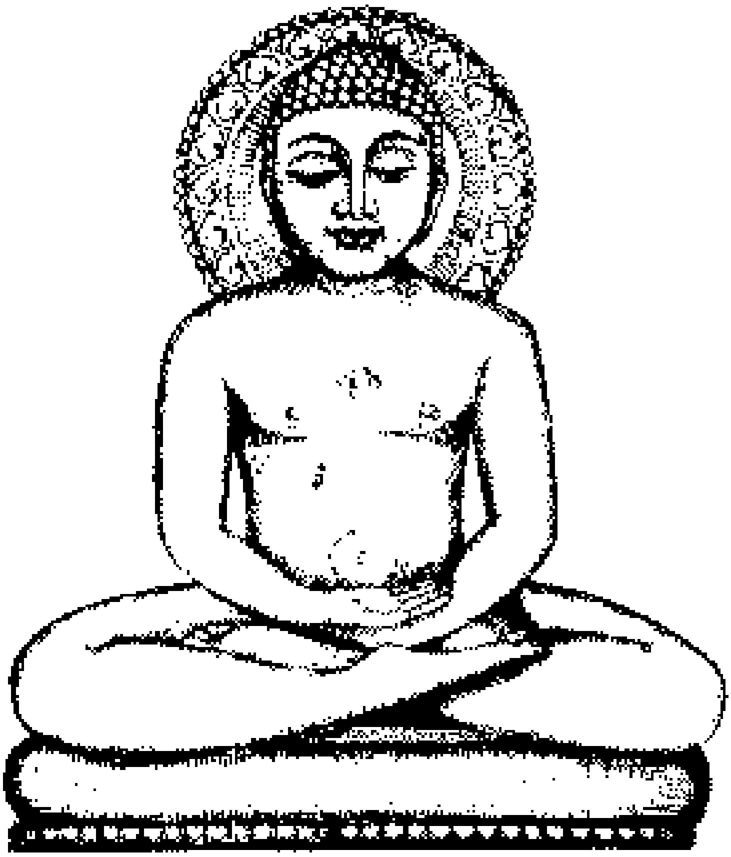

१४–१००८ श्री अनन्तनाथ जी

पूर्वभव-----

यौवन का सार है त्याग, धन का फल है दान, विद्या का फल है विनय, प्रभुता का सार है अनुग्रह, इसी प्रकार राज्य प्राप्ति की गरिमा है न्याय-प्रजावत्सलता। धातकी खण्ड द्वीप के पूर्व मेरु की ओर उत्तर देश में एक अरिष्ट नाम का सुन्दर नगर था। इसका पालक अवनिपाल पद्मरथ नाम का राजा था। उपर्युक्त सभी गुण एक साथ इसमें पाये जाते थे। पुण्योदय से समस्त सौभाग्य-सुख सम्पत्ति इसे प्राप्त थी। तो भी अहंकार और ममकार का लेश भी नहीं था। सदैव संवेग और निर्वेद भावना में लीन रहता।

महाराजन्! उद्यान में 'स्वयंप्रभ' जिनराज पधारे हैं। वनपालक ने विज्ञप्ति की। वह दर्शनार्थ गया। विनय पूर्वक दर्शन कर धर्मोपदेश सुना। उसे वैराग्य प्रकट हुआ। उसने अपने पुत्र धनरथ को राज्यार्पण

कर जैनेश्वरी दीक्षा ले ११ अंगों का अध्ययन कर १६ कारण भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थङ्कर गोत्र बंध किया। आयु के अन्त में समाधि-मरण कर १६ वें पुष्पोत्तर विमान में उत्तम देव हुआ।

गर्भावतरण—

सोलहवें स्वर्ग में २२ सागर की आयु पूर्ण हो गई निमिष मात्र के समान। मात्र ६ माह शेष रह गये। इधर भू-लोक में अद्भुत घटना हुई। जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अयोध्या महानगरी है। इसका राजा इक्ष्वाकुवंशी, काश्यपगोत्रीय सिंहसेन थे। इनके आंगन में नाना रत्नों की वर्षा प्रारम्भ हो गई। त्रिकाल प्रतिदिन आकाश से गिरती रत्न-धारा ने सबको संतुष्ट कर दिया। इस प्रकार छः माह पूर्ण हुए।

महादेवी (रानी) जयश्यामा सुख निद्रा में निमग्न है। वह समझ भी नहीं पायी कि कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा से उसे शरद पूर्णिमा बनकर आयेगी। रेवती नक्षत्र में रात्रि के अन्तिम पहर में उसने सोलह स्वप्न देखे और अन्त में मुख में प्रविष्ट होते हाथी देखा। प्रातः मंगल वाद्यों के साथ जाग्रत हो, नित्यकर्म से निवृत्त हो राजसभा में पधारीं। पतिदेव से स्वप्नों का फल ज्ञात करने की भावना व्यक्त की। महाराजा सिंहसेन ने भी "भावी तीर्थङ्कर" का गर्भावतरण हुआ है" बतलाकर परमानन्द प्राप्त किया। रुचकगिरि वासी देवांगनाओं द्वारा शोधित सुगंधित, शुद्ध गर्भ में देव आकर अवतरित हुआ। उसी दिन चारों प्रकार के देव-देवियाँ इन्द्र-इन्द्राणियाँ स्वर्गीय सुख-वैभव छोड़कर गर्भ-कल्याणक महोत्सव मनाने आये। माता की पूजा की-सेवा की-मनोरंजन किया। आमोद-प्रमोद के साथ उत्सव मनाकर अपने अपने स्थान गये। अनेकों देवियाँ इन्द्र की आज्ञा से माता की सेवा करने लगीं। बिना किसी कष्ट और विकार के सुख से गर्भस्थ बालक प्रभु बढ़ने लगे।

जन्म कल्याणक—

शनैः शनैः नव मास पूर्ण हो गये। ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी के दिन पुण्ययोग में पुण्यवान भावी भगवान बालक को उत्पन्न किया। बालक की कान्ति से कक्ष प्रकाशित हो गया। माँ माता से निद्रा की गोद में सो गईं। एक क्षण को नारकियों ने भी सुखानुभव किया। तत्क्षण सौधर्मेन्द्र चारों निकायों के देव-देवियों सहित आया। शचि देवी ने

प्रसूतिगृह से बालक को ला इन्द्र को प्रदान किया। हजार नेत्रों को पसारे इन्द्र ने बालक को ऐरावत हाथी पर आसीन किया। सुमेरु की पाण्डुक शिला पर लेजाकर विराजमान किया। हाथों-हाथ लाये क्षीर-सागर जल के १००८ कलशों से सद्योजात बालक का जन्माभिषेक किया। सार्थक '**अनन्तनाथ**' नाम प्रख्यात किया। '**सेही**' का चिन्ह (लाञ्छन) निर्धारित किया। इन्द्राणी द्वारा वस्त्राभूषणों से अलंकृत बालक को पुन: अयोध्या में लाकर माता की गोद में शोभित कर आनन्द नाटक किया। सपरिवार स्वर्गधाम लौट गये।

अन्तराल—

विमलनाथ अरहंत के नौ सागर और पौन पल्य बीतने पर अनन्तनाथ हुए। इनकी आयु भी इसी में सम्मिलित है। इनकी आयु ३० लाख वर्ष की थी। पचास धनुष ऊँचा वपुशरीर था। **देदीप्यमान-सुवर्ण** के समान शरीर की कान्ति थी।

कुमार काल—

देव कुमारों के साथ खेल-कूद में बड़े आनन्द से बालक बढ़ने लगा। संसार का सितारा भला किसे प्रिय न होता? सबको आनन्द देने वाला था। सात लाख ५० हजार वर्ष व्यतीत हो गये। यौवन में प्रवेश हुआ। परन्तु रूप लावण्य आकृति में कोई विकार नहीं आया। इन्द्र की परामर्श से सिंहसेन ने अनेकों सुन्दर नव यौवना सुकुमारी राज कन्याओं के साथ इनका विवाह किया। कुछ ही दिनों में राज्यभार भी समर्पित कर दिया।

राज्यकाल और वैराग्य—

महाराज अनन्तनाथ, दयालु, परम कृपालु, प्रजापालक, धर्मभीरु राजा था। सम्यक्त्वमणि विभूषित विचारों में पाप का लेश नहीं था। उनकी प्रत्येक क्रिया पाप-कर्ममल प्रक्षालन की निमित्तभूत थी। प्रजा उनके अनुशासन में रहकर आत्मस्वातन्त्र्य रूप आनन्दानुभव करती। सभी श्रावकोचित क्रियाओं में निरत थे। जिन स्नपन, पूजन, स्तवन, शास्त्र स्वाध्याय, जप और दान देने में दक्ष थे। इस प्रकार सुख शान्ति से राज्यभोग करते १५ लाख वर्ष समाप्त हुए।

प्रकृति की सुषमा काल की गति के साथ-साथ सदा परिणमित होती रहती है। आयु के साथ जीव की पर्याय बदलती है। अर्थ पर्याय प्रति समय चैञ्च होती ही है। कौन रोके ? स्वभाव अतर्क्य होता है। अनन्त राजा आकाश का सौन्दर्य निरख रहे थे। सहसा उल्कापात हुआ। वह बाह्य निरखन अन्तरङ्ग परखने में बदल गया। वे विचारने लगे "कर्म विषवल्ली है, अज्ञान इसका बीज है, असंयम भूमि में बढ़ी है, प्रमाद जल से अभिसिंचित है, कषायरूप शाखाओं से व्याप्त है, योगों के माध्यम से लहराती है, बुढ़ापा रूप पुष्पों से लदी है, दुःख रूपी बुरे फलों से व्याकीर्ण है। मैं इसका मूलोच्छेद करूँगा। शुक्ल ध्यान से इसे दग्ध कर अपने सिद्ध स्वरूप को अवश्यमेव पाऊँगा।" इसी चिन्तन के समय सारस्वतादि लौकान्तिक देवगणों ने आकर आपके विचारों का समर्थन किया और अपने स्थान पर लौट गये।

उन परम् विरागी राजा ने कर्म विजयी बनने को राज्यभार अपने पुत्र अनन्तविजय को समर्पित किया। उसी समय देवेन्द्र ने सपरिवार आकर उनका पूजन-अभिषेक किया तथा उन्हें सागरदत्ता नाम की पालकी में सवार कर सहेतुक वन में पधारे। वहाँ स्वयं भगवान ने "नमः सिद्धेभ्यः" के साथ पञ्चमुष्टी लौंच कर जिनदीक्षा धारण की। ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी के दिन रेवती नक्षत्र में शाम के समय १ हजार राजाओं के साथ तेला का नियम कर दीक्षित हुए। उसी समय उन्हें मनः पर्यय ज्ञान हुआ।

पारणा—

तेला पूरा कर श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ वे मुनिराज आहार के लिए चर्या-मार्ग से अयोध्या नगरी में पधारे। सुवर्ण समान कान्ति वाले राजा विशाख ने उन्हें श्रद्धा, भक्ति, तुष्टि, संतोष आदि सप्त गुण सहित, नवधा भक्तियुत अत्यन्त हर्ष से आहार देकर पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये। शुद्धाहार से मनः शुद्धि भी बढ़ती गई।

छद्मस्थ काल—

दो वर्ष पर्यन्त उन्होंने मौन पूर्वक तप करते हुए समाप्त किये। उग्रोग्र घोर तप से असंख्यात गुणित क्रम से कर्म निर्जरा होती रही।

केवलोत्पत्ति-कल्याणक (ज्ञान कल्याणक)—

बसन्त काल का आगमन हुआ। प्रभु के हृदय में तृतीय शुक्ल ध्यान का उदय हुआ। अति निकृष्ट शरीर भी उत्कृष्ट होने लगा। ठीक ही है सुवर्ण की संगति से काचखण्ड भी बहुमूल्य मणि की कान्ति को धारण करता है। चैत्र कृष्णा अमावस के दिन रेवती नक्षत्र में सायंकाल पीपल के नीचे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उसी समय इन्द्र ने शचि एवं देव देवियों सहित आकर अनेकों दिव्य द्रव्यों से भगवान की पूजा की, ज्ञान की पूजा की। सर्वज्ञ प्रभु की प्रिय, हित, मित वाणी का प्राणीमात्र को लाभ हो इस उद्देश से कुबेर को आज्ञा दी। उसने भी उसी क्षण विशाल मण्डप तैयार किया। १२ कोठे रचे। इसका विस्तार ५॥ योजन (२२ कोस) था। इन्द्र ज्ञान कल्याणक पूजा कर स्वर्गलोक को लौट गये। सर्वज्ञ, वीतरागी, हितोपदेशी, श्री जिनराज की दिव्य ध्वनि प्रारम्भ हुयी। अनेकों भव्यों ने व्रत, नियम, संयम धारण कर शिष्यत्व स्वीकार किया।

समवशरण में सभासदों की संख्या—

उनके उपदेश की वृद्धि करने वाले ५० गणधर थे। प्रमुख गणधर जयार्य (जय) था। ५५०० सामान्य केवली, ११०० पूर्वधारी, ३८५०० पाठक (उपाध्याय), ५५०० मनः पर्यय ज्ञानी, ६००० विक्रियाद्धिधारी, ४८०० अवधिज्ञानी, ३२०० वादी थे। सम्पूर्ण मुनि संख्या ६६००० थी। सर्व श्री को मुख्य कर १०८००० आर्यिकाएँ थीं। पुरुषोत्तम को प्रधान कर २ लाख श्रावक और ४ लाख श्राविकाएँ थीं। असंख्य देव-देवियाँ, संख्यात तिर्यञ्च थे। इनका शासन यक्ष किन्नर (पाताल) था एवं यक्षी अनन्तमती (विजृंभिणी) थी।

इनका तप काल ७५० हजार वर्ष था। केवलज्ञान उत्पत्ति का स्थान सहेतुक वन में पीपल वृक्ष के नीचे था। केवली या सर्वज्ञ होने के बाद उन्होंने समस्त आर्यखण्ड को अपने धर्मामृत से अभिषिंचित किया।

मुक्तिगमन एवं मोक्ष कल्याणक—

आयु का १ मास शेष रहने पर वे योग निरोध कर अर्थात् उपदेशादि स्थगित कर श्री सम्मेदाचल पर स्वयंप्रभ कूट (स्वयंभू) पर आ

विराजे। आपके साथ ६१०० मुनिराज और भी ध्यानारूढ़ हो गये। एक मास का प्रतिमायोग धारण कर चैत्र कृष्णा अमावस्या के दिन प्रातःकाल चौथे शुक्ल ध्यान के प्रभाव से परम मोक्ष पद प्राप्त किया। उसी समय इन्द्रादि ने आकर मोक्ष कल्याणक पूजा कर परिनिर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाया। रेवती नक्षत्र में मुक्त हुए।

अनन्तनाथ प्रभु के इस शुद्ध स्वरूप का ध्यान करने वालों को भी शुद्धात्म स्वरूप की प्राप्ति होती है।

विशेष—

इनके समय में सुप्रभ बलभद्र और पुरुषोत्तम नामक नारायण हुए। मधुसूदन को मार कर पुरुषोत्तम त्रिखण्ड का अधिपति हुए। राज्यलोभ-परिग्रह की तीव्र लालसा से दोनों ही ७ वें नरक में जा उत्पन्न हुए। सुप्रभ बलभद्र तपश्चरणकर–उभय परिग्रह का सर्वथा त्याग कर मुक्त हुए। भव्यात्मन् बन्धु एवं बहिनों को आशा पिशाची का त्याग करना चाहिए।

चिह्न 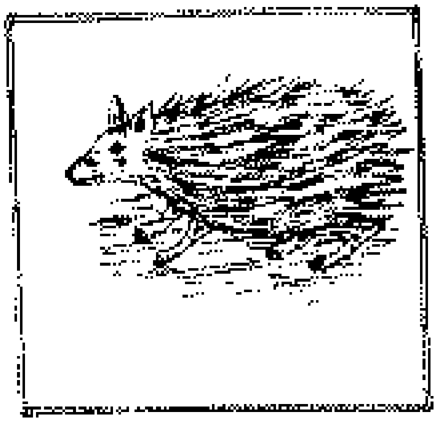 सेही

प्रश्नावली—

१. अनन्तनाथ के जीवन की विशेषता क्या है?
२. इनके माता-पिता का नाम क्या था? नगरी कौनसी थी?
३. केवलज्ञान कब और कहाँ प्राप्त हुआ?
४. आपको कौनसा कल्याणक सबसे अधिक प्रिय है? क्यों है?
५. तप कहाँ और कब धारण किया? राज्यकाल कितना था?

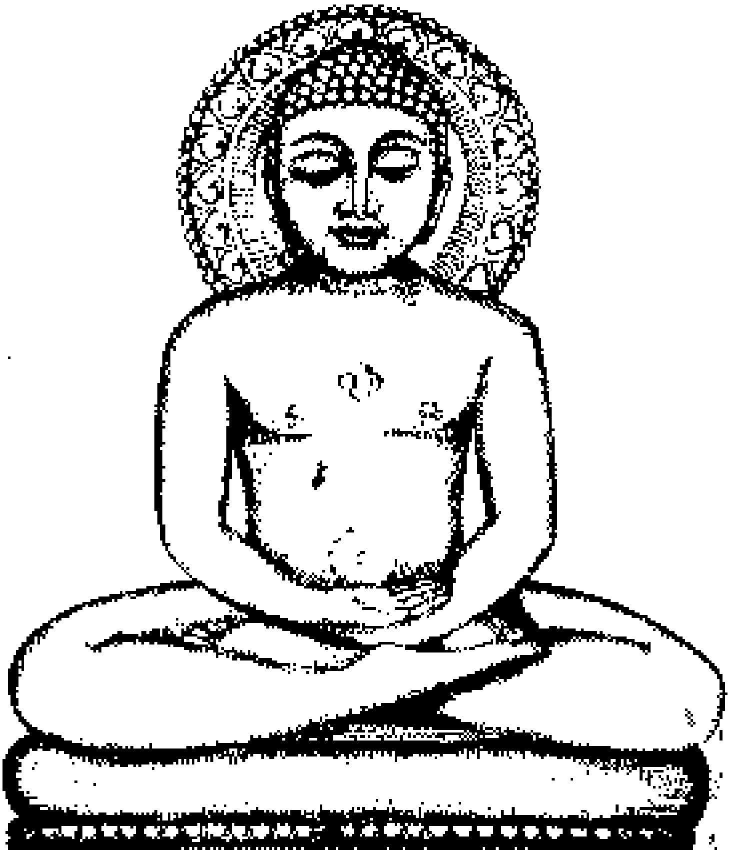

१५-१००८ श्री धर्मनाथ जी

पूर्वभव—

विशेष विलक्षण पुरुषों का चरित्र भी विलक्षण हुआ करता है। पूर्वधातकी खण्ड की बात है। पूर्व दिशा में सीता नदी के दक्षिण तट पर सुसीमा नगर अपनी शोभा से कुबेर की अलकापुरी को तिरस्कृत करता था। इसका राजा था दशरथ। यह बल, बुद्धि, विद्या, पराक्रम का धनी राज्य को पूर्ण सुरक्षित बनाये हुए था। भोगों की कमी न थी। यशोपताका सर्वत्र फहराती थी। प्रतापी था ही। पञ्चेन्द्रिय विषय जन्य सुखों में डूबा था। पुण्य की महिमा ही निराली होती है।

भवितव्यता का अपना प्रभुत्व है, अपना कार्य है। एक बार बसन्तागमन पर प्रजा जनों ने उत्सव मनाया। राजा क्यों वंचित रहता? उद्यान की छटा और चन्द्रमा का प्रकाश एक-दूसरे से बाजी लगाये थे। राजा कभी भू-खण्ड और कभी गगन प्रदेश को निहारता

था। मन ही मन फूला न समाया। किन्तु सहसा वह चौंक पड़ा, उसका हृदय धड़कने लगा, शरीर कांपने लगा, "हैं, यह क्या हुआ ? इस चन्द्रमा की कमनीयता कहाँ गई ? ओह ! राहु ने डस लिया इसे ? ठीक है हमारी आयु रूपी चाँद के पीछे भी मृत्यु रूपी राहु तैयार खड़ा है। बस,

राजा दशरथ चन्द्रमा की क्षीण होती ज्योति को देखते हुए

बस अब तक ठगा गया, अब तो सावधान होना चाहिए। अब मैं शीघ्र ही वृद्धावस्था आने के पूर्व ही अपना आत्म-कल्याण करूँगा। यह संसार उलझन है। इसमें फंसकर अज्ञानी मकड़ी की भाँति जीवन नष्ट नहीं होने दूँगा।"

दृढ़ संकल्पी महाराजा ने अपने पुत्र महारथ को राज्यार्पण किया। स्वयं श्री विमलवाहन मुनिराज के चरणों में गया और दीक्षित होकर ११ अङ्ग का पाठी बन शुद्ध हृदय से दर्शनविशुद्धयादि १६ भावनाओं का चिन्तन कर तीर्थंकर नामगोत्र बन्ध किया। समाधिपूर्ण मरण कर सर्वार्थसिद्धि विमान में ३३ सागर की आयु ले उत्पन्न हुआ। १ हाथ का सफेद शरीर था। सम्यक्त्व लेकर ही उपजा। ३३ हजार वर्ष बाद मानसिक आहार करता था। अवधि से लोकनाड़ी प्रमाण को जानता

था। अनासक्त अहमिन्द्र प्रवीचार रहित अनुपम सुख सागर में मस्त था। तत्व चिन्तन मात्र ही जीवन का कार्य था। समय बीत गया।

गर्भ कल्याणक महोत्सव—

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में रत्नपुरी नगरी का सौभाग्योदय हुआ। यहाँ का राजा महासेन अपनी प्रिया सुव्रता देवी के साथ निष्कण्टक राज्य करता था। यह बहुत ही शूर-वीर और रणधीर था। इसीसे इनका राज्य सुविस्तृत और विपुल धनराशि का खजाना था। ६ माह से तो बाढ़ आ गई आकाश से निरन्तर रत्न-वृष्टि होने लगी। कौन उठावे उन्हें ? पर रोक भी कौन सकता था।

बिना प्रयत्न के देवियाँ आ-आकर महादेवी का मनोरंजन करातीं, सेवा, सुश्रुषा करती रहीं। ६ मास पूरे होने लगे। रुचकगिरी वासिनी देव कन्यायें आकर उस देवी (रानी) के गर्भ की शोधना कर सुगंधित कर दिया। महारानी भी शुद्ध मन से श्री सिद्ध परमेष्ठी का ही ध्यान करतीं। दिक्कुमारियों से सेवित माँ प्रसन्न चित्त थी।

बैशाख शुक्ला त्रयोदशी के दिन रेवती नक्षत्र में रानी ने १६ स्वप्न देखे, उसी समय वह सुरम्य अहमिन्द्र, स्वार्थसिद्धि से च्युत हो इसके गर्भ में अवरित हुआ। रुचकगिरि कुमारियों द्वारा शोधित गर्भ में सीप में मुक्ता की भाँति भावी तीर्थङ्कर का जीव अवतरित हुआ। सवेरा होते ही राजसभा में महासेन से अपने स्वप्नों का फल 'तीर्थङ्कर' का जन्म जानकर अत्यानन्दित हो अन्त:पुर में आ गईं। महाराज महासेन को कितना आनन्द हुआ ? यह वर्णनातीत है। उसी समय देवेन्द्र सपरिवार आया और गर्भ-कल्याणक महोत्सव मना कर अपने स्थान पर चला गया। स्वर्गीय वस्त्रालंकारों से राज-रानियों को सज्जित किया। देवियों से मनोरंजित महादेवी का काल बीतने लगा।

जन्म कल्याणक—

क्रमश: आनन्द पूर्वक, उत्साह से नौ माह पूरे हुए। माघ शुक्ला त्रयोदशी के दिन पुष्य नक्षत्र में तीन ज्ञानधारी पुत्ररत्न को उत्पन्न किया। बालक की मुखाभा से कक्ष प्रकाशित हो उठा। माँ को किसी भी प्रकार की बाधा नहीं हुई। व आनन्द से सोयी रही। इन्द्रादि देव,

देवियाँ, शची आदि जन्म कल्याणक महोत्सव मनाने आये। देखिये, अद्भुत पुण्य प्रताप, इनके जन्मते ही नारकियों को भी सुख-शान्ति का अनुभव हो जाता है। सारी सृष्टी आनन्द विभोर हो गई।

इन्द्र ऐरावत गज पर सवार होकर प्रभु बालक को सुमेरु पर ले गये। वहाँ पाण्डुक वन के मध्य, पाण्डुक शिला पर प्रभु को बैठाया और १००८ क्षारसागर के जल से भरे सुवर्ण घटों से अभिषेक किया। नाच-कूद कर इन्द्राणी आदि ने भी अभिषेक किया, कोमल वस्त्र से उनका शरीर पोंछा, अलंकार पहनाये, आरती उतारी। पुनः रत्नपुरी में आकर माता की गोद में बैठाकर माता-पिता का भी सम्मान किया। इन्द्र ने स्वयं ताण्डव-आनन्द नृत्य किया और अपने-अपने स्थान पर चले गये। बच्चे के साथ देव बालक ही क्रीड़ा करने आते थे। देवियाँ उनका स्नान, शृंगार आदि कार्य स्वर्गीय वस्तुओं से ही करती रहीं।

श्री अनन्तनाथ के मोक्ष जाने के बाद ४ सागर बीतने पर इनका जन्म हुआ। इनके जन्म से पूर्व आधेपल्य तक धर्म का उच्छेद रहा। इन्द्र ने इनका नाम **"धर्मनाथ"** विख्यात किया। वज्रदण्ड चिह्न निश्चित किया। इनकी आयु १० लाख वर्ष की थी, शरीर की कान्ति **तपाये हुए सुवर्ण** के समान थी। शरीर १८० हाथ ऊँचा था।

कुमार काल—

बाल लीलाओं के साथ ढाई लाख वर्ष कुमार काल के समाप्त हो गये। ये सबको हर्षित करने वाले थे। पिता ने परमानन्द से अपना राज्यभार इन्द्र की अनुमति से इन्हें अर्पित किया और अनेकों सुन्दरी, गुणवती, योग्य कन्याओं के साथ विवाह कर दिया। ये भी राज्य वैभव पाकर यथोचित, न्याय मार्ग से प्रजा पालन करने लगे। सर्व प्रकार धर्मराज्य वृद्धि को प्राप्त हुआ। इस प्रकार राज्य करते ५ लक्ष वर्ष व्यतीत हो गये।

वैराग्य—

किसी एक दिन "उल्कापात" देखकर इन्हें सहसा विरक्ति भावों ने आ घेरा। हृदय संवेग से भर गया। इन्होंने आत्मकल्याण की ओर चित्तवृत्ति को लगाया। उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर अपना-अपना नियोग पूर्ण किया और ब्रह्मलोक में चले गये।

निष्क्रमण कल्याणक—

स्नेह और मोह की फांसी को काटने को उद्यत प्रभु का दृढ संकल्प जानकर इन्द्र भी अपनी समस्त सेना परिकर को ले आया। प्रथम दीक्षाभिषेक किया अनेकों रत्नमय वस्त्रालंकार पहिनाये। धर्मनाथ ने भी अपने सुधर्म नाम के पुत्र को राज्यभार अर्पण किया। स्वयं, इन्द्र द्वारा लायी गयी नागदत्ता पालकी में सवार हुए। स्वयं-इन्द्र और देव आकाश मार्ग से लेकर शालवन में पहुँचे।

वहाँ उन्होंने माघ शुक्ला त्रयोदशी के दिन पुष्य नक्षत्र में सायंकाल १ हजार राजाओं के साथ तेला के उपवास धारण कर "नमः सिद्धेभ्य" के साथ पञ्चमुष्ठी लौंचकर भव विनाशिनी जिन दीक्षा धारण की। उसी समय उन्हें मनः पर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया। अखण्ड मौनव्रत धारण कर प्रभु ध्यान लीन हो आत्मविशुद्धि करने लगे।

पारणा—

तेला पूर्ण होने पर वे आहार के लिए पाटलीपुत्र या पटना नगरी में प्रविष्ट हुए। उन्हें वहाँ के राजा धन्यसेन ने सप्तगुण मण्डित होकर पडगाहन किया। हे भगवन् नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु, अत्र तिष्ठ तिष्ठ आहार जल शुद्ध है इत्यादि कह पडगाहन किया। नवधा भक्ति से सपत्नीक आहार दिया। दाता, पात्र, विधि और द्रव्य की विशिष्टता से उसके घर देवों द्वारा पञ्चाश्चर्य हुए। सुवर्ण की कान्ति को धारण वाला राजा बडभागी हर्ष से फूला नहीं समाया।

छद्मस्थ काल—

एक वर्ष तक महा मौनी, महाध्यानी भगवान तप: लीन रहे। घोर तप किया। कर्मों की स्थिति और अनुभाग शक्ति को क्षीण तम कर दिया।

केवलज्ञान और ज्ञान कल्याण—

कर्म क्या है ? स्वयं विकारी जीव द्वारा उपार्जित कार्माणवर्गणाओं का पिण्ड है, उसी की विकार भावना से उत्पन्न उसमें अनुभाग-फल देने की शक्ति है। इस द्रव्य और भाव रूप कर्म को जीव ही स्वयं

अपने पुरुषार्थ से नष्ट कर पूर्ण स्वतन्त्र होता है, अपने आत्मा को शुद्ध बना सकता है। भगवान बनने को उद्यत धर्मनाथ मुनिराज ने शुक्ल-ध्यान प्रारम्भ किये। क्षपक श्रेणी पर चढ़ने के क्षण से वे कर्म अपने प्रकर्ष रस सहित नष्ट होने लगे। प्रथम कर्मों का राजा मोहनीय आमूल दग्ध हो गया। दूसरे ही क्षण ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय भी समाप्त हुए। इस समय प्रभु अपने दीक्षावन-शाल वन में सप्तच्छद वृक्ष के नीचे ध्यानारूढ थे। पौष शुक्ला पौर्णमासी के दिन आपने इसी वन में तत्क्षण पूर्णज्ञान-केवलज्ञान प्राप्त किया। अब मुनिराज सर्वज्ञ हुए। वास्तविक अर्हन्त अवस्था प्राप्त की।

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने 'समवशरण' सभा मण्डप की रचना की। क्योंकि छद्मस्थ काल में तीर्थङ्कर उपदेश नहीं करते। पूर्ण ज्ञानी होने पर ही उनकी 'दिव्य ध्वनि' खिरती है। अतः १२ सभा कक्षों से युक्त गंधकुटी की रचना कर मध्य में सिंहासन रखा उस पर चार अंगुल अधर प्रभु विराजे। चारों ओर देव, विद्याधर, मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविकाएँ उपदेश श्रवण करने को व्यवस्थित ढंग से बैठे। यह मण्डप ५ योजन (२० कोस) विस्तृत गोलाकार था। इसमें बैठने वालों की संख्या निम्न प्रकार थी।

अरिष्टसेन आदि ४३ गणधर थे, ४५०० केवली, ९०० अंग और १४ पूर्वधारी थे, ४०७०० पाठक, ४५०० मनः पर्ययज्ञानी, ७००० विक्रियार्द्धिधारी, ३६०० अवधिज्ञानी, २८०० वादीगण, इस प्रकार समस्त ६४०० मुनिराज थे। सुव्रता मुख्य गणिनी आर्यिका के साथ ६२४०० अर्जिकाएँ थीं। पुरुषवर को आदि ले २ लाख श्रावक एवं चार लाख श्राविकाएँ थीं। इनका प्रमुख यक्ष किंपुरुष (किन्नर) और यक्षी मानसी (परिभृते) थी। दोनों प्रभु के दांये-बांये पार्श्वभाग रहते थे।

प्रथम इन्द्र ने ज्ञानकल्याणक महोत्सव पूजा की। एक हजार नामों से स्तवन किया। पुनः सभी ने अरिष्टसेन गणधर मुनिराज के माध्यम से प्रभु की देशना—धर्मोपदेश श्रवण किया। इन्द्र के निमित्त से भगवान ने समस्त आर्यखण्ड में यथार्थ तत्त्वोपदेश, श्रावक और यति धर्म स्वरूप प्रतिपादन कर अनेकों श्रावक-श्राविका, मुनि-आर्यिका बनाये, मोक्ष मार्ग पर लगाये। भव्यों का कल्याण करते हुए २५० हजार वर्ष तपः पूत जीवन बिताया।

योग निरोध—

१ महिना आयु शेष रहने पर आपने देशना–धर्मोपदेश बन्द कर दिया । श्री सम्मेद शिखर पर्वत की **सुदत्तवर कूट** पर कायोत्सर्गासन से प्रतिमायोग धारण कर आ विराजे । कुबेर ने समवशरण रचना का संकोच कर लिया ।

मोक्ष कल्याणक —

एकाग्रचित्त (उपचार मन) से प्रभु आत्म स्वरूप में लीन हो गये । परम शुद्धात्मा का ध्यान ही अब धर्मनाथ प्रभु का इष्ट कार्य था । एक मास काल समाप्त हुआ । ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्थी के दिन पुष्य नक्षत्र में रात्रि के अन्तिम पहर (उषाकाल) में ८०९ मुनिराजों के साथ अन्तिम शुक्ल ध्यान द्वारा सम्पूर्ण अघातिया कर्मों का जड़मूल से उच्छेद कर मोक्ष अवस्था प्राप्त की । उसी समय इन्द्रासन कम्पित हुआ । भगवान ने सिद्धलोक प्रयाण किया जानकर समस्त परिजन-पुरजन सहित आकर असंख्यातों देव-देवियों सहित परिनिर्वाण कल्याणक पूजा कर महा महोत्सव किया । रत्न दीपमाला जलायी । नाना प्रकार स्तुति स्तोत्रादि पढ़े । तदनन्तर श्रावक-श्राविकाओं ने भी महोत्सव किया ।

विशेष—

भगवान धर्मनाथ प्रभु के मोक्ष पधारने के बाद ३२ अनुबद्ध केवली हुए । श्रीमान् सुदर्शन बलभद्र, बलवान पुरुषसिंह नारायण और मधुक्रीड प्रतिनारायण हुए । नियमानुसार मधुक्रीड द्वारा चलाये चक्ररत्न को प्राप्त कर उसी चक्र से पुरुषसिंह ने उसे मारकर तीन खण्ड का राज्य लिया । नारायण राज्य भोगों में आसक्त हो मरण कर नरक में गया । प्रतिनारायण की भी यही दशा हुयी थी । बलभद्र सुदर्शन विरक्त हो दीक्षा धारण कर कर्मनाश मुक्त हुए ।

इन्हीं के समय मघवान नामक चक्रवर्ती हुआ । ६ खंड का शासन कर, त्याग कर दीक्षा ले तपश्चरण किया । कर्म काट कर मोक्ष पधारे ।

इन्हीं के काल में सनत्कुमार चौथा चक्रवर्ती हुआ। ये भी जिन-दीक्षा धारण कर परम पद मोक्ष को पधारे।

चिह्न वज्रदंड

प्रश्नावली—

१. श्री धर्मनाथ तीर्थङ्कर के समय की विशेषताएँ बतलाइये ?

२. इनका चिह्न, माता-पिता और जन्म नगरी का क्या नाम है ?

३. ये कौनसे नम्बर के भगवान हुए ?

४. इनका मोक्ष स्थान कहाँ है ? उसका नाम क्या है ?

५. इनका केवलज्ञान वृक्ष कौनसा है ? कहाँ सर्वज्ञ हुए ?

६. इनका शरीर किस रंग का था ?

७. आपके मन्दिर में कौन कौन भगवान है ?

८. इनके समवशरण में श्रावक-श्राविका कितने थे

९. मुख्य आर्यिका का नाम क्या है ?

१०. इनके कितने गणधर थे ? प्रथम का नाम बताओ ?

११. मोक्ष जाने को कितने कर्म नाश करना पड़ता है ?

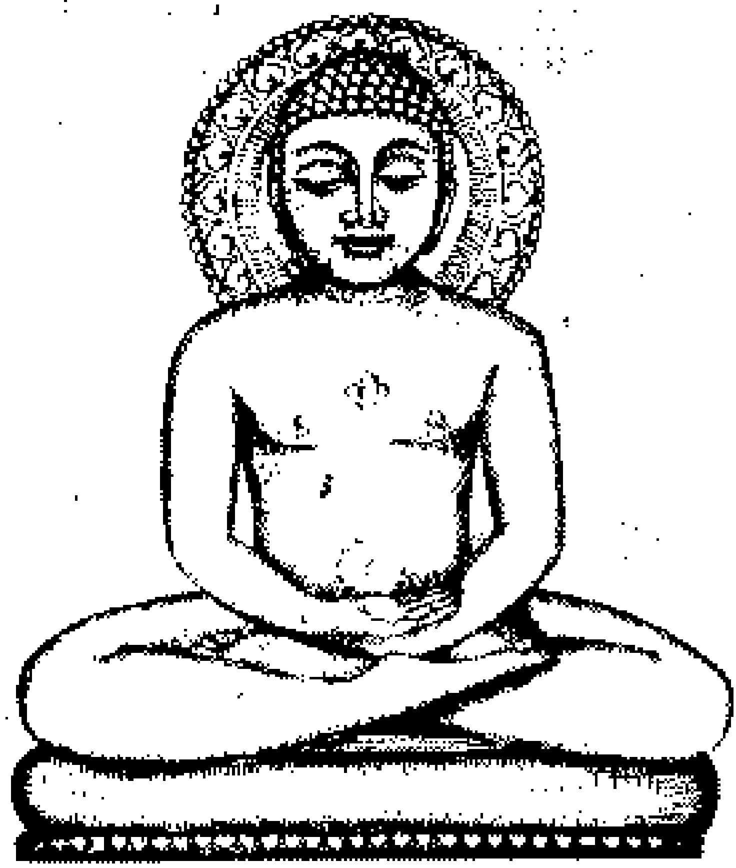

१६–१००८ श्री शान्तिनाथ जी

पूर्वभव—

स्वदोष शान्त्यावहितात्मशान्तिः शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम् ।
भूयाद् भवक्लेशभयोपशान्त्यै, शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ।।

समस्त द्वीप समुद्रों का केन्द्र-बिन्दु है जम्बूद्वीप । इसमें विदेह क्षेत्र है । इसकी पूर्वदिशा में पुष्कलावती देश है । इस देश में पुण्डरीकिनी नगरी है । इसका पालक राजा था घनरथ । उसकी महारानी का नाम था मनोहरा । इसके मेघरथ और दृढरथ दो पुत्र हुए । दोनों में अटूट प्रेम था । इनकी समस्त क्रियाएँ साथ-साथ होतीं । वे सूर्य-चन्द्रवत् सुन्दर और प्रतापी थे । पराक्रम, बुद्धि, विनय, क्षमादि गुणों से विभूषित थे ।

मेघरथ की प्रियमित्रा और मनोरमा पत्नियाँ थीं । दृढरथ का विवाह सुमति के साथ हुआ । मेघरथ को अवधिज्ञान था । महाराजा

घनरथ को उल्कापात से वैराग्य हो गया। मेघरथ राजा हुआ। न्याय से छोटे भाई के साथ प्रजा का रक्षण किया।

एक दिन धनरथ जिनेन्द्र मनोहर उद्यान में पधारे। मेघरथ महाराजा सूचना पा परिजन-पुरजन सहित महा वैभव के साथ जिन वन्दन को गये। उपासकाध्ययन का उपदेश सुना, चतुर्गति के दु:खों को सुनकर उनका हृदय कांप गया। वह संयम धारण करने का निश्चय कर घर आया। अपने छोटे भाई दृढरथ को बुलाकर राज्य देना चाहा। परन्तु उसने यह कहकर कि "जिस वस्तु को आप त्याग रहे हैं वह मुझे किस प्रकार सुखकर हो सकती है?" अस्वीकार कर दिया। फलत: उसने अपने पुत्र मेघसेन को राज्यार्पण कर भाई के साथ दीक्षा धारण की। घोर तप किया। षोडशकारण भावनाएँ भाकर तीर्थङ्कर गोत्र बंध किया। दोनों ही भाइयों ने उत्तम समाधि-मरण कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र पद पाया। वहाँ एक हाथ का शुभ्र शरीर था। ३३ पक्ष बाद श्वास लेते थे। ३३ हजार वर्ष अनन्तर मानसिक आहार लेते। शुक्ल लेश्या थी। निरन्तर तत्त्व चिन्तन करते थे (इनमें से मेघरथ का जीव दूसरे भव में शान्तिनाथ तीर्थङ्कर और दृढरथ उनका गणधर होकर मुक्ति प्राप्त करेंगे) इस समय अलौकिक सुख का अनुभव करने लगे।

गर्भावतरण—

हस्तिनागपुर प्राचीन काल से अपने वैभव, गौरव और महात्म्य से प्रसिद्ध रहा है। यह कुरुजांगल देश में है। उस समय इसका राजा विश्वसेन था। यह अत्यन्त शूरवीर और रणधीर था। इसकी पटरानी का नाम "ऐरा" था। संसार में यह अद्वितीय सुन्दरी थी। दोनों राज दम्पत्ति सुख से राजभोग करने लगे।

'ऐरा' महादेवी सुख निद्रा तज, उठीं। उन्हें महान् आश्चर्य हुआ, आंगन में अनेकों रत्नों की राशि देखकर। ये कहाँ से आये? "देवीजी आपके सौभाग्य से आकाश से बर्षे हैं।" परिचारिकाओं ने बड़े विनम्र भाव से कहा। उदारमना उस राजरानी ने आज्ञा प्रदान की कि "याचकों को इच्छानुसार वितरण करो" यह क्रम ६ माह तक चलता रहा। तीनों संध्याओं में करोड़ों रत्नों की वर्षा हो और उन्हें दान में दिया जाये तो भला कौन दरिद्री रहेगा? याचक ही नहीं रहे। देवियाँ आ-

आ कर रानी का मनोरंजन कराने में लगी थीं। सेवा में तत्पर रहतीं। नाना प्रकार शुभ शकुन हुए। इन सभी कारणों से महाराजा विश्वसेन को निश्चय हो गया कि मेरे घर पूज्य 'तीर्थंकर' का जन्म होगा। बड़े आनन्द से उनका समय व्यतीत होने लगा।

भाद्रपद कृष्णा सप्तमी के दिन भरणी नक्षत्र में रात्रि के पिछले समय महारानी 'ऐरा' ने पूज्य होने वाले पुत्र के द्योतक १६ स्वप्न देखे। मुंह में प्रवेश करता हुआ सुन्दर हाथी देखा। वह मेघरथ का जीव अहमिन्द्र उसी क्षण मुख से गर्भ में अवतरित हुआ। प्रातः होते ही ऐरा देवी ने पतिदेव से स्वप्नों का फल पूछा। "तुम्हारे शुद्ध-पवित्र गर्भ में तीर्थङ्कर ने प्रवेश किया है" यह स्वप्नों का फल सुनकर वचनातीत हर्ष प्राप्त किया। रुचकवासिनी देवियों ने पहले से ही गर्भ-स्थान को सुगंधित पुनीत स्वर्गीय पदार्थों से सुवासित कर दिया था। बालक को किसी प्रकार कष्ट न हो और माँ को भी गर्भजन्य पीड़ा न हो इस प्रकार वह बालक गर्भ में बढ़ने लगा।

उसी दिन सौधर्मेन्द्र सपरिवार आया। गर्भ-कल्याणक महोत्सव मनाया माता-पिता की नाना प्रकार के सुन्दर वस्त्रालंकारों से पूजा की। माँ को किसी प्रकार कष्ट न हो, यह आदेश दे, देवियों को सेवा रत कर, अपने स्थान पर चला गया।

जन्म कल्याणक—

धीरे-धीरे गर्भ के नौ मास पूर्ण हो गये। माता के रूप सौन्दर्य के साथ बुद्धि, शीलादि गुण भी चर्म सीमा पर जा पहुँचे। ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी के दिन भरणी नक्षत्र में प्रातःकाल की शुभ बेला में ऐरा महादेवी को जगद्गुरु की माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। चारों ओर बालक की रूप राशि से प्रकाश छा गया। तीनों लोकों में आनन्द छा गया। कम्पित आसन से इन्द्रों ने प्रभु के जन्म को ज्ञात किया और उत्सव मनाने आ पहुँचे। नगरी की तीन परिक्रमा कीं। इन्द्राणी स्वयं प्रसूतिगृह में जाकर सद्योजात बालक को लायी और इन्द्रराज हजार नेत्र बनाने पर भी अतृप्त रहा, सुमेरु पर्वत पर लाया। पाण्डुक वनस्थ पाण्डुक शिला के मध्य सिंहासन पर पूर्वाभिमुख विराजमान किया। प्रथम ही सौधर्म और ईशान इन्द्रों ने क्षीरोदक से भरे १००८ सुवर्ण

कलशों से जन्माभिषेक किया। पुनः समस्त देव-देवियों ने भी किया। गंधोदक लगाया। इन्द्राणी ने गंध लेपन किया। आरती उतारी। सुगंधित द्रव्यों से अभिषेक कर कोमल वस्त्र से शरीर पोंछा। **कञ्चन** वर्ण भगवान, स्फटिक मणि का सिंहासन भी सुवर्ण वर्ण दीखने लगा। शचि देवी ने नाना प्रकार रत्न जड़ित आभूषण पहिनाये, वस्त्र धारण कराये। नृत्य गीतादि सहित वापिस आकर माता-पिता की गोद में बालक को देकर "आनन्द" नाटक किया। नाम '**शान्तिनाथ**' घोषित किया। **हिरण का चिह्न** भी निर्धारित किया। हाथ के अंगूठे में अमृत स्थापित किया। देवों को बालक बन प्रभु के साथ क्रीडा करने का आदेश दे अपने स्थान पर गया। द्वितीया के मयंक वत् अद्भुत बाल भी बढ़ता हुआ विहंसने लगा।

भगवान धर्मनाथ के बाद पौन पल्य कम तीन सागर बीत जाने पर आप हुए। इनकी आयु भी इसी में सम्मिलित है। इनकी आयु १ लाख वर्ष थी। शरीर उत्सेध ४० धनुष, कान्ति सुवर्ण समान और १००८ लक्षण थे। क्रमशः रूप राशि के गुणों की वृद्धि होने से यौवन का आगमन हुआ।

विश्वसेन महाराजा की दूसरी पत्नी यशस्वती से दृढरथ का जीव अहमिन्द्र लोक से च्युत हो चक्रायुध नाम का पुत्र हुआ। दोनों ही पुत्र कुल, वय, रूप लावण्य शीलादि से शोभायमान थे। अतः विश्वसेन महाराजा ने तदनुरूप अनेकों कुलीन कन्याओं के साथ इनका विवाह किया। अपनी अपनी देवियों के साथ विविध प्रकार क्रीडाएँ, भोग-विलासों के साथ उनका काल व्यतीत होने लगा। इस प्रकार शान्तिनाथ कुमार के २५००० वर्ष बीत गये। तब विश्वसेन महाराजा ने उनका राज्याभिषेक इन्द्र की सहायता से किया। अर्थात् स्वयं इन्द्र भी पधारा। विश्वसेन स्वयं दीक्षा धारण कर वन चले गये।

अपने सौतेले भाई चक्रायुध के साथ शान्तिनाथ बड़ी निपुणता से राज्य संचालन करने लगे।

राज्यकाल और चक्रवर्तित्व—दिग्विजय—

इनके जन्म के पूर्व चौथाई पल्य तक धर्म का विच्छेद रहा था। तीर्थङ्कर का रूप लावण्य अप्रतिम होता ही है, फिर ये १२ वें कामदेव

भी थे। अतः जिस प्रकार सौन्दर्य था उसी प्रकार अनेक गुण समूह भी थे। प्रजा है या संतान यह भेद ही नहीं था। प्राणी मात्र पर वात्सल्य था। कुछ ही दिनों बाद उनकी आयुध शाला में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। इसके साथ ही छत्र, तलवार और दण्ड रत्न भी आयुध शाला में ही उत्पन्न हुए। काकणी चर्म और चूडामणि रत्न श्रीगृह में प्रकट हुए। पुरोहित, स्थपति, गृहपति, सेनापति हस्तिनापुर में ही मिले थे तथा कन्या (पट्टरानी), हाथी और घोड़ा रत्न विजयार्द्ध पर्वत पर प्राप्त हुए। इन १४ रत्नों के भोक्ता हुए। इसी समय नौ निधियाँ इन्द्र ने प्रदान कीं। असंख्य सेना के साथ वे दिग्विजय को निकले। उनके प्रताप से छहों खण्डों के राजा स्वयं ही भेंट ले ले कर आये और उनकी आज्ञा रूपी माला को शिरोधार्य किया। इस प्रकार भरत क्षेत्र के ६ खण्डों के आधिपत्य को भोगते हुए उनके ५०००० (पचास हजार) वर्ष व्यतीत हुए। दशाङ्ग भोगों में जाता काल पता ही नहीं चला।

वैराग्य—

चक्रवर्ती महाराजा अपनी अलंकार शाला में प्रविष्ट हुए। वे भोगों में आपाद मस्तक डूबे थे। मेरा वास्तविक हित क्या है? यह विचार ही नहीं था। उसी समय उन्होंने दर्पण में अपना मुख देखा, उस समय दो मुख दिखायी दिये। वे चौंके, ये दो प्रतिबिम्ब क्या सूचना दे रहे हैं? यह प्रश्न उठा और आत्मबोध जाग्रत हो गया। बस, वे विचारने लगे, "यह शरीर छाया सदृश है, लक्ष्मी ओस बिन्दु वत् है, ये सम्पदाएँ विद्युत के समान चंचल हैं, भोग रोग के कारण हैं, संयोग के साथ वियोग जुड़ा है, जन्म के साथ मरण चिपका है।" अब मुझे जन्म का ही नाश करना है। यह कार्य भोगों में नहीं त्याग में होगा। संयम धारण कर तप से कर्मों को खिपाऊँगा।" इन विचारों के समय ही शीघ्र लौकान्तिक देव आ गये, और कहने लगे, "भगवन् आप धन्य हैं आपका विचार उत्तमोत्तम है, विच्छिन्न धर्म को बढ़ाने का यह समय है, आप द्वारा ही यह कार्य संभव है।" इस प्रकार अनुमोदन से महान् पुण्योपार्जन कर वे अपने स्थान को चले गये। तदनन्तर सिंहनादादि चिह्नों से ज्ञात कर इन्द्र देव, देवियाँ सपरिवार आये। इन्द्र ने शचि सहित प्रथम प्रभु का दीक्षाभिषेक किया। इन्द्राणी द्वारा लाये गये वस्त्रालंकारों से अलंकृत किया।

परिनिष्क्रमण-दीक्षा कल्याणक —

श्री प्रभु ने षट् खण्ड पृथ्वी को तृणवत् अपने पुत्र नारायण को समर्पित की। राज्यभार देकर भाई-बन्धु, परिवार से यथायोग्य युक्ति युक्त वचनों से विदा ली। इन्द्र ने 'सर्वार्थ सिद्धि' नामक पालकी में विराजने की प्रार्थना की। सात पैंड मानवों द्वारा पालकी उठाने के बाद, इन्द्र देवगण आकाश मार्ग से ले गये। सहस्राम्र वन में उत्तराभिमुख पल्यंकासन से विराजमान हुए। आपके तेज से शिला भी कान्तिमान हो गई। ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थी के दिन सायंकाल भरणी नक्षत्र में तेला का नियम लेकर साक्षात् ध्यान के समान विराजमान हुए। इन्द्र ने दीक्षा कल्याणक पूजा की। भक्ति से बार-बार नमस्कार कर अपने स्थान पर चला गया।

भगवान ने सिद्धों को नमस्कार कर स्वयं दीक्षा धारण की। पञ्चमुष्टी लौंच किया। इन्द्र उन परम पवित्र केशों को रत्न पिटारी में रखकर ले गया और क्षीर सागर के जल में क्षेपण कर महा-पुण्यार्जन किया।

दीक्षा ग्रहण के साथ ही उन्हें चतुर्थ मन: पर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया। भगवान के साथ चक्रायुध आदि एक हजार राजाओं ने संयम धारण किया। हमें भी ऐसा अवसर मिले, हम भी संयम धारण करें इस प्रकार की भावना देव इन्द्र भाने लगे। अपनी-अपनी भक्ति अनुसार सभी ने पुण्यरूपी सौदा खरीदा।

पारणा-आहार—

वज्रवृषभ नाराच था, तो भी औपचारिक रूप से शरीर की स्थिति का कारण आहार लेना चाहिए, इस भाव से प्रभु तेला पूर्ण कर चर्या के लिए पवित्र मन्दरपुर में पधारे। वहाँ राजा सुमित्र ने अपनी पतिव्रता, षट्कर्म परायण पत्नि के साथ सप्तगुण सहित नवधा भक्ति पूर्वक उन्हें प्रासुक क्षीरान्न से पारणा कराया अर्थात् आहार दिया देवों ने पञ्चाश्चर्य किये। इस प्रकार तपश्चरण करते हुए प्रभु कर्मों की धूल उड़ाने लगे।

छद्मस्थ काल—

आत्मा का स्वरूप है ज्ञान। लक्षण है उपयोग। उपयोग स्थिर कर स्वरूप को प्राप्त करने के सफल प्रयत्न में मुनिश्वर शान्तिनाथ ने

१६ वर्ष व्यतीत किये। इस काल में अखण्ड मौन से, इन्द्रियों का दमन और कषायों का शमन किया। नाना प्रकार योग साधना द्वारा तीनों प्रकार के (द्रव्य, भाव, नो कर्म) कर्मों का नाश करने लगे।

केवलोत्पत्ति, ज्ञान कल्याणक—

सोलह वर्ष की कठिन साधना का फल प्राप्त होने को था कि मुनिनाथ सर्वश्रेष्ठ सहस्राम्र वन में पधार तेला का नियम कर नंद्यावर्त नाम के वृक्ष तले आ विराजे। उस समय वे पूर्वाभिमुख थे। तीनों करणों (परिणाम) अध: करण, अनिवृत्ति करण और अपूर्व करणों के साथ क्षपक श्रेणी पर आरोहण किया। धर्मध्यान की काष्ठा और शुक्ल ध्यान के प्रथम भाग के सहारे सूक्ष्म साम्पराय रूपी चौथे चारित्र रथ पर सवार हुए और मोह रूपी शत्रु का संहार किया। द्वितीय शुक्ल ध्यान से शेष समस्त घातिया कर्मों का विनाश किया। पौष शुक्ला दशमी के दिन शाम के समय केवलज्ञान रूपी शान्त साम्राज्य लक्ष्मी प्राप्त की। उसी समय तीर्थङ्कर कर्म रूपी महावायु चारों प्रकार के देवों के समुदाय रूप सागर को क्षुभित करता हुआ व्याप्त हो गया। उत्तम भक्ति रूपी तरंगों से सब लोग पूजन सामग्री लाये, रत्न समूहों के पर्वत बन गये, स्वामी शान्तिनाथ की पूजा की। नानाविध स्तुति की।

इन्द्र ने तत्क्षण कुबेर को आज्ञा दे ४।। योजन अर्थात् १८ कोस लम्बा-चौड़ा गोलाकार समवशरण मण्डप तैयार कराया। अष्टभूमियों से वेष्टित कर मध्य में गंधकुटी की उत्तम रचना की। मध्य में रत्न जटित सुवर्ण सिंहासन पर अंतरिक्ष त्रैलोक्याधिपति भगवान विराजमान हुए। छत्र त्रय त्रयलोकनाथ का वैभव विख्यात कर रहे थे। चारों ओर १२ कोठों में यथा योग्य मुनि देव, आर्यिकाएँ, श्रावक, श्राविकाएँ एवं तिर्यञ्च विराजे और धर्मामृत पान कर नाना विध व्रत, नियम, यम धारण कर मोक्ष मार्ग पर आरूढ़ हुए।

जिनेश्वर प्रभु ने २४९८४ वर्ष पर्यन्त आर्य भूमि को दिव्यध्वनि रूपी वचनामृत से अभिसिंचित किया। इनके समवशरण में चक्रायुध प्रमुख गणधर के साथ साथ ३६ गणधर थे, ८०० अंग-पूर्वधारी, श्रुत-केवली, ४१८०० पाठक-उपाध्याय, ३००० अवधिज्ञानी, ४००० केवली, ६००० विक्रियार्द्धिधारी, ४००० मन: पर्ययज्ञानी, २४०० पुज्यवादी थे। इस प्रकार सब मिला कर ६२००० मुनिराज थे। इनके सिवाय हरिषेणा आदि ६०३०० अर्जिकाएँ थीं। सुरकीर्ति आदि दो लाख

श्रावक और अर्हद्दासी आदि ४ लाख श्राविकाएँ थीं। असंख्यात देव, देवियाँ और संख्याते तिर्यञ्च भव्य जीव थे। सबको धर्मामृत पान कराते। इनका यक्ष गरुड़ और यक्षी महामानसी थी।

योग निरोध —

आयु का १ माह शेष रहने पर आप उपदेश बन्द कर श्री सम्मेद शिखर पर्वत की **कुन्दप्रभा** कूट पर आ विराजे। तीसरे शुक्ल ध्यान से योग निरोध किया।

मोक्ष प्राप्ति और मोक्ष कल्याणक—

अ इ उ ऋ लृ इन लघु अक्षरों के उच्चारण में जितना काल लगता है, उतने समय में चौथे शुक्ल ध्यान से तीनों प्रकार कर्मों का अशेष नाश कर सिद्धावस्था प्राप्त की। इस प्रकार ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी के दिन भगवान ने मुक्ति प्राप्त की। उसी समय इन्द्र और इन्द्राणी, देव देवियाँ आये और श्री प्रभु की मोक्ष कल्याणक महोत्सव पूजा विधान कर अपने को धन्य माना। अग्नि कुमार देवों ने मुकुट रत्नों की किरणों से अग्नि प्रज्वलित कर संस्कार किया। चक्रायुध आदि ६००० नौ हजार मुनिराजों ने भी सह मुक्ति प्राप्त की। सायंकाल भरणी नक्षत्र में मुक्त हुए।

प्रथम श्रीषेण राजा, २ उत्तम भोग भूमि में आर्य, ३ देव, ४ विद्याधर, ५ देव, ६ हलधर ७ अहमिन्द्र, ८ राजा मेघरथ, ९ सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र १० शान्तिनाथ तीर्थङ्कर हुए।

आदिनाथ स्वामी के बाद धर्मनाथ स्वामी तक मोक्ष मार्ग बीच-बीच में विच्छिन्न हो जाने से फिर से प्रकट किया परन्तु श्री शान्तिनाथ भगवान ने जो मुक्ति मार्ग प्रकट किया वह आज तक अविच्छिन्न रूप से चला आ रहा है। इस अपेक्षा आद्य गुरु श्री शान्तिनाथ स्वामी हैं।

चिह्न हिरण

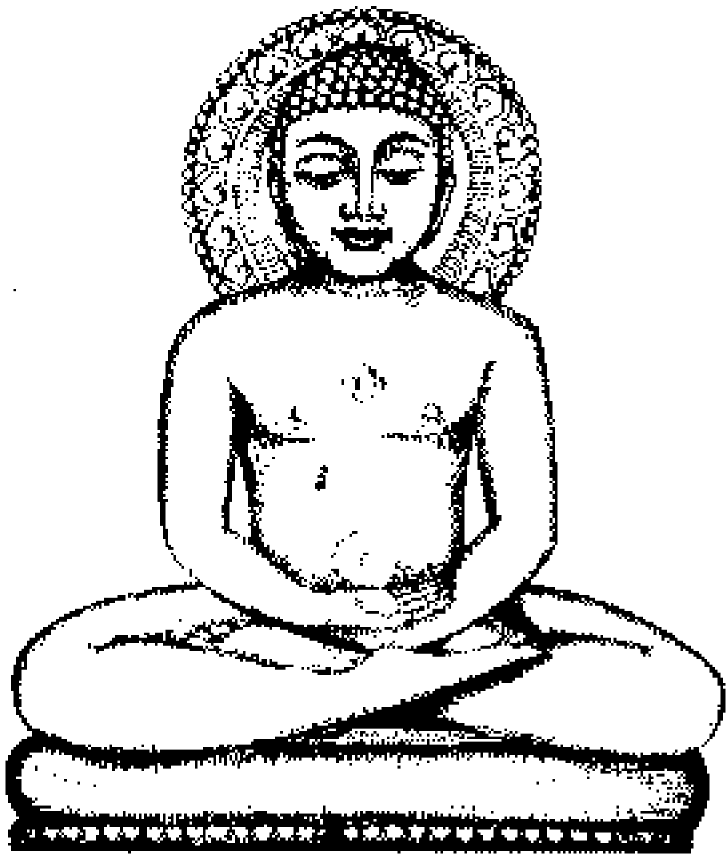

१७–१००८ श्री कुन्थुनाथ जी

पूर्वभव परिचय—

अरे ! यह क्या ? उल्कापात । हाँ सत्य है, यह समस्त संसार भी इसी प्रकार क्षण भंगी है । क्या शरीर की यही दशा नहीं ? बाल से कुमार और कुमार से क्रमशः यौवन, वृद्धत्व और नाश मरण, यही चक्र तो घूमता है अनादि से । आत्मा क्या है वह अजर-अमर है किन्तु क्षणिक पदार्थों को अपना मान दुःखी होता रहा है, यह मेरा भयंकर मोह है, अज्ञान है, अपराध है । इस प्रकार सोचते-सोचते महाराजा सिंहरथ अधीर हो गया । पुनः विचारता है यह विदेह क्षेत्र, सीता नदी के दक्षिण तट पर स्थित वत्स देश, सुसीमा नगरी, मेरा राज्य क्या सदा रहेगा ? मैंने समस्त राजाओं को पराजित कर भगाया, पर यह विभूति, राज-पाट स्थिर रह सकेगा ? नहीं । वह थर-थर कांपने लगा । यह मोह भयंकर तिमिर है । मैं सिंह समान पराक्रमी मेरे प्रताप से नाम मात्र सुनकर बड़े-बड़े राजा महाराजा मेरी शरण में आ जाते हैं, पर

क्या यह मेरा यथार्थ पराक्रम है ? अब मुझे सच्चा पुरुषार्थ करना चाहिए । बस, अपने पुत्र को राज्यभार समर्पण कर "यतिवृषभ" मुनिराज के शरण सान्निध्य में दीक्षा धारण कर ज्ञान, ध्यान, तपोलीन हो गये ।

मुनिराज सिंहरथ ने ११ अङ्गों का अध्ययन किया । १६ कारण भावनाएँ भायीं और सर्वोत्तम पुण्य का फल रूप तीर्थङ्कर गोत्र बंध किया । अन्त में समाधि सिद्ध कर सर्वार्थसिद्धि विमान में ३३ सागर की आयु और १ अरत्नि प्रमाण शुभ्र शरीर वाले अहमिन्द्र हुए । ३३ पक्ष बाद उच्छ्वास और ३३ हजार वर्ष के पीछे मानसिक आहार था । निरन्तर तत्त्वचिन्तन में लीन रहते थे ।

गर्भावतरण—गर्भ-कल्याणक महोत्सव—

कुरुजांगल देश में विशेष रूप से अहिंसा और दया की स्रोतस्विनी वेग से बहने लगी । जन-जन के हृदय से कालुष्य धुलने लगा, कृपा का उपवन लहलहाने लगा । कुरुवंशी, काश्यप गोत्र शिरोमणि गजपुर (हस्तिनागपुर) के राजा सूरसेन का राज्य दया का जीवन्त मूर्तमान रूप था । उनकी पटरानी 'श्रीकान्ता' तो सतत सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान करती । प्राणीमात्र को जिनवर समान समझती थी ।

अकस्मात् एक दिन उस महाराजा के आंगन में आकाश से रत्न-वृष्टि हुयी । १२।। करोड़ अनुपम रत्नधारा गिरी । यह क्रम प्रतिदिन तीनों संध्याओं में होता रहा । न केवल राजा-रानी अपितु समस्त प्रजा किसी विशेष अभ्युदय की आशा से संतुष्ट हो गई । उपर्युक्त अहमिन्द्र की आयु समाप्त हुयी और यहाँ रत्नवृष्टि के ६ महीने पूर्ण हुए ।

रिम-झिम वर्षा, कृष्ण पक्ष, रात्रि का समय, महारानी श्रीकान्ता श्री, ह्री, धृति, कीर्ति आदि देवियों से सेवित सुख निन्द्रा में मग्न थी । रुचकगिरि वासिनी देवियों ने उसके गर्भाशय को दिव्य सुगंधित द्रव्यों से सुवासित कर दिया था । भादों कृष्णा दशमी, कृत्तिका नक्षत्र में महादेवी ने अद्भुत १६ स्वप्न देखे और प्रातः आनन्द से झूमती महा-राजा के समीप जाकर विनम्रता से उन स्वप्नों का फल भावी तीर्थङ्कर बालक होना ज्ञात कर उभय दम्पत्ति परमानन्दित हुए । उसी समय इन्द्रादि देव-देवियों ने आकर माता-पिता (राजा-रानी) की वस्त्रा-

लंकारों से अनेक प्रकार पूजा-सत्कार किया, उत्सव किया। गर्भकल्याणक सम्बन्धी विधि-विधान कर अपने-अपने स्थान चले गये।

जन्म कल्याणक—

सीप मुक्ता को धारण कर और मेघमाला चन्द्र को गोद में लेकर जिस प्रकार शोभित होती है, उसी प्रकार माता श्रीकान्ता गर्भधारण कर अपूर्व लावण्य, आश्चर्य चकित करने वाली बुद्धि से मण्डित हुयीं। जैसा जीव गर्भ में आता है माँ को उसी प्रकार के दोहले हुआ करते हैं। अत: श्रीकान्ता भी सब पर मेरा शासन हो, कोई दुःखी न हो, सर्वत्र धर्म का साम्राज्य हो इत्यादि भावों से युक्त थीं। धीरे-धीरे नवमास पूर्ण हुए। जिसकी सेवा में अनेकों देवियाँ अपना स्वर्गीय वैभव त्याग कर तत्पर हैं उसकी महिमा और सुख का क्या कहना है ?

जिस प्रकार पश्चिम दिशा चन्द्र को उदय करती है उसी प्रकार जगन्माता श्रीकान्ता ने वैशाख शुक्ला पड़वा के दिन कृतिका नक्षत्र में जगत्राता पुत्र-रत्न को उत्पन्न किया, परन्तु उसे तनिक भी प्रसव पीड़ा नहीं हुयी अपितु परम शान्ति और संतोष हुआ।

घंटा नाद आदि चिह्नों से तीर्थङ्कर प्रभु का जन्म हुआ ज्ञात कर चतुर्णिकाय के इन्द्र, देव-देवियाँ आये। सौधर्मेन्द्र की शची देवी प्रसूति-गृह में गई। मायामयी बालक सुलाकर अद्भुत तेज पुञ्ज स्वरूप बालक को लाकर इन्द्र की गोद में शोभित किया। हजार नेत्रों से निरख कर भी अतृप्त इन्द्र सद्योजात बालक को ऐरावत हाथी पर विराजमान कर पाण्डुक शिला पर ले गया। १००८ कलशों में क्षीर सागर का हाथोंहाथ जल लाकर अभिषेक किया। पुन: अन्य देवि-देवों ने जन्माभिषेक किया। इन्द्राणी ने अनेकों औषधियों के कल्क का अभिषेक किया। गंधाभिषेक, चन्दनानुलेपन किया। आरती उतारी। कोमल वस्त्र से अङ्ग पोंछा। वस्त्रालंकार धारण कराये। तिलक और अञ्जन लगाया। लवणावतरण किया।

नानाविध जय जयकार, अनेक वाद्यघोषों के साथ देव देवांगनाएँ इन्द्र के साथ वापिस आयीं। बालक को "**कुन्थुनाथ**" नाम से प्रख्यात किया। और चिह्न "**बकरा**" निर्धारित किया। आनन्द नाटक प्रदर्शित कर बालरूप धारी देवों को छोड़कर सब अपने अपने स्थान

पर गये। बालक बढ़ने लगा। बढ़ने ही क्या लगा राजा प्रजा आदि सबका हर्ष बढ़ाने लगा। माँ को कितना आनन्द होगा ? कौन बताये ?

कुमार काल —

श्री शान्तिनाथ स्वामी के बाद आधा पल्य बीत जाने पर पुण्य-धाम श्री कुन्थुनाथ जी का जन्म हुआ। इनकी आयु इसी में सम्मिलित है। इनका आयु काल ९५००० (पिचानवे हजार) वर्ष था, पैंतीस धनुष ऊँचा शरीर था, शरीर कान्ति **सुवर्ण** वर्ण की थी। २३७५० वर्ष कुमार काल में समाप्त हो गये।

राज्य प्राप्ति और चक्रवर्तित्व—

तेइस हजार सातसौ पचास वर्ष कुमार काल जाने पर पिता सूरसेन महाराजा ने इन्द्र के साथ मिलकर इनका राज्याभिषेक किया। कुछ दिन राज्य करने पर शान्तिनाथ स्वामी के समान ही इनकी आयुधशाला में 'चक्ररत्न' उत्पन्न हुआ। १४ रत्नों और नव निधियों का आधिपत्य प्राप्त कर समस्त भरत खण्ड के अधिराजा हुए। अर्थात् छहों खण्डों को जीत कर चक्रवर्ती कहलाए। तीर्थङ्कर पद तो है ही, चक्रवर्ती और कामदेव पद भी प्राप्त था। तीनों पदों से उसी भाँति शोभित थे जैसे रत्नत्रय तेज से मुनि पुंगव शोभित होते हैं। पूर्ण शान्ति और न्याय प्रियता के कारण ९६ हजार रानियों के साथ भोगोपभोग करते हुए इनका २३७५० वर्ष काल पलक झपक की भाँति बीत गया। इनके राज्य में धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थों का समान रूप से सब प्रजा भोग करती थी अन्त में मोक्ष पुरुषार्थ साधना का लक्ष्य बना कर भोग भोगते थे। निरंतर १० तरह के भोगों में इनका समय जा रहा था।

वैराग्य—

किसी एक दिन वे अपनी ६ प्रकार की सेना के साथ वन विहार को गये। वहाँ अनेक प्रकार क्रीड़ा की। वापिस आते समय एक मुनिराज को आतापनयोग धारण किये विराजमान देखा। तर्जनी ऊँगली के संकेत से मन्त्री को दिखाया। क्योंकि तीर्थङ्कर सिद्धों के सिवाय अन्य किसी को नमस्कार नहीं करते। मन्त्री ने भक्ति से मस्तक झुका कर उन्हें नमस्कार किया। एवं राजा से इस कठोर साधना का

फल पूछा। उन्होंने स्वर्ग मोक्ष की प्राप्ति और संसार दुःखों का नाश फल बतलाया। स्वयं भी वैराग्य भाव से युक्त हुए। मैं तीर्थङ्कर पदाधिकारी होकर भी इन भोगों में पड़ा हूँ, क्या उचित है? इस प्रकार चिंतवन करने लगे। अब आत्म साधना करना चाहिए, यह दृढ़ निश्चय किया। उसी समय लौकान्तिक देव आये और वैराग्य भावों की अनुमोदना कर अपने स्थान को चले गये। भगवान कुन्थुनाथ का माण्डलिक राजा का जितना काल था उतना ही चक्रवर्तित्व काल है। इन्हें पूर्वभव का स्मरण होने से वैराग्य उत्पन्न हुआ।

निष्क्रमण कल्याणक—

महाराजा कुन्थुनाथ ने अपने योग्य पुत्र को राज्यभार अर्पण किया। उसी समय इन्द्र, देव देवियों के समूह के साथ आया। प्रथम दीक्षाभिषेक किया। वस्त्रालंकारों से सुसज्जित किया। तथा 'विजया' नामक पालकी में आरूढ़ होने की प्रार्थना की। भगवान पल्यंकी में आसीन हुए अनुक्रम से मनुष्यों ने पालकी ढोयी पुनः देवगण आकाश मार्ग से सहेतुक वन में जा पहुँचे।

रत्नचूर्ण से चर्चित शिला पर विराजमान हो "नमः सिद्धेभ्यः" के साथ उभय परिग्रह का सर्वथा त्याग कर पूर्ण निर्ग्रन्थ हो गये। पंचमुष्ठी लौंच किया सायंकाल दीक्षा ली। तेला का व्रत धारण कर ध्यानारूढ़ हुए। उसी समय चतुर्थ मनः पर्यय ज्ञान प्रकट हो गया। आपके साथ एक हजार राजाओं ने दीक्षा धारण की। इन्द्र ने दीक्षाकल्याणक महोत्सव मनाया। प्रभु असंख्यात गुण श्रेणी कर्म निर्जरा करने लगे।

पारणा—

३ दिन पूर्ण हुए। पारणा के निमित्त मुनि श्रेष्ठ ने वन से प्रयाण किया। नातिमन्द ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक वे चलते हुए हस्तिनागपुर नगरी में पधारे। राजा धर्ममित्र ने पुण्य वृद्धि करते हुए सात गुणों सहित परम विनय से पडगाहन किया। नवधा भक्ति से आहार दान दिया। पञ्चाश्चर्य हुए। भगवान आहार लेकर पुनः मौन से कठोर साधना में तल्लीन हो गये।

छद्मस्थकाल —

कठिन तप: साधना, नाना प्रकार योग साधना करते हुए उन्होंने १६ वर्ष व्यतीत किये। पुन: वे विहार करते हुए उसी सहेतुक दीक्षा वन में पधारे। वहाँ ध्यानारूढ़ हो गये।

केवलोत्पत्ति और केवलज्ञान कल्याणक —

तीन दिन का उपवास (तेला) का नियम लेकर तिलक वृक्ष के नीचे वे भगवान एकाग्र हो तीन करणों के द्वारा क्रमश: क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हुए। ध्यानानल से मोहनीय कर्म को ध्वस्त कर द्वितीय शुक्ल-ध्यान से शेष तीनों घातिया कर्मों का सर्वथा नाश कर परम शुद्ध दशा प्राप्त की। शरीर भी परम-औदारिक रूप हो गया। कदली वृक्ष की नवीन कोंपल की भांति रंग हो गया। सभी केवलियों का यही रंग हो जाता है। चैत्र शुक्ला तृतीया के दिन कृत्तिका नक्षत्र में संध्या के समय केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। उसी समय देवेन्द्र ने देव देवियों सहित आ केवलज्ञान कल्याणक महोत्सव पूजा की। कुबेर ने समवशरण रचा।

समवशरण —

यह गोलाकार ४ योजन विस्तार में व्याप्त कर रचना की। ८ भूमि के मध्य गंधकुटी रची। तीन कटनियों के ऊपर कञ्चन का सिंहासन रत्न जड़ित रचा। उस पर अधर भगवान विराजे। १६ कोस का सभा मण्डप १२ सभाओं से वेष्टित हुआ।

उनके समवशरण में ४००० केवली, ८०० पूर्वधारी, ४१८०० शिक्षक-पाठक, ४००० मन:पर्ययज्ञानी, ६००० विक्रियार्द्धिधारी, ३००० अवधिज्ञानी एवं २००० वादी थे। स्वयंभू को आदि लेकर ३५ गणधर हुए। इस प्रकार सर्व ६०००० मुनिराज थे। भाव श्री (भाविता) आदि ६०३५० आर्यिकाएँ थीं। दत्त नाम के प्रमुख श्रोता को लेकर १ लाख श्रावक और ३ लाख श्राविकाएँ थीं। गंधर्व यक्ष और जया (गांधारी) यक्षी थी। चारों काल (संध्याओं) में श्री प्रभु की दिव्य-ध्वनि खिरती थी। सभी धर्मोपदेश श्रवण कर अनेक व्रत धारण कर मोक्षमार्ग पर आरूढ़ हो आत्म साधना करने लगे। समस्त तपकाल २३७५० वर्ष था।

योग निरोध – समस्त आर्य-खण्ड में धर्म देशना प्रचार कर आयु का १ मास शेष रहने पर उन्होंने योग निरोध किया । देशना बन्द हो गई । समवशरण भी क्यों रहता । भगवान श्री सम्मेद शिखर पर्वत को **'ज्ञानधर'** कूट पर आ विराजे । यहाँ प्रतिमायोग धारण कर शेष अघातिया कर्मों को भी चूर-चूर किया । तीसरे शुक्ल ध्यान का आश्रय लिया । चौदहवें गुण स्थान में अ इ उ ऋ लृ पञ्च लघ्वक्षर उच्चारण मात्र काल पर्यन्त रहकर चतुर्थ शुक्ल ध्यान के आश्रय से मुक्त हुए । इस कूट के दर्शन मात्र से १ कोटि उपवास का फल होता है ।

मोक्षकल्याणक महोत्सव—

वैशाख शुक्ला प्रतिपदा के दिन कृतिका नक्षत्र में रात्रि के पूर्व भाग में मुक्तिधाम में जा विराजे । आपके साथ-साथ १००० मुनिराजों ने सिद्ध पद प्राप्त किया । उसी समय चतुर्णिकाय देवगण स्व-परिवार सहित आये, अग्नि कुमार जाति के देवों ने अपने मुकुट से अग्नि उत्पन्न कर अग्नि संस्कार अंतिम क्रिया की । इन्द्र ने अष्ट प्रकार दिव्य द्रव्यों से निर्वाण कल्याणक पूजा की एवं नाना रत्नों के दीपों से उत्सव मनाया । पूजा-विधान कर अपने-अपने स्थान चले गये ।

विशेष—

भगवान कुन्थुनाथ स्वामी ३ पदों के धारी थे । १. तीर्थङ्कर २. चक्रवर्ती और ३. कामदेव इनका चिह्न बकरा का है ।

चिह्न बकरा

प्रश्नावली—

१. कुन्थुनाथ कितने पदों से विभूषित थे ?
२. तीर्थङ्कर मुनि-महाराज को नमस्कार करते हैं या नहीं ?
३. इनकी कितनी रानियाँ थीं ?
४. चक्र-रत्न की उत्पत्ति कहाँ होती है ?
५. चक्रवर्ती के कितने रत्न होते हैं ?
६. इनका चिह्न क्या है ?
७. इनका तपकाल कितने वर्ष है ?
८. जन्म तिथि और केवलज्ञान तिथि बताओ ?
९. किस कूट से मुक्त हुए ?

तीर्थङ्कर वासुपूज्य भगवान से सम्बन्धित प्रश्न—

१. श्री वासुपूज्य स्वामी के काल में कौन-कौन महापुरुष हुए ?
२. इनका चिह्न क्या था ? राज्य किया या नहीं ?
३. इनके जन्मस्थान और माता-पिता का नाम लिखो ?
४. इनका मोक्षस्थान और मुक्ति आसन का नाम बताइये ?
५. मोक्ष तिथि क्या है ? आप मन्दार गिरि गये या नहीं ?
६. चम्पापुरी की महिमा क्या है ?
७. वासुपूज्य स्वामी का चिह्न और माता-पिता का नाम बताओ ?

तीर्थङ्कर शान्तिनाथ भगवान से सम्बन्धित प्रश्न —

१. शान्तिनाथ कितने पदों के धारी हैं ?
२. इनका चिह्न क्या है ? जन्म स्थान और माता-पिता के नाम बताइये ?
३. इनका मुख्य गणधर कौन है ?
४. सर्व मुनियों का कितना प्रमाण है ?
५. मुख्य श्राविका का नाम बताइये ?
६. छद्मस्थ काल कितना है ?
७. दीक्षा वन, केवलज्ञान वृक्ष और मोक्ष तिथि बताइये ?

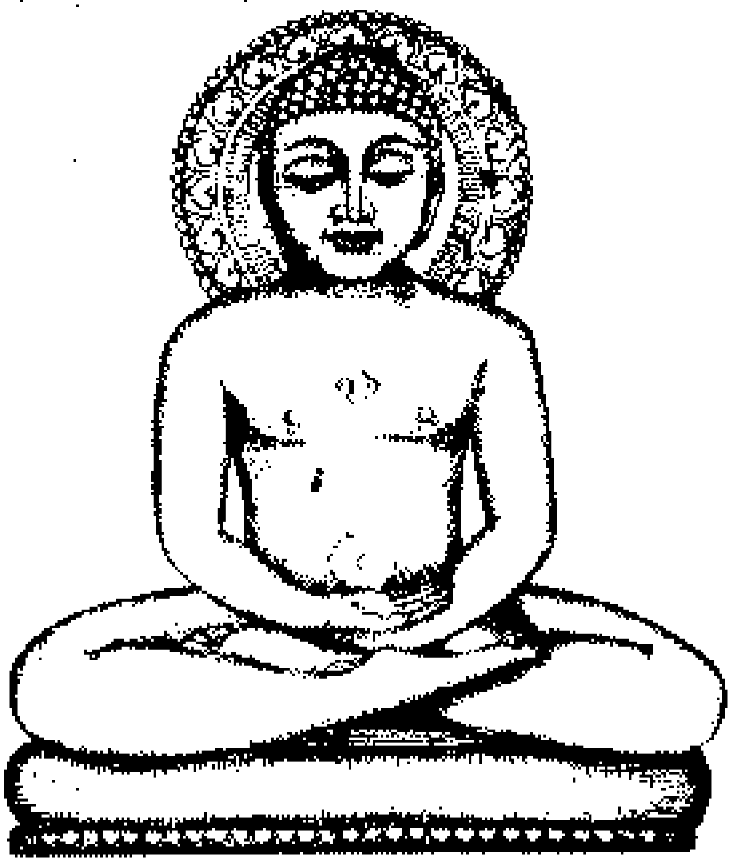

१८-१००८ श्री अरनाथ जी

पूर्वभव—

कहावत है "यथा राजा तथा प्रजा" कच्छ देश के क्षेमपुर नगर में राजा धनपति अत्यन्त प्रजावत्सल था। पृथ्वी भी कामधेनू के समान राजा के सर्व मनोरथ पूर्ण करती थी। बिना मांगे भी दान देता था। राजा और प्रजा उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा करती थी। धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थ प्रतिस्पर्धा पूर्वक बढ़ते थे। उसके राज्य में राजा-प्रजा सभी अपनी-अपनी आजिविका आनन्द से धर्मपूर्वक अर्जित करते थे।

आनन्द से समय जा रहा था। एक दिन राजा ने अर्हंनन्द तीर्थङ्कर के दर्शन किये। धर्मोपदेश सुना और संसार भोगों से विरक्त हो गया। ग्लानि होने पर सुस्वादु मिष्ठ भोजन का भी वमन हो जाता है। धनपति ने भी राज्य का वमन कर दिया। पूर्ण भाव शुद्धि से जिन दीक्षा धारण की। ग्यारह अंङ्गों का अध्ययन किया। सोलह कारण

भावनाओं को भाया और परम पुनीत तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध किया। आयु के अन्त में प्रायोपगमन संन्यास मरण कर "जयन्त" नामक अनुत्तर विमान में ३३ सागर की आयु वाला अहमिन्द्र हुआ। १ हाथ का शुभ्र शरीर था। ३३ पक्ष में श्वास लेता, ३३ हजार वर्ष में मानसिक आहार था।

स्वर्गावतरण—गर्भ कल्याणक—

जम्बूद्वीप का वैभव निराला है। भरत क्षेत्र में कुरुजाङ्गल देश में हस्तिनागपुर अपने वैभव से इन्द्र को भी तिरस्कृत करता था। यहाँ 'सोमवंश' अपने उज्ज्वल यश के साथ विख्यात था, इसी वंश में काश्यप गोत्रीय महाराज सुदर्शन राज्य शासन करता था। इनकी प्रिया मित्रसेना समस्त स्त्रियोचित गुणों की खान थी। राजा को प्राणों से भी अधिक प्रिय थी। दोनों दम्पति दो शरीर एक प्राण समान प्रीति से जीवन यापन करते थे। राजा भी अपने गुणों के साथ प्रजा के सुख-साधन का ध्यान रखता था।

'जयन्त' के अहमिन्द्र की आयु ६ माह की शेष रह गयी। इधर महाराजा सुदर्शन के प्रांगण में रत्नवृष्टि प्रारम्भ हुयी। पुण्योदय से समय पर वर्षा होने से किसानों का महानन्द होता है, मेघों की गर्जन के साथ मयूर थिरकियाँ लेने लगते हैं उसी प्रकार महादेवी मित्रसेना इस त्रिकाल अविरल रत्नवृष्टि से परिजन-पुरजन सहित परम प्रमोद को प्राप्त हुई। महाराज भावी पुत्र की आशा से आनन्द विभोर हो गये।

क्रमशः रत्न-वृष्टि होते-होते ६ महीने पूर्ण हो गये। फाल्गुण कृष्णा तृतीया के दिन रेवती नक्षत्र में पिछली रात्रि में सुख निन्द्रा लेते समय शुभ सूचक १६ स्वप्न देखे, अन्त में विशालकाय गज मुख में प्रविष्ट होते देखा। प्रमुदित महादेवी मित्रसेना श्री सिद्ध-परमेष्ठी का ध्यान करते हुए जागी। उनका तन-मन हर्ष से विशेष रोमाञ्चित था। मुख की कान्ति अधिक उज्ज्वल थी। रुचकगिरी वासिनी देवियों ने उसकी सुगन्धित वस्तुओं से गर्भ-शोधना कर दी थी जिससे दिव्य सुगन्ध से उनका शरीर व्याप्त था। बड़े भारी आनन्द से स्नानादि कर देवियों से पूजित वे अपने पतिदेव के निकट पधारीं। रात्रि के स्वप्नों का फल क्या है? जानने की जिज्ञासा प्रकट की। "हे सुमुखे! तुम्हारे उत्तम गर्भ में 'अहमिन्द्र' ने अवतार लिया है, तुम त्रिजगत गुरु की माँ बनोगी"

कहकर महारानी की जिज्ञासा शान्त की उसी समय स्वर्गलोक में पुर्वार्जित पुण्य का वायरलैस पहुँचा, घंटानाद, सिंहनाद आदि चिह्नों से ज्ञात कर गर्भ-कल्याणक महोत्सव मनाने समस्त इन्द्रादि सपरिवार आये। नाना प्रकार के अमूल्य दिव्य वस्त्र एवं आभूषणों से माता-पिता को अलंकृत कर पूजा की। गर्भ-कल्याणक महोत्सव सम्पादन कर स्वर्ग में गये।

जन्म कल्याणक—

शनैः शनैः गर्भ की वृद्धि होने लगी। माता का रूप-लावण्य, बुद्धि-वैभव आदि भी वृद्धिगत होने लगे। प्रसन्न हुई। कृत कृत्य, मद रहित, सदा मनोहर, शान्त चित्त और पवित्र उस देवी की अनेकों देवियाँ योग्य वस्तुओं, गूढ प्रश्नोत्तरों से सेवा कर मनोरंजन करतीं थीं। मेघमाला में चन्द्रकला के समान शोभित वह माँ आश्चर्यकारी कला, विज्ञान से शोभित हुयी। इस प्रकार गर्भकाल पूर्ण होने पर मंगसिर शुक्ला चतुर्दशी के दिन पुष्य नक्षत्र में उसने मति श्रुत अवधि ज्ञानधारी अपूर्व सौन्दर्य राशि पुञ्ज गुण विशिष्ट पुत्र को जन्म दिया। तीनोंलोक आनन्द से क्षुभित हो गये। नारकी भी एक क्षण को सुखी हुए। माँ बिना प्रसव वेदना के सुख से सोती रहीं।

तत्काल सूचना पा इन्द्र-इन्द्राणी सहित ऐरावत हाथी पर सवार हो गजपुर को तीन प्रदक्षिणा देकर राजभवन में आया। देव-देवियों, अप्सराओं के जयनाद, गान, नर्तन से आकाश व्याप्त हो गया। इंद्राणी प्रसूतिगृह में आकर बालक को ले आयीं। माँ को पुत्र वियोग जन्य कष्ट न हो, इसके लिए दूसरा मायामयी बालक सुला दिया और माँ को माया निद्रा में निमग्न कर दिया। प्रतीक्षा में पलक पांवड़े बिछाये इन्द्र बालक को देखते ही हक्का-बक्का सा हो गया। १ हजार नेत्र बनाकर प्रभु बालक की रूपराशि का पान करके भी अतृप्त ही रहा। मेरुगिरी पर ले गया। पाण्डुक शिला पर मध्य स्फटिक रत्न के सिंहासन पर भगवान बालक को विराजमान किया। देव-देवी गण पांचवें क्षीर-सागर से हाथों हाथ जल भरकर लाये। प्रथम उभय इन्द्रों ने बड़े उत्साह से १००८ कलशों से अभिषेक किया। पुनः अन्य देव-देवियों ने अभिषेकादि कर इंद्राणी ने पोंछकर वस्त्रालंकार पहिनाये। तिलकार्चन कर अंजन लगाया। आरती उतारी। नृत्यादि किये। पुनः इन्द्र लेकर गजपुर आये, माता-पिता को दे आनन्द नाटक किया। अभिषेक करने

के बाद ही बालक का नाम **'अरनाथ'** स्थापित किया। **'मछली'** का चिह्न घोषित किया। दीन, अनाथ, याचक तो पहले ही तृप्त हो चुके थे फिर भी इस समय अपूर्व दानादि दिया गया।

कुन्थुनाथ भगवान के बाद १हजार करोड़ वर्ष कम चौथाई पल्य बीत जाने पर अरनाथ हुए। इनकी आयु भी इसी समय में सम्मिलित है।

आयु प्रमाण--

इनकी आयु ८४ हजार वर्ष की थी। ३० धनुष ऊँचा शरीर और कान्ति सुवर्ण के समान थी। वे लावण्य की परम हद् थे क्योंकि कामदेव पदवी के धारी थे। भाग्य की उत्तम खानि, सुन्दरता के समुद्र थे। सम्पदाओं के घर थे।

कुमार काल--

लोगों को चकित और भ्रमित करते हुए बाल शिशु द्वितीया के चन्द्र समान बढ़ने लगे। लक्ष्मी के साथ छोटा कल्पवृक्ष ही हो ऐसे प्रतीत होते थे। देव कुमारों के साथ नाना विनोद-क्रीड़ाएँ करते थे। सभी खेलों में साम्यभाव झलकता था। स्वभाव से व्रती थे। इस प्रकार कुमार काल के २१००० वर्ष पूर्ण हुए।

राज्य और चक्रवर्तीत्वपद—

इक्कीस हजार वर्ष की वय में उनका अनेकों सुन्दर कन्याओं के साथ विवाह हुआ। इन्द्र के आदेशानुसार पिता ने राज्यभार प्रदान किया। २१००० वर्ष पर्यन्त माण्डलिक राजा रहे। इसके बाद उनकी आयुध शाला में चक्ररत्न की उत्पत्ति हुई। ९६ हजार रानियों के साथ अनेक प्रकार के भोगोपभोग का अनुभव करने लगे। १४ रत्न और नव-निधियाँ थी। ३६३ रसोईये थे। भरतेश्वर चक्रवर्ती के समान ही सम्पूर्ण वैभवादि थे। इस प्रकार २१००० वर्ष पर्यन्त चक्रवर्ती पदत्व का भोग किया।

वैराग्य—

अधिक स्वादिष्ट, रुचिकर पदार्थों को यदि आवश्यकता से अधिक खाता ही जाय तो नियम से वान्ति होगी, यदि कदाच न होवे तो उपाय

पूर्वक करानी पड़ती है। उसी प्रकार अधिक भोगानुभव करने से विरक्ति होना स्वाभाविक है। सत्पुरुषों की दृष्टि निमित्त पाकर शीघ्र परिवर्तित हो जाती है।

शरद कालीन मेघमाला जितनी सुहानी होती है, उतनी ही चंचल भी। एक दिन सुरम्य मेघ पटल को नष्ट होते देखकर उन्हें वैराग्य हो गया। जिस प्रकार भूकम्प से समस्त वस्तुएँ अस्थिर हो जाती हैं उसी प्रकार सारा संसार उनकी दृष्टि में असार प्रतीत होने लगा। उसी समय ताक लगाये बैठे लौकान्तिक देव गए आये और स्तुति कर प्रबल वैराग्य भावना का समर्थन कर अपने स्थान को प्रस्थान किया। पुनः समस्त देव, देवेन्द्र, देवांगना-इन्द्राणियाँ आये। सबने मिलकर उनका दीक्षाभिषेक किया। वैराग्य बढ़ाने वाले उत्सव किये। अरहनाथ स्वामी ने अपनी राज सम्पदा अपने अरविन्द कुमार को अर्पण की। पुत्र का राज्याभिषेक होने पर वे विरक्त महामना देवों द्वारा लायी 'वैजयन्ती' नाम की पालकी में सवार हो सहेतुक वन में पहुँचे। इन्द्र से पूर्व स्थापित मणि-शिला पर रत्न चूर्ण मण्डित स्वस्तिक विराज कर सिद्ध-परमेष्ठी साक्षी पूर्वक जिन दीक्षा स्वीकार की। मंगसिर शुक्ला दशमी के दिन रेवती नक्षत्र में शाम के समय बेला का नियम कर १००० राजाओं के साथ परम दिगम्बर मुद्रा धारण की। केश लौंच कर फेंके केशों को इन्द्र ने उठाकर रत्नपिटारी में रख, ले जाकर क्षीर सागर में विसर्जित किया। भगवान की प्रव्रज्या धारण करते ही मनः पर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। इन्होंने ३६० धनुष ऊँचे आम्रवृक्ष के नीचे दीक्षा ग्रहण की थी। अखण्ड मौन धारण कर प्रभु मुनिराज घोर साधना रत हुए।

पारणा—प्रथम आहार—

बेला के दो उपवास पूर्ण कर महामुनिवर चर्या मार्ग से आहार के लिए निकले। नातिमन्द गति से चक्रपुर नगर में प्रविष्ट हुए। सुवर्ण सम कान्ति युत महाराज अपराजित ने उन्हें नवधा-भक्ति से पवित्र, शुद्ध क्षीरान्न का पारणा करा कर विशिष्ट पुण्य प्रकाशक पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये। भगवान मुनि आहार ले पुनः बेला, तेला, अष्ट, पक्षोपवास, मासोपवास आदि नाना प्रकार तपश्चरण करने लगे।

छद्मस्थ काल —

जन साधारण से अशक्य आतापन योग आदि विशिष्ट साधना, तपों का अनुष्ठान प्रारम्भ किया। घोरातिघोर तपश्चर्या में १६ वर्ष मौन से व्यतीत किये।

केवलोत्पत्ति एवं ज्ञान कल्याणक महोत्सव —

महा ध्यानी मुनिपुंगव विहार करते पुनः सहेतुक वन में पधारे। वहाँ दो दिन के उपवास का नियम लेकर आम्रवृक्ष के नीचे विराजे। शुक्ल ध्यान के बल से क्षपक श्रेणी आरोहण कर कार्तिक शुक्ला द्वादशी के दिन शाम के समय मोहनीय आदि चारों घातिया कर्मों को चूर सर्वदर्शी और सर्वज्ञ अवस्था-अर्हन्त पद केवलज्ञान प्राप्त किया। देव, देवेन्द्रों ने उसी समय दिव्य अष्ट द्रव्यादि से पूजा कर ज्ञान कल्याणक महोत्सव मनाया।

कुबेर ने अति निपुणता से ३॥ योजन अर्थात् १४ कोस के लम्बे-चौड़े गोलाकार समवशरण की अद्वितीय रचना की। मध्य में मनोहर तीन कटनियों युक्त एवं १२ सभाओं से परिवेष्टित गंधकुटी रची। मध्य में रत्न जटित सुवर्ण सिंहासन, छत्र त्रय अष्ट प्रातिहार्य सहित रचना के मध्य प्रभु-भगवान अन्तरिक्ष विराजमान हुए। उस समय उनका शरीर परमौदारिक देदीप्यमान एवं चतुर्मुख रूप अतिशय सम्पन्न था। इनके दाहिनी ओर महेन्द्र (यक्षेन्द्र) यक्ष और बांयी ओर विजया (काली) यक्षी विराजमान थी। भगवान ने सप्तभंग तरंगों से युक्त दिव्यवाणी रूपी स्रोतस्विनी प्रवाहित कर भव्यजनों के मनोमालिन्य का प्रक्षालन कर सन्मार्ग प्रदर्शित किया।

आर्यकुम्भ मुख्य गणधर थे। सम्पूर्ण गणधर ३० थे। ६१० पूर्वधारी, ३५८३५ उपाध्याय, २८०० अवधिज्ञानी, २८०० केवलज्ञानी, ४३०० विक्रियाद्धिधारी, २०५५ मनःपर्ययज्ञानी, १६०० अनुत्तर वादी थे। इस प्रकार सर्व ५०००० मुनिराज थे। कुम्भ श्री या पक्षिला प्रमुख गणिनी आर्यिका के साथ ६०००० आर्यिकाएँ उनकी भक्ति में तत्पर थीं। एक लाख ६० हजार श्रावक, ३ लाख श्राविकाएँ थीं। मुख्य श्रोता सुभौम थे। असंख्यात देव देवियाँ एवं संख्यात तिर्यञ्च थे। इस प्रकार शोभनीय परिकर सहित भगवान ने आर्यखण्ड भूमि

को विहार से पवित्र किया। आयु का १ मास शेष रहने पर योग निरोध किया।

योग निरोध—

आयु में १ महीना बाकी रह गया तब देशना बन्द हो गई। समवशरण विघटित हो गया। भगवान चुपचाप श्री सम्मेद शैल की नाटक कूट पर आ विराजे। मौनी के पास मौनी ही रहेंगे, अतः १ हजार मुनियों के साथ प्रतिमा योग धारण किया। तीसरे शुक्ल ध्यान से शेष अघातिया कर्मों को चूरने लगे।

मोक्ष कल्याणक—

परम विशुद्धि के साथ कर्म समूह भस्म होने लगे। जिस प्रकार चक्ररत्न से शत्रुओं को विजय किया उसी प्रकार समाधि चक्र-चतुर्थ शुक्लध्यान के प्रभाव से समस्त कर्म शत्रुओं को विजय किया। चैत्र-कृष्णा अमावस्या के दिन रेवती नक्षत्र में, सायंकाल अशेष ८५ प्रकृतियों का मूलोच्छेद कर 'अ इ उ ऋ लृ' अक्षर उच्चारण काल मात्र १४ वें गुण स्थान में ठहर गुणस्थानातीत सिद्ध अवस्था को प्राप्त किया। लोक शिखर पर जा विराजे १००० मुनिराजों के साथ। कायोत्सर्गासन से मुक्ति वरण की। इसी समय देव, देवेन्द्र नाटक कूट को परिवेष्टित कर मोक्ष कल्याणक मनाने आ गये। अग्नि कुमारों ने औपचारिक अन्तिम संस्कार किया की। इस कूट के दर्शन का फल ९६ कोटि उपवास है।

अरहनाथ स्वामी भी कामदेव, चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर इन तीनों पदों से अलंकृत थे। इन्हीं के काल में ८ वाँ सुभौम चक्रवर्ती हुआ। यह अरहनाथ के बाद दो सौ करोड बत्तीस वर्ष बीतने पर हुआ था। नन्दीसेन बलभद्र, पुण्डरीक नारायण तथा निशंभु नामक प्रतिनारायण भी इन्हीं के काल में हुए।

चिह्न मछली

प्रश्नावली—

१. अरहनाथ स्वामी का जन्म स्थान बताओ ?

२. इनके कितने विवाह हुए ? वैराग्य कैसे हुआ ? कब हुआ ?

३. ज्ञानकल्याणक की तिथि बताओ ? मोक्ष तिथि कब आती है।

४. मोक्ष स्थान के दर्शन से क्या लाभ है ?

५. इनके माता-पिता का नाम क्या था ? चिह्न क्या है ?

६. कौन कौन महापुरुष इनके काल में हुए ?

७. ये कहाँ और कब अर्हन्त हुए ?

८. इनके जीवन से आपको क्या शिक्षा मिलती है ?

९. इनके कुमार, राज, तप काल में से आपको कौनसा काल पसंद है ? और क्यों ?

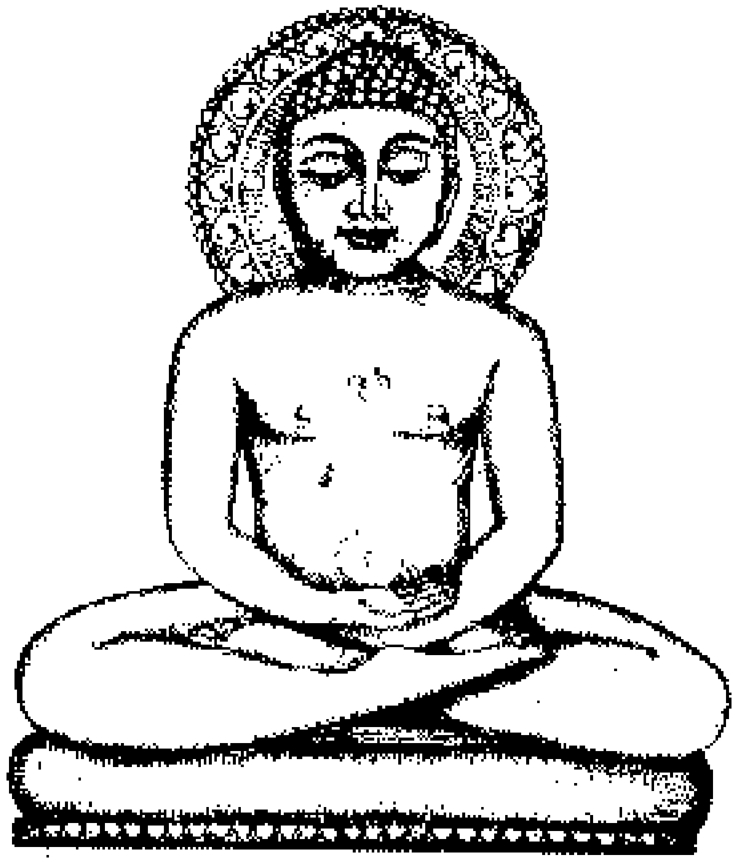

१६-१००८ श्री मल्लिनाथ जी

पूर्वभव—

द्वीपों में सार जम्बूद्वीप है। विदेह क्षेत्र इसके अन्दर अवस्थित होकर सतत मुक्तिमार्ग प्रदर्शन करता है। अलकापुरी को भी लज्जित करने वाली वीतशोका नगरी थी। इसका राजा था वैश्रवण। यह प्रतापी, बुद्धिमान, कलागुण निपुण चतुर एवं प्रजावत्सल था। राज्य की सर्वाङ्गवृद्धि हो रही थी।

एक दिन कुछ मित्रों के साथ राजा वनक्रीडार्थ गया। वहाँ सुन्दर हरियाली, निर्मल जल पूर्ण निर्झरने, सरिताओं की तरंगें, श्यामल घनघटा, इन्द्र-धनुष, चपला चमक, बगुलाओं का उत्पतन, मयूरों की केकी एवं मनोहर नृत्य देख उसका चित्त मुग्ध हो गया। वहीं विचरण करते हुए उसने एक विशाल शाखा—उप-शाखाओं से व्याप्त अति सघन बड़ का वृक्ष देखा। उसकी शाखाएँ जमीन में धंसकर भू-को शीतल एवं

सुखद बनाये हुए थीं। उसने अपने मित्रों को उसे दिखाया और प्रशंसा करता आगे बढ़ा। कुछ समय के बाद वह लौटा तो देखा कि वह विशाल वृक्ष बिजली पड़ जाने से आमूल भस्म हो गया। राजा हतप्रभ हो गया। उसे संसार की निस्सारता विदित हुई। घर लौटा और अपने पुत्र को राज्य दे नागश्री मुनिराज के सन्निकट दैगम्बरी दीक्षा धारण कर ग्यारह अंग के पाठी हो गये। सोलह कारण भावना भाकर (चिन्तवन कर) उत्तम तीर्थङ्कर पुण्य प्रकृति का बंध किया। आयु के अन्त में समाधि सिद्धकर 'अपराजित' नाम के अनुत्तर विमान में जाकर उत्पन्न हुए। ३३ सागर की आयु थी। अहमिन्द्र के समस्त प्रवीचार रहित भोगों को सानन्द भोगता था। यही अहमिन्द्र यहाँ से च्युत हो मल्लिनाथ तीर्थङ्कर होगा।

स्वर्गावतरण—गर्भ-कल्याणक महोत्सव—

अहमिन्द्र की आयु ६ माह शेष रह गयी। भरतक्षेत्र के बंगाल देश में मिथिला नगरी का अभ्युदय बढ़ने लगा। इक्ष्वाकु वंशीय, कश्यप गोत्रीय महाराजा कुम्भ अपने वैभव के साथ गुणों की वृद्धि कर रहा था। उसकी महादेवी का नाम प्रजावती था। अनेकों देवियाँ उसकी सेवा करने लगीं। स्वर्गीय दिव्य आहार, पान, वस्त्रालंकार आदि से सेवित थीं। प्रतिदिन आकाश से बारह करोड़ रत्नों की वर्षा होती थी। इन चमत्कारों से राजा-रानी परम संतुष्ट थे। इस प्रकार भूमितल यथार्थ वसुधा नाम को धारण करता शोभित हुआ। ६ माह पूर्ण हो गये।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा के दिन अश्विनी नक्षत्र में रात्रि के पिछले प्रहर में महादेवी प्रजावती ने अति अद्भुत १६ स्वप्न देखे। प्रातः सिद्ध परमेष्ठी के स्मरण के साथ निद्रा तज, उठी। श्री ह्री आदि देवियाँ नाना विधि स्तुति कर शृंगारादि सामग्री लिए तैयार थीं। शीघ्र सज्जित हो सभा में पधारीं। महाराज से स्वप्न निवेदित कर उनके फल जानने की जिज्ञासा व्यक्त की। "तीर्थङ्कर पुत्र होगा" कहकर राजा ने अत्यानन्द अनुभव किया। महादेवी परमानन्द में विभोर हो गई।

जन्मकल्याणक—

सुख की घड़ियाँ शीघ्र चली जाती हैं। क्रमशः नव मास पूर्ण हो गये। माता को शरीर जन्य कोई विकार नहीं हुआ। प्रमाद के स्थान

पर स्फूर्ति बढ़ गई। सुख से गर्भ वृद्धि हुयी। बालक सीप में मुक्ता की भांति बढ़ा। अन्त में मार्गशीर्ष (अगहन) सुदी एकादशी के दिन अश्वनी नक्षत्र में शरद-पूर्णिमा के समान ज्योतिर्मान, सर्वाङ्ग लक्षण सम्पन्न अद्भुत बालक को जन्म दिया। उसी समय शंखनाद आदि चिह्नों से तीर्थङ्कर का जन्म ज्ञात कर देवगणों से परियुत इन्द्र राजा ऐरावत हाथी सजाकर आ गया। नगरी की तीन प्रदक्षिणाएँ दीं। शची प्रसूति-गृह में जाकर सद्योजात बालक को ले आयीं। माँ को कष्ट न हो इसके लिए जिन बालक का प्रतिबिम्ब रख आयीं। इन्द्र देखते ही होश-हवाश भूल गया। एक हजार नेत्र बनाकर भी निराश ही रहा, उनके रूप देखने में। तत्काल सुमेरु पर्वत आये।

जन्माभिषेक—

पाण्डुक शिला पर पूर्वाभिमुख विराजमान कर क्षीर-सागर के जल से भरे १००८ कलशों से जिन बालक का मस्तकाभिषेक किया। सबों ने अभिषेक कर अपनी-अपनी भक्ति के अनुसार पाप पंक प्रक्षालित की। इन्द्राणी ने देवियों सहित भगवान बालक को शृंगारित किया, इन्द्र ने **मल्लिनाथ** नाम घोषित किया। नृत्यादि कर परमानन्द से पुनः मिथिला नगरी में आये। माता-पिता की गोद में स्थापित किया। **कुम्भ-कलश** चिह्न निर्धारित किया। इन्द्र ने स्वयं आनन्द नाटक किया और सप-रिवार अपने-अपने धाम को लौट गये।

देव-देवियों के हाथों हाथ में उछलते-कूदते, खेलते बाल प्रभु बढ़ने लगे। अपने कौतूहलों से सबका मन हरते थे। बाल रूपधारी देवी-देव ही उनके आहार-विहार, हास-विलास के साथी थे, व्यवस्थापक थे।

अरनाथ तीर्थङ्कर के बाद एक हजार करोड़ वर्ष बीतने पर पुण्य-शाली मल्लिनाथ भगवान हुए थे। इनकी आयु भी इसी में शामिल है।

इनकी आयु ५५००० वर्ष की थी। शरीर २५ धनुष ऊँचा था। शरीर कान्ति **सुवर्ण** सदृश थी।

कुमार काल-वैराग्य भाव—

आमोद-प्रमोद में १०० वर्ष पूर्ण हो गये। पिता ने बड़े ही उत्साह से कुमार का विवाह रचाने का विचार किया। अनेकों सुन्दर कन्याओं

को तैयार कर उत्सव की तैयारियाँ होने लगीं। कुमार मल्लिनाथ का चित्त किसी छिपी शक्ति की खोज में लगा था। फहराती पताकाएँ तोरण मालाओं को लटकती देखीं, रंगोली से पूरे चौक देखकर वे अपने अहमिन्द्र भोगों का स्मरण कर विचारने लगे अहो! कहाँ वह वैभव और कहाँ यह लज्जास्पद तुच्छ विवाह? यह मात्र विडम्बना है। श्वान वृत्ति है। भोगे भोगों को भोगना क्या सत्पुरुषों के योग्य है? धन, यौवन, राज्य, भोग सभी उच्छिष्ट हैं इन्हें किस-किस ने नहीं भोगा? मैं कदाऽपि इन्हें स्वीकार नहीं करूँगा। इस प्रकार विचार कर आत्म शोधना का दृढ़ संकल्प कर संयम धारण करने का निश्चय किया।

निष्क्रमण कल्याणक –

बाल ब्रह्मचारी श्री मल्लिनाथ को सुदृढ़ वैराग्य होते ही लौकान्तिक देवगण आये। औपचारिक प्रतिबोध दे अपनी अनुमोदना व्यक्त की। उनका नियोग पूर्ण होते ही चतुर्निकाय देव, देवेन्द्र, देवियाँ आदि आये। इन्द्र ने दीक्षाभिषेक किया और अनेकों वस्त्रालंकारों से सज्जित कर प्रभु को 'जयन्त' नाम की पालकी में सवार किया। कुछ दूर राजा गण ले गये। पश्चात् देवगण गगन मार्ग से श्वेत वन के उद्यान में ले गये। पूर्व सज्जित स्वच्छ शिला पर विराज दो दिन के उपवास के साथ परम दिगम्बर मुद्रा धारण की। पञ्चमुष्टि लौंच किया। इन्द्र ने रत्न पिटारे में केशों को रख मस्तक पर चढ़ाया और क्षीर सागर में जाकर क्षेपण किया। ठीक ही है पूज्य पुरुषों के आश्रय को पाकर तुच्छ भी महान हो जाता है। अगहन सुदी ११ को अश्विनी नक्षत्र में सायंकाल ३०० राजाओं के साथ सिद्ध साक्षी दीक्षा लेकर आत्म ध्यान लीन हो गये। मनः शुद्धि से ध्यान शुद्धि और उससे ज्ञान सिद्धि हो जाती है अतः उसी समय मनः पर्ययज्ञान प्रकट हुआ।

पारणा—

किसी प्रकार श्रम नहीं होने पर भी "यह सनातन मार्ग है" सोचकर दो दिन बाद आहार को मुनीश्वर आये। चर्या मार्ग से मिथिला नगरी में प्रवेश किया। सुवर्ण कान्ति सदृश राजा नन्दिषेण ने उन्हें सप्तगुण युत नवधा भक्ति से प्रासुक आहार देकर पञ्चाश्चर्य

प्राप्त किये। योगिराज निरंतराय आहार कर वन में जा मौन पूर्वक ध्यान लीन हो गये।

छद्मस्थ काल—

मात्र ६ दिन छद्मस्थ काल था।

केवलोत्पत्ति—

६ दिन के बाद उसी श्वेत वन में अशोक वृक्ष के नीचे दो दिन के उपवासी उन प्रभु ने क्षपक श्रेणी आरोहण किया। प्रथम और द्वितीय शुक्ल ध्यान के बल से ३ करणों को करते हुए अगहन सुदी ११ अश्विनि नक्षत्र में मोहनीय के बाद तीनों अन्य घातिया कर्मों का नाश कर अक्षय, पूर्ण केवलज्ञान प्राप्त किया।

केवलज्ञान कल्याणक—

अर्हत् अवस्था पाते ही इन्द्र सपरिवार आया। अनेक प्रकार से सर्वज्ञ प्रभु की पूजा कर केवलज्ञान कल्याणक महोत्सव मनाया। कुबेर ने उसी समय भव्य जीवों के कल्याणार्थ समवशरण मण्डप रचना की।

समवशरण—

भगवान मल्लिनाथ स्वामी ने ६ दिन कम ५४६०० वर्ष पर्यन्त अर्हन्त अवस्था में रहकर सम्पूर्ण आर्यखण्ड को धर्मामृत पान कराया। बाल ब्रह्मचारी होने से इनका राज्य भोग काल नहीं रहा। समवशरण का विस्तार ३ योजन अर्थात् १२ कोस था। आठ भूमियों के मध्य गंध कुटी थी। इसकी तीन कटनियाँ उनके ऊपर अष्ट प्रातिहार्य सहित कञ्चनमय रत्न जटित सिंहासन था। इस प्रकार प्रभु अन्तरिक्ष पद्मासन से विराजे। उस समय उनकी आत्म विशुद्धि से चारों ओर मुख दिखलाई पड़ते थे। चतुर्दिक बैठे श्रोतागण समझते कि श्री प्रभु हमारी ओर देख रहे हैं। अनेकों भव्यात्माओं ने अनेक प्रकार व्रत, नियम, संयम आदि धारण किये।

इनके समवशरण में विशाख आदि २८ गणधर थे, २२०० केवली ५५० पूर्वधारी श्रुतकेवली, २६००० पाठक-शिक्षक मुनि, २२०० पूज्य अवधिज्ञानी मुनि १४०० वादी, २६०० विक्रियाद्धिधारी, १७५० मनः

पर्ययज्ञान मण्डित मुनिराज थे, इस प्रकार सब ४००० मुनिगण थे। बंधुसेना को आदि लेकर ५५००० अर्जिकाएँ थीं, मुख्य श्रोता नारायण को लेकर १ लाख श्रावक और ३ लाख श्राविकाएँ थीं। कुबेर नाम का यक्ष, अपराजिता (अनजान) यक्षी थी। इस प्रकार समस्त आर्यखण्ड की पुण्यभूमि को मुक्ति मार्ग प्रदर्शन कर आयु के १ माह शेष रहने पर वे श्री सम्मेदाचल के सम्बल कूट शिखर पर प्रतिमा योग से आ विराजे।

योग निरोध—

एक महिना आयु रहने पर दिव्यध्वनि होना बन्द हो गया। समवशरण विघटित हुआ। आप ५००० मुनियों के साथ निश्चल सम्मेद शैल पर विराजे। ध्यान की शक्ति अपार है, शुक्ल ध्यान की महिमा अचिन्त्य है। आयु के अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर अन्तिम शुक्लध्यान का प्रयोग किया। अवशेष ८५ कर्म प्रकृतियों को आमूल भस्मसात कर अ इ उ ऋ लृ उच्चारण काल मात्र १४ वें गुण स्थान में स्थित हो, अनन्त काल के लिए परम सिद्ध स्थान में जा विराजे। निष्कल भगवान सिद्ध परमेष्ठी दशा को प्राप्त हुए। इनके साथ ही फाल्गुन शुक्ला पञ्चमी के दिन भरणी नक्षत्र में शाम के समय कर्मों को नष्ट कर तनुवातवलय में जा विराजे। समस्त इन्द्र, देव, देवियों ने आकर निर्वाण कल्याणक पूजा कर उत्सव मनाया। अग्नि कुमार देवों ने मुकुट मणियों की ज्योति से अग्नि उत्पन्न कर संस्कार किया। नाना प्रकार मंगलोत्सव मना अपने-अपने स्थान में चले गये।

विशेष—

श्वेताम्बर आम्नाय में मल्लिनाथ स्वामी को स्त्री कहा है यह सर्वथा निराधार और आगम युक्ति से प्रतिकूल है। वे स्वयं भी स्त्री कहते हुए प्रतिमा पुरुषाकार मानते हैं। जो हो दिगम्बर आम्नाय में यह सर्वथा असत्य है। ये काम विजयी बाल ब्रह्मचारी राजकुमार थे। केवली कवलाहार भी नहीं करते।

इन्हीं के समय में पद्मनाभ का चक्रवर्ती हुआ। सातवें बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायण भी हुए। बलदेव का नाम नन्दीमित्र, 'दत्त'

नारायण और बलीन्द्र प्रतिनारायण था। इनमें दत्त और बलीन्द्र सप्तम नरक में गये और राज्य त्याग सकल संयम धार नन्दीमित्र अजर-अमर पद (मुक्ति) को प्राप्त हुए। मानव जीवन का सार एक मात्र त्याग है, संयम है।

चिह्न कलश

प्रश्नावली —

१. मल्लिनाथ तीर्थङ्कर स्त्री थे या पुरुष ?

२. इनके जीवन की क्या-क्या विशेषताएँ हैं ?

३. वैराग्य का कारण क्या है ? पूर्वभव में कौन थे ?

४. इनके माता, पिता, जन्मस्थान, दीक्षा स्थान के नाम बताओ ?

५. कितने दिन मौन से तप किया ? केवलज्ञान कहाँ हुआ ?

६. प्रथम आहार किसने दिया ? उसे क्या मिला ?

७. आपने तीर्थङ्कर होने वाले मुनिराज को आहार दिया क्या ?

८. केवली आहार लेते हैं क्या ?

९. मोक्ष कल्याणक तिथि कौन सी है ?

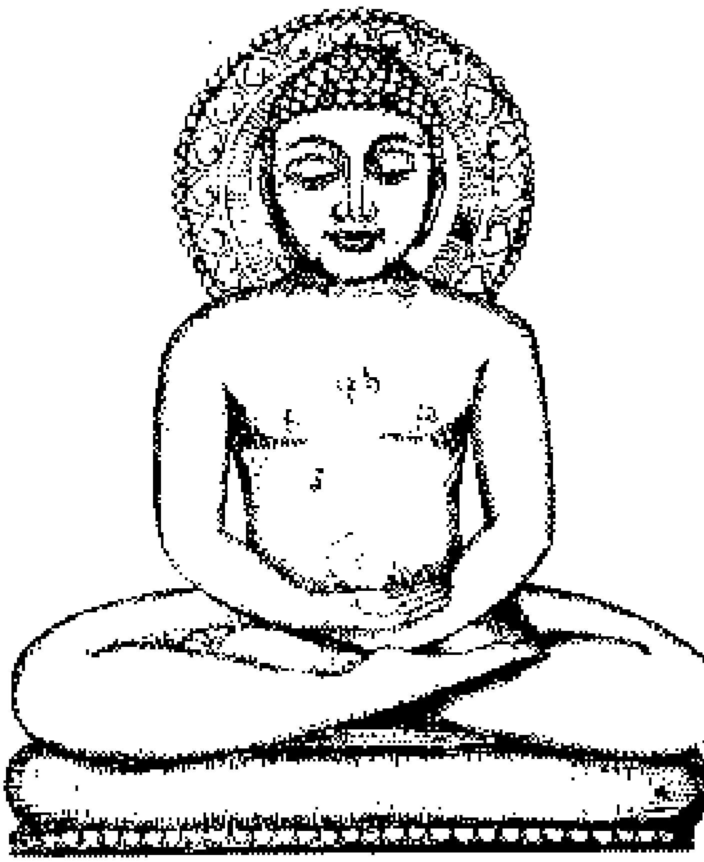

२०–१००८ श्री मुनिसुव्रतनाथ जी

पूर्वभव—

भारत भूमि को धर्म और धर्मात्माओं की जननी का सदा सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मुनिसुव्रत तीर्थङ्कर का जीव तीसरे पूर्वभव में अंगदेश की चम्पापुरी में हरिवर्मा नाम के राजा थे। कई प्रियाओं के साथ सुखानुभव करते थे। एक दिन श्री अनन्तवीर्य नामक मुनिराज पधारे। वन्दना कर हरिवर्मा ने सपरिवार उनकी अष्ट प्रकार द्रव्यों से पूजा की। धर्मोपदेश श्रवण किया। जीव तत्व को समझा। आस्रव को रोकने वाले समिति, गुप्ति, महाव्रत आदि का स्वरूप समझा। कर्म बंध के कारणभूत मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषायों का त्याग ही आत्मसिद्धि का उपाय है, समझ कर विरक्त हुए। बड़े पुत्र को राज्य दे स्वयं दीक्षित हुए। कुछ ही समय में ११ अङ्गों के पारगामी हो गये। दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चितवन कर तीर्थङ्कर गोत्र कर्म बंध किया। आयु के अन्त में समाधि धारण कर चौदहवें प्राणत स्वर्ग में

इन्द्र हुए। इनकी २० सागर की आयु थी, शुक्ल लेश्या, ३।। हाथ शरीरोत्सेध, १० माह में उच्छ्वास, २० हजार वर्ष बाद मानसिक अमृत आहार था। मन से होने वाला मात्र किंचित संभोग था। आठ ऋद्धियों से सम्पन्न थे। ५वें नरक तक अवधिज्ञान था। इस तरह १० प्रकार कल्पवृक्षों के दिव्य भोगों का भी प्राचुर्य था।

स्वर्गावतरण—

वृक्ष पल्लवित होता है तो उसकी छाया भी सघन और विस्तृत हो जाती है। जीव के पुण्य के साथ उसका यश, महिमा और वैभव भी बढ़ने लगता है, अस्तु, इन्द्र की आयु ६ माह शेष रह गई। देवगण हर्ष से पृथ्वी पर रत्न बर्षाने लगे।

भरत क्षेत्र की राजगृही नगरी (पञ्च पहाड़ी) में मगध देश के राजा सुमित्र का भाग्य सितारा चमका। यह हरिवंश का शिरोमणि, काश्यप गोत्र का शिखामणि था। इसकी पट्ट-महादेवी का नाम सोमा था। सोमा की गर्भ-शोधना के लिए रुचकगिरि निवासी देवियाँ आकर दिव्य सुगंधित पदार्थों से शुद्धि करने लगीं। श्री, ह्री, धृति आदि देवियाँ नाना विधि सुखोपभोग सामग्रियों से आनन्दित करने लगीं। प्रतिदिन राजाङ्गण में रत्नवृष्टि होती ही थी। कोई याचक ही नहीं रहा। ढेर पड़े थे हीरा, मोती, माणिकों के जैसे आज म्युनिसिपैलिटी की अव्यवस्था से सड़कों पर कचरे के ढेर लगे रहते हैं।

एक दिन श्रावण कृष्णा द्वितीया के दिन श्रवण नक्षत्र में उस देवांगना सेवित महारानी ने रात्रि के अन्तिम प्रहर में १६ स्वप्नों के बाद मुख में विशालकाय हाथी को प्रविष्ट होते देखा। बन्दीजनों की मंगल-ध्वनि से निद्रा भंग हुयी। निरालस्य, सिद्ध-परमेष्ठी का ध्यान करती उठी। शीघ्र सज-धज कर पतिदेव के पास जाकर स्वप्नों का फल पूछा। "तीर्थङ्कर कुमार की माँ बनोगी" सुनकर हर्ष से फूली नहीं समायीं।

धीरे-धीरे स्फटिक मणि के करण्ड में शोभित मणिवत् गर्भ की वृद्धि होने लगी, परन्तु न तो माँ की उदर वृद्धि हुयी न अन्य ही आलस्यादि चिह्न ही प्रकट हुए। अपितु उनका रूप लावण्य, कान्ति, सौभाग्य, बुद्धि आदि गुण समूह बढ़ने लगे।

जन्म कल्याणक —

धीरे-धीरे अति आनन्द पूर्वक नव मास पूर्ण हुए। माता को किसी प्रकार भी गर्भजन्य आयास मालूम नहीं हुआ। अपितु लाघवता प्रतीत हुई। वैशाख वदी दशमी के दिन श्रवण नक्षत्र में, मकर राशि के रहते प्रातःकाल संतोष पूर्वक बिना किसी बाधा के अपूर्व कान्तियुत पुत्र रत्न को उत्पन्न किया।

जन्माभिषेक —

जन्म होते ही तीनों लोक क्षुभित हो गये। पल भर नारकियों ने भी सुखानुभव किया। सिंह, घंटा, शंख, भेरी नाद से भगवान का जन्म अवगत कर चारों प्रकार के देव, देवेन्द्र सपरिवार आये। सौधर्मेन्द्र ऐरावत हाथी सजा कर लाया। उसकी शचि महादेवी प्रसूतिगृह से मायामयी बालक सुलाकर बालक जिन को लायीं। इन्द्र ने १ हजार नेत्र बनाकर उन्हें निहारा। सतृष्ण नेत्रों से पाण्डुक शिला पर ले जाकर हाथों हाथ लाये और सागर के जल से भरे १००८ कलशों से अभिषेक किया। क्रमशः देवियों, इन्द्राणी आदि ने भी सद्योजात बालक का स्नपन, मण्डन, मञ्जन कर आरती उतारी तिलक लगाया। इन्द्र ने **मुनिसुव्रत** नाम घोषित किया। सुसज्जित बाल कुमार को लाकर राजा सुमित्र और रानी सोमा की गोद में स्थापित किया। पुत्र जन्म ही संसार में सुख का कारण है फिर तीर्थङ्कर जैसा पुत्र वह भी दीर्घकाल प्रतीक्षा के बाद ढलती वय में प्राप्त हो तो कितना हर्ष होगा? दोनों दम्पति आनन्द विभोर हो गये। इन्द्र ने भी समयानुसार "आनन्द" नाटक किया। देवों को बालरूप धर बालक प्रभु के साथ रमण करने की आज्ञा दी और अपने स्थान को चला गया। देव-देवियाँ सभी दास-दासी के समान बालक और माँ बाप की सेवा भक्ति में तत्पर हुए। इनका चिह्न **कछुआ** है।

श्री मल्लिनाथ तीर्थङ्कर के ५४ लाख वर्ष बीतने पर इनका जन्म हुआ। इनकी आयु भी इसी में गर्भित है। इनकी आयु ३० हजार वर्ष की थी। २० धनुष (८० हाथ) का ऊँचा शरीर था, शरीर की कान्ति **मयूर के कण्ठ समान नीलवर्ण** की थी। रूप लावण्य, बुद्धि अप्रतिम थी।

कुमार काल—

देव कुमारों के साथ आनन्द क्रीड़ा करते हुए ७५०० वर्ष बीत गये। नाना प्रकार की क्रीड़ाओं में जाता समय विदित नहीं हुआ।

विवाह और राजभोग—

कुमार वय का अन्त और यौवन का प्रारम्भ के सन्धिकाल में पिता ने इन्द्र की परामर्श से अनेक गुण, शील मण्डित, सुन्दर, नवयौवना कन्याओं के साथ विवाह किया और राज्य भी अर्पण कर स्वयं निवृत्त हो तपस्वी हो गये। मुनिसुव्रत भी नव यौवनाओं के साथ नाना क्रीड़ाओं में रत हो, न्यायोचित राज्यभोग के साथ प्रजा पालन करने लगे। राजभोगों में १५००० वर्ष बीत गये।

वैराग्य—

एक दिन जोर से मेघ गरजने लगे। उनकी गड़गड़ाहट सुन पट्ट-हस्ती को वन की याद आ गयी और उसने खाना-पीना छोड़ दिया। उसके सेवकों ने महाराज मुनिसुव्रत को यह सूचना दी। उन्होंने वहाँ आकर अवधिज्ञान से कारण जान लिया और उसके पूर्वभव भी ज्ञात कर उसे सम्बोधित करते हुए बोले "देखो, यह इससे पहले भव में तालपुर नगर का स्वामी नरपति नाम का राजा था। इसे उस समय अपने कुल, ऐश्वर्य आदि का भयंकर अभिमान था। अपात्र, पात्र, कुपात्र का विचार न कर किमिच्छुक दान दिया था जिससे यह मर कर हाथी हुआ है। यह मूर्ख उसका स्मरण नहीं कर केवल वन का स्मरण कर रहा है, धिक्कार है मोह को।" इस प्रकार राजा के वचन सुन उस हाथी को जाति स्मरण हो गया और उसने एक देश संयम धारण किया। महाराज मुनिसुव्रत को भी इस घटना ने आत्म बोध कराया और उन्होंने भी संसार भोग त्याग का सुदृढ़ निश्चय किया। उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर उनकी स्तुति कर वैराग्य पोषण किया।

तप कल्याणक—

वैराग्य भाव मण्डित महाराज ने अपने ज्येष्ठ पुत्र विजय को राज्य-भार अर्पण किया और स्वयं प्रव्रज्या धारण को वन विहार के लिए तत्पर हुए। उसी समय देवेन्द्र, देवादि आये। इन्द्र "अपराजिता" नामकी

पालकी लाया। प्रथम दीक्षाभिषेक कर वस्त्रालंकार पहिनाये और शिविका में सवार किया। पुन: राजागण लेकर चले। तदनन्तर देवगण गगन मार्ग से 'नीलवन' में ले गये। वैशाख कृष्णा १० मीं के दिन श्रवण नक्षत्र में संध्या के समय तेला के उपवास की प्रतिज्ञा कर सिद्ध साक्षी में दीक्षा धारण की। स्वयं पञ्चमुष्ठी लौंच किया। इन्द्र ने केशों को मस्तक पर चढाया। रत्न पिटारे में रख क्षीर सागर में क्षेपण किया। श्री मुनिसुव्रत महा मुनिराज ध्यानाचल हो आत्म चिन्तन करने लगे।

पारणा—

पात्र दान का योग पुण्य से होता है और पुण्य का ही वर्द्धक है। तीर्थङ्कर प्रभु को प्रथम पारणा कराना निश्चित दो तीन भव से मुक्त होने का निमित्त है। मुनीश्वर तीन दिन बाद आहार को निकले। चर्या मार्ग से राजगृही नगरी पहुँचे। जन्म से तीन ज्ञान धारी थे, दीक्षा लेते ही चौथा मन: पर्यय ज्ञान भी हो गया। इस प्रकार चार ज्ञान धारी मुनीश्वर को आते देख महाराज वृषभसेन ने बडे उत्साह से पडगाहन किया। नवधाभक्ति से शुद्ध प्रासुक आहार दिया। उसके पुण्य विशेष और भक्ति विशेष से पञ्चाश्चर्य हुए। निरंतराय आहार कर प्रभु वन में आ, कर्मों के साथ युद्ध करने लगे।

छद्मस्थ काल—

कठोर साधना रत उन मुनिराज ने अखण्ड मौन से ११ महीने व्यतीत किये।

केवलज्ञान उत्पत्ति और केवलज्ञान कल्याणक महोत्सव—

ग्यारह मास की अखण्ड मौन साधना के बाद वैशाख कृष्णा नवमी के दिन श्रवण नक्षत्र में संध्या के समय उसी नील वन में चम्पक वृक्ष के तले लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। यह वृक्ष २४० धनुष ऊँचा था। उसी समय देव और इन्द्रों ने आकर केवलज्ञान कल्याणक पूजा महोत्सव किया।

इन्द्र की आज्ञानुसार धनपति ने समवशरण रचना की। इसका विस्तार २॥ योजन अर्थात् १० कोस प्रमाण था। इसके मध्य गंधकुटी में स्थित हो १२ सभाओं से घिरे भगवान ने ११ माह का मौन विसर्जित

किया अर्थात् दिव्यध्वनि प्रारम्भ कर भव्य जीवों को धर्म रसायन पिलायी। तत्व स्वरूप और चारों गतियों का स्वरूप निरूपण किया। अनेकों भव्य जीव सम्बुद्ध हुए। समस्त आर्यखण्ड में विहार किया।

आपके समवशरण में मल्लि आदि १८ गणधर थे। ५०० द्वादशाङ्ग के वेत्ता, २१००० उपाध्याय-शिक्षक, १८०० अवधिज्ञानी, १५०० मनः पर्यय ज्ञानी, १८०० केवलज्ञानी थे, २२०० विक्रियाद्धिधारी थे, १२०० वादी ये सब मिलाकर ३०००० मुनि थे। पुष्पदत्ता प्रमुख आर्यिका के साथ ५०००० अर्जिकाएँ, १ लाख श्रावक, ३ लाख श्राविकाएं, असंख्यात देव देवियाँ और संख्यात पशु पक्षी थे। वरुण नाम का यक्ष और बहु-रूपिणी या सुगंधिनी यक्षी थी। उनका ७५०० वर्ष सम्पूर्ण तपकाल रहा। भव्यों को सम्बुद्ध करते जब केवल १ माह आयु शेष रह गई तब योग निरोध कर श्री सम्मेद शिखर पर निर्जर कूट पर आ विराजे। इस कूट के दर्शन का फल १ कोटि प्रोषध के बराबर है।

मोक्ष कल्याणक--

एक मास तक प्रतिमायोग धारण कर ध्यानारूढ़ भगवान १ हजार मुनियों के साथ बाकी कर्मों के नाश करने में तत्पर हुए। तृतीय शुक्ल ध्यान में स्थित हुए। शेष ८५ प्रकृतियों का संहार किया। चौथे शुक्ल ध्यान के आश्रय अ इ उ ऋ लृ वर्ण उच्चारण काल पर्यन्त रह अनन्त सौख्यधाम मुक्ति महल में जा विराजे। सिद्ध शिला पर पहुँच निकल परमात्मा हुए। उसी समय इन्द्र, देव देवियों ने आकर मोक्ष कल्याणक महा महोत्सव मनाया। अग्नि कुमारों ने संस्कार किया। दीपोद्योतन किया और सहर्ष अपने अपने स्थान चले गये। इनके काल में राम, लक्ष्मण, रावण आदि हुए।

चिह्न 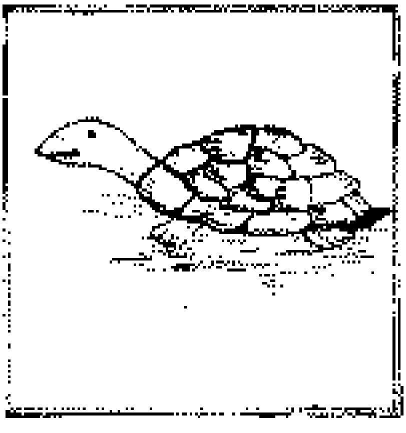 कछुआ

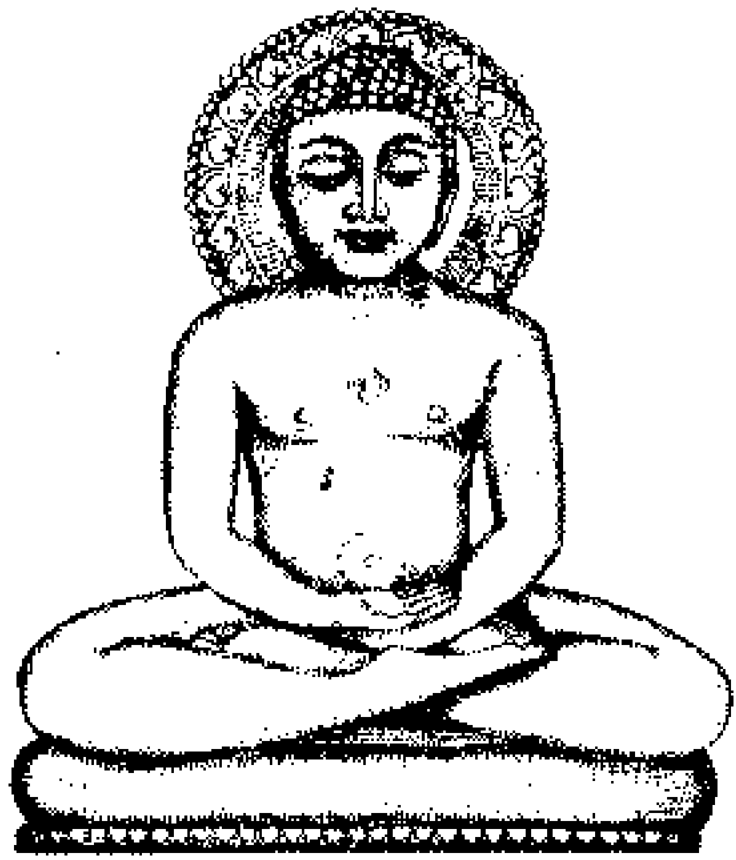

२१–१००८ श्री नमिनाथ जी

पूर्वभव—

जम्बूद्वीप १ लाख योजन विस्तार लिये है। इसमें ७ क्षेत्र हैं जिनमें एक भरत क्षेत्र जिसमें हम लोग हैं। यहाँ कौशाम्बी नाम की नगरी है। इसका राजा था सिद्धार्थ। यह महान विद्वान, अत्यन्त सुन्दर और पराक्रमी था। उसके श्रीदत्त नाम का पुत्र था। एक दिन उसने अपने पिता पार्थिव मुनिराज की समाधि का समाचार सुना। उसी समय वह विषयों से विरक्त हो गया। श्रीदत्त पुत्र को राज्य देकर महाबल नामक केवली के सन्निकट दिगम्बर दीक्षा धारण की। उनके चरण सानिध्य में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर ग्यारह अङ्गों का अध्ययन किया, सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन किया। विशुद्ध हृदय से तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध किया। आयु के अन्त में समाधि मरण कर अपराजित नामक अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र हुआ। उसकी आयु ३३ सागर की थी। अप्रवीचार सुख था। अहर्निश तत्त्व चिन्तन में दत्तचित्त रहता था।

स्वर्गावतरण—

अहमिन्द्र का आयुष्य ६ माह रह गई। इधर बंग देश की मिथिला नगरी में इक्ष्वाकु वंशीय महाराज श्री विजय राज्य करते थे। उनकी पट्टरानी वप्पिला देवी थी। दम्पत्ति पुण्य के पुञ्ज स्वरूप थे। महादेवी की सेवा के लिए श्री, ह्री, धृति आदि देवियाँ आयीं। प्रांगण में रत्न-राशि वर्षण होने लगी। राजा-रानी, राज्य, परिजन सभी आनन्द में डूब गये। रुचकगिरि निवासिनी देवियों ने महादेवी की गर्भ शोधना की। इन चिह्नों से उन्हें तीर्थङ्कर उत्पन्न होने का आभास मिल गया था। ६ माह पूर्ण हो गये।

आश्विन कृष्णा द्वितीया के दिन अश्विनी नक्षत्र में रात के पिछले भाग में महारानी वप्पिला देवी ने १६ स्वप्न देखे और विशाल हाथी को मुख में प्रवेश करते देखा। प्रात: पतिदेव से स्वप्नों का फल तीर्थङ्कर बालक का गर्भावतरण जानकर आह्लाद से भर गई। उसी समय स्वयं इन्द्र सपरिवार आया। माता-पिता (राजा-रानी) की नाना प्रकार दिव्य वस्त्रालंकारों से पूजा की। गर्भ-कल्याणक पूजा महोत्सव मनाया और देवियों को सेवा में तत्पर कर अपने स्थान को चले गये।

जन्म कल्याणक महोत्सव—

धीरे-धीरे गर्भ बढ़ने लगा। परन्तु माँ की उदर वृद्धि नहीं हुई। किसी प्रकार प्रमाद आदि विकार प्रकट नहीं हुआ। उत्साह, बुद्धि आदि गुण वृद्धिगत हुए। क्रमश: नव मास पूर्ण हुए। आषाढ़ कृष्णा दशमी के दिन स्वाति नक्षत्र में तेजस्वी वीर बालक को उत्पन्न किया। उसके दिव्य तेज से प्रसूति गृह ज्योतित हो गया। सर्वत्र आनन्द छा गया। नारकियों को भी साता मिली। उसी समय इन्द्र-देवों ने आकर गर्भ-कल्याणक महोत्सव मनाया।

जन्माभिषेक—

प्रात:काल ही इन्द्राणी प्रसूति गृह में जाकर बालक को ले आयी। इन्द्र हर्ष से ऐरावत गज पर आरूढ़ कर मेरु पर ले गया। १००८ विशाल कलशों से क्षीर सागर का जल लाकर महा-मस्तकाभिषेक किया। प्रभु का नाम **श्री नमिनाथ** रक्खा। **लाल कमल** का चिह्न

निर्धारित किया। पुनः माता-पिता को सौंप कर आनन्द नाटक किया और पुनः अपने-अपने स्थान पर चले गये। बाल शिशु बढ़ने लगा।

कुमार काल—

नमिकुमार स्वामी बाल-सुलभ मन-मोहक, क्रीड़ाओं में उत्तीर्ण हुए। देव और समवयस्क मनुज कुमारों के साथ कुमार काल के २५०० वर्ष समाप्त हुए। इनकी पूर्ण आयु १०००० वर्ष की थी। शरीरोत्सेध १५०० धनुष ऊँचा था। शरीर की कान्ति सुवर्ण वर्ण की थी।

विवाह और राज्य—

मोहराज का चकमा चलता ही रहता है। तीर्थङ्कर होने वाले पुण्यात्माओं को भी कुछ समय के लिए फंसा लेता है। यौवन काल ने प्रवेश किया। कामदेव ससैन्य विजयी हुआ। महाराजा विजयराज ने अनेक सुन्दरी, नव यौवना कन्याओं के साथ नमि कुमार का विवाह कर दिया। शीघ्र ही राज्याभिषेक भी इन्द्रराज की उपस्थिति में कर दिया। धन, यौवन, प्रभुता एक साथ इन्हें प्राप्त हुयी, परन्तु विवेक नहीं गया। पूर्ण न्याय, त्याग और वात्सल्य से प्रजा पालन करने लगे। राज्य में सर्वाङ्ग विकास, सुख, शान्ति छा गयी। धर्म, अर्थ, काम के साथ-साथ मोक्ष पुरुषार्थ भी वृद्धि को प्राप्त हुआ। इस प्रकार उन्होंने ५००० वर्ष पर्यन्त निष्कण्टक राज्य किया।

वैराग्योत्पत्ति—

भगवान मुनिसुव्रत के मोक्ष जाने के बाद ६० लाख वर्ष व्यतीत होने पर इनका अवतार हुआ। इनकी आयु भी इसी में गर्भित है।

वर्षा काल था। रिम-झिम फुहारें पड़ रही थीं। श्री नमिराजा वन विहार को पधारे। मेघों की निराली छटा देख रहे थे। उसी समय आकाश पथ से दो देव कुमार उतरे। आकर उन्हें नमस्कार किया। आने का कारण पूछने पर वे कहने लगे "हे देव! हम अपराजित तीर्थङ्कर देव के समवशरण से आ रहे हैं। कल वहाँ किसी ने प्रश्न पूछा था कि "इस समय भरत क्षेत्र में कोई तीर्थङ्कर है क्या?" स्वामी अपराजित अर्हत् परमेष्ठी ने कहा कि मिथिला नगरी के महाराज

नमिनाथ कुछ समय बाद तीर्थङ्कर होकर-सर्वज्ञ हो भव्यों का कल्याण करेंगे" हे नाथ ! उनकी दिव्य वाणी सुनकर आपके दर्शनों की तीव्र

अभिलाषा से स्वर्ग से हम यहाँ आये हैं। महाराज ने सब सुना और अपने नगर में लौट आये।

इस घटना से उनके मानस पटल पर पूर्व भव चलचित्र की भाँति छा गया। वैराग्य घटा उमड़ पड़ी। वे विचारने लगे "यह जीव नट की भाँति ऊँच-नीच गलियों में भेष बना-बना कर नृत्य कर रहा है। क्या मुझ जैसे सत्पुरुष, कुलीन मानव को इस प्रकार भटकना शोभनीय है ? मैं दिगम्बर मुद्रा धारण कर इस सूत्रकार कर्म शत्रु को समूल नष्ट करूँगा ? इस प्रकार विचारते ही लौकान्तिक देव जय-जय घोष करते आ पहुँचे। धन्य-धन्य कर अति हर्ष से उनके विचारों की पुष्टी की। अनुमोदना की।

तपकल्याणक —

नमिनाथ महाराज ने अपने 'सुप्रभ' पुत्र को बुलाकर राज्याधिकारी बनाया। उसी समय इन्द्र सपरिवार आया। प्रभु का दीक्षाभिषेक किया।

नाना विध रत्नालंकारों से सजाया। दिव्य वस्त्र पहनाये। "उत्तरकुरु" नामकी दिव्य पालकी में विराजमान किये। बड़े-बड़े राजाओं ने प्रथम ७ कदम तक पालकी उठायी। पुन: देवतागण वियद् मार्ग से ले उड़े। क्षण भर में चित्रवन में आ पहुँचे। वह 'चित्रवन' यथा नाम तथा गुण था। वहाँ सुन्दर शुद्ध-स्वच्छ शिला पर पूर्वाभिमुख विराजे। दो दिन उपवास की प्रतिज्ञा की, पञ्चमुष्ठी लौंच किया, बाह्याभ्यन्तर परिग्रह त्याग स्वयं सिद्ध साक्षी में १००० राजाओं के साथ सकल संयम धारण किया और आत्मध्यान में तल्लीन हो गये। आषाढ़ कृष्णा १० मी के दिन अश्विनि नक्षत्र में संध्या समय दीक्षा ली। इन्द्र ने दीक्षा कल्याणक पूजा की। केशों को रत्न पिटारे में ले क्षीर सागर में क्षेपण किया। तप धारण के साथ ही मन: पर्यय ज्ञान भी उत्पन्न हो गया। इन्द्र तप कल्याणक महोत्सव कर अपने स्थान पर गया।

चर्या—विहार—

कारण है तो कार्य होता ही है। समर्थ ध्यान के रहते असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा के साथ प्रभु योगिराज ने दो दिन पूर्ण किये। तीसरे दिन औपचारिक रूप से आहार की इच्छा से वन से चर्या मार्ग से चले। ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक परम दयालु, अहिंसक मुनिराज 'वीरपुर' नगर में प्रविष्ट हुए। शुभ शकुनों से सावधान राजा दत्त ने सप्तगुण युक्त हो नवधा भक्ति से क्षीरान्न का प्रासुक, शुद्ध निर्दोष आहार दिया। इससे उसके घर पञ्चाश्चर्य हुए। मुनीन्द्र आहार कर, वन विहार कर गये।

छद्मस्थकाल —

सर्वज्ञता पाने के पूर्व अखण्ड मौन से साधना ध्यानादि करना प्रत्येक तीर्थङ्कर का कर्त्तव्य है। अस्तु मुनीश्वर नमिनाथ भी लगातार ९ वर्ष तक शुद्ध मौन से तपोलीन रहे। विहार भी मौन पूर्वक किया।

सर्वज्ञता—केवलज्ञान कल्याणकोत्सव—

नव वर्ष का दीर्घकाल तप: साधना से आत्म शोधना करते वे जिनमुनि अपने दीक्षावन-चित्रवन में पधारे। दो दिन का उपवास धारण किया। मौलिश्री-वकुल वृक्ष के नीचे विराजे। शनै: शनै: ध्यानालीन प्रभु ने घातिया कर्मों को क्रमश: छेदना प्रारम्भ किया।

मार्गशीर्ष शुक्ला पौर्णमासी के दिन अश्विनी नक्षत्र में तीसरे शुक्लध्यान धनञ्जय में अशेष घातिया कर्मों को भस्म कर अनन्त ज्ञान-केवल ज्ञान उत्पन्न किया। भाव विशुद्धि से क्या असंभव है? कुछ नहीं। अन्त-मुहूर्त में मुनीन्द्र 'अर्हंत' हो गये जगत पूज्य बन गये। इस दशा को कौन नहीं चाहेगा? सभी चाहते हैं, पर फल चाहने मात्र से नहीं, कार्यरूप परिणत करने पर ही प्राप्त होता है। चिह्न विशेषों से ज्ञात कर इन्द्र समस्त देवों को लेकर आया। केवलज्ञान कल्याणक पूजा की। उत्सव मनाया। १००८ नामों से स्तवन कर अपूर्व पुण्यार्जन किया।

धनपति ने समवशरण रचना की। यह २ योजन अर्थात् ८ कोश लम्बा चौड़ा वृत्ताकार था। इसके मध्य विराज कर सर्वज्ञ प्रभु की दिव्यध्वनि प्रारम्भ हुयी। यह मण्डप आकाश में भूमि से ५०० धनुष ऊँचा था। चारों ओर प्रत्येक दिशा में २०-२० हजार सुवर्ण की सीढ़ियाँ थीं। इन्हें 'बकुल' वृक्ष के नीचे केवलज्ञान हुआ इससे यह अशोक वृक्ष कहलाया।

समवशरण में सुप्रभार्य आदि १७ गणधर थे, ४५० ग्यारह अंग १४ पूर्व के पाठी थे, १२६०० पाठक-उपाध्याय थे, १६०० अवधिज्ञानी, १६०० केवलज्ञानी, १५०० विक्रिया ऋद्धि धारी, १२५० मन: पर्यय-ज्ञानी एवं १००० वादी मुनिराज थे। इस प्रकार सम्पूर्ण मुनिराजों की संख्या २०००० थी। भार्गव श्री (मंगला) को आदि ले ४५००० आर्यिकाएँ थीं। अजितंजय को आदि ले १ लाख श्रावक और ३ लाख श्राविकाएँ थीं। विद्युत्प्रभ यक्ष और चामुंडी (कुसुम मालिनी) यक्षी थी। इस प्रकार अनेक देशों में विहार कर भव्यात्माओं को मोक्षमार्ग दर्शाकर योग निरोध किया।

योगनिरोध—

आयु का एक महीना शेष रहने पर भगवान ने दिव्यध्वनि बन्द कर दी। सम्मेद शिखर पर **मित्रधर** कूट पर प्रतिमा योग धारण कर विराजे। १००० मुनिराजों के साथ आत्मलीन हुए। अन्त में तृतीय शुक्ल ध्यान का प्रयोग कर ८५ प्रकृतियों का संहार करने लगे।

मोक्षकल्याणक—

अन्त में वैशाख शुक्ला १४ के दिन प्रातःकाल अश्विनी नक्षत्र में नमिनाथ स्वामी ने अ इ उ ऋ लृ लघ्वक्षर उच्चारणकाल प्रमाण चौथे

शुक्ल ध्यान से १४ वें गुणस्थान में स्थित हो अनन्त अव्याबाध सुख सम्पन्न मोक्ष को प्राप्त किया। उसी समय इन्द्रादि देवों ने आकर मोक्ष-कल्याणक पूजा-विधान महोत्सव मनाया। रत्नदीपमालिका जलायी।

इनके समय में जयसेन नाम के ११ वें चक्रवर्ती हुए। मित्रधर कूट का दर्शन करने से १ कोटि उपवास के फल की प्राप्ति होती है नमिनाथ स्वामी हमें भी मुक्ति मार्ग प्रदर्शक हों इस भाव से चरित्र पढ़ना चाहिए।

चिह्न 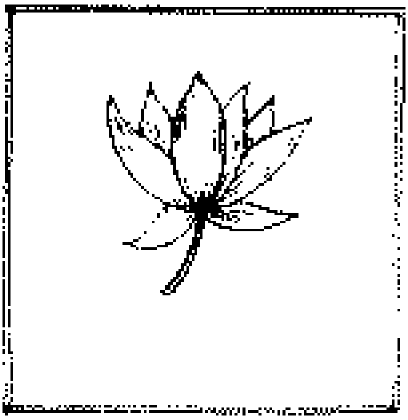 लाल कमल

प्रश्नावली---

१. नमिनाथ कौन से तीर्थङ्कर हैं ?

२. इनको पहिचानने का उपाय क्या है ?

३. आपने नमिनाथ भगवान का दर्शन किया क्या ? कहाँ किया ?

४. इनको वैराग्य किस प्रकार हुआ ?

५. इनकी जन्म नगरी, माता, पिता, दीक्षा वन, केवलज्ञान वृक्ष का नाम लिखो ?

६. राज्यकाल कितना था ? पूर्ण आयु कितनी थी ?

७. शरीर का रंग कैसा था ? मुक्ति कहाँ से और कब प्राप्त की ?

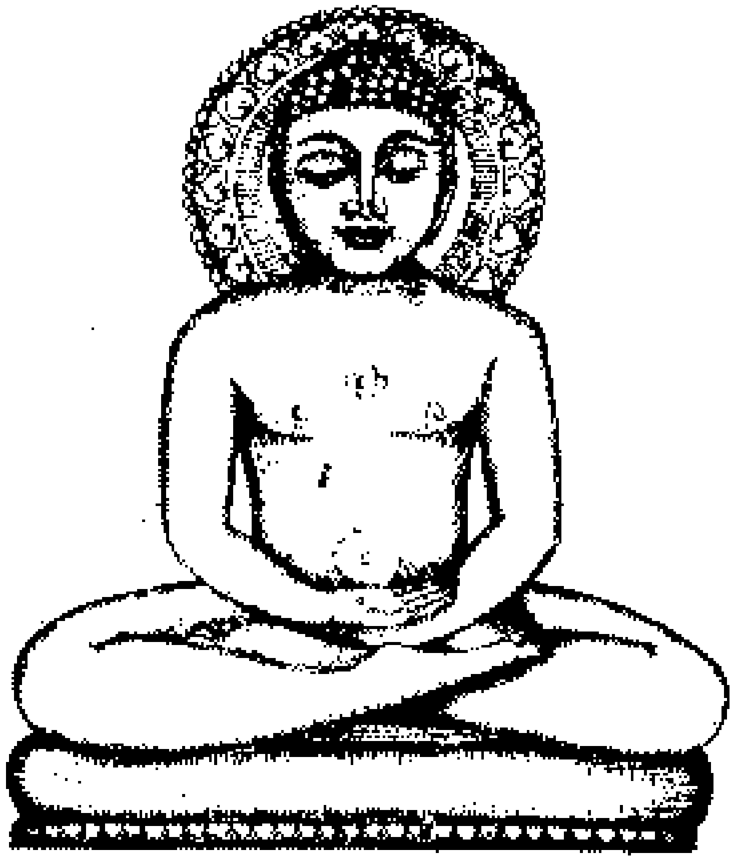

२२–१००८ श्री नेमिनाथ जी

पूर्वभवान्तर—

जीव के परिणामों की बड़ी विचित्रता है। क्षण-क्षण में कुछ से कुछ होते रहते हैं। भगवान नेमीनाथ का जीव पहले जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह के सिंहपुर नगर का अपराजित नाम का राजा था। वह बड़ा पराक्रमी और पुण्यशाली था। एक दिन उसे विदित हुआ कि उसके पिता अर्हद्दास विमलवाहन के साथ मुक्त हो गये हैं। उसी समय उसने प्रतिज्ञा की कि विमल वाहन तीर्थंकर की वाणी सुन कर ही भोजन करूँगा। आठ उपवास हो गये। इन्द्र का आसन उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा से हिल गया। कुबेर को आज्ञा दे कृत्रिम समवशरण रचकर विमलवाहन जिनराज के उपदेश कराया। अपराजित ने दर्शन, पूजन कर भोजन किया। अन्त में प्रायोपगमन मरण (सन्यास) कर अच्युतेन्द्र हुआ। २२ सागर आयु पा सुखोपभोग किये।

हस्तिनागपुर में राजा श्री चन्द्र और रानी श्रीमती से सुप्रतिष्ठित नाम का पुत्र हुआ। राज्य भोग करते उल्कापात को देख विरक्त हो दीक्षा धारण की। ११ अङ्गों का अध्ययन किया, सोलह कारण भावनाएँ भायीं और तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर समाधिमरण कर अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र हुआ। ३३ सागर की आयु, १ हाथ का शरीर, शुक्ललेश्या, ३३ पक्षबाद उच्छ्वास लेता था। ३३ हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेता था। सुखानुभव करते हुए भी तत्वानुप्रेक्षा में दत्तचित्त रहे।

वर्तमान परिचय—

जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्र के कुशार्थ देश में शौरीपुर अति रमणीक, सुविख्यात नगर था वहाँ शूरसेन नाम का राजा राज्य करता था। यह हरिवंश रूपी गगन का चमकता सूर्य था। कुछ समय बाद उसके शूरवीर नाम का पुत्र हुआ। उसकी महादेवी धारणी थी। उसके अन्धक वृष्टि और नरवृष्टि दो पुत्र हुए। अंधक वृष्टि की रानी सुभद्रा से समुद्रविजय आदि १० पुत्र हुए। समुद्रविजय की महादेवी शिवादेवी थी। महाराजा समुद्रविजय महावीर और पराक्रमी थे। जरासंध का सेनापति कालयवन कारणवश कृष्ण को मारने के लिए आया। उसका सैन्यबल अधिक है यह ज्ञात कर समुद्रविजय आदि शौरीपुर त्याग, भागकर विंध्याटवी पार कर समुद्र तट पर पहुँचे। मार्ग में इनकी कुलदेवी वृद्धा का रूप धर अनेकों चिताएँ जलाकर बैठ गयी और रोने लगी। कालयवन के पूछने पर "यदुवंशी जल मरे" कह दिया। कालयवन लौट गया। उधर कृष्ण महाराज ने आठ उपवास किये, डाभ के के आसन पर बैठ परमात्मा का ध्यान किया। फलत: नैगम नाम का देव प्रसन्न हो प्रकट होकर कहा, समुद्र के बीच १२ योजन लम्बी-चौड़ी नगरी है, वहाँ आप जाइये। उसी क्षण एक सुन्दर घोड़ा आया। कृष्ण उस पर सवार हुए और समुद्र में प्रविष्ट हो गये उनके पुण्य प्रताप से स्थल मार्ग बन गया और इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने नगरी रचना भी की। इसका नाम "द्वारावती" प्रख्यात हुआ। द्वारावती में समुद्रविजय सुख पूर्वक रहने लगे।

गर्भकल्याणक—

वर्षाकाल आने से पूर्व आकाश में गर्मी दीखने लगते हैं, नदी में बाढ़ आने वाली हो तो पानी में झाग आने दिखाई पड़ते हैं। इसी प्रकार पुण्यवान महापुरुषों के अवतार के चिन्ह भी होने लगते हैं।

महाराज समुद्रविजय का आंगन देवियों से भर गया। श्री ह्री आदि देवियां महारानी शिवादेवी की अनेकों प्रकार से सेवा भक्ति आदि करने लगीं। देवगण रत्न वर्षा करने लगे। रुचकगिरि से आई देवियां गर्भ शोधना में लग गई। यत्र-तत्र देव देवियां आज्ञा की प्रतीक्षा में उपस्थित हो गये। यह सब देख कर यदुवंशी तीर्थंकर हमारे घर में अवतरित होंगे, यह निश्चय कर हर्ष से फूले नहीं समाये। इस भाँति ६ माह हो गये। तब, कार्तिक शुक्ला षष्ठी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में रात्रि के पिछले पहर में रानी शिवादेवी ने १६ स्वप्न देखे और अन्त में विशालकाय हाथी को अपने मुख में प्रविष्ट होते देखा। स्वप्नान्तर बन्दीजनों के मंगल गीत वादित्रों के साथ निन्द्रा भंग हुई। परमशुद्ध सिद्ध परमेष्ठी का स्मरण करते हुए शैया तज महानन्द से नित्य क्रिया की। पतिदेव के पास पहुँच स्वप्नों का फल जानने की अभिलाषा की।

"हे मंगलरूपिणी आज तुम्हारे पवित्र गर्भ में जयन्तविमान से च्युत होकर अहमिन्द्र का जीव आया है। नौ माह बाद महायशस्वी तीर्थंकर बालक उत्पन्न होगा।" कह, महाराजा ने हर्षातिरेक से रानी को देखा। उसी समय आकाश 'जय जय' नाद से गूंज उठा। इन्द्र, देव, देवियां दल-बल से आये। नाना प्रकार वस्त्रालंकार उत्तमोत्तम पदार्थों से दम्पत्ति का आदर सत्कार किया। गर्भकल्याणक महा महोत्सव मनाया। जहाँ स्वयं देव देवियां परिचारिका का काम करें उनके सुखोपभोग और आनन्द का क्या कहना ?

जन्मोत्सव—जन्म कल्याणक—

क्रमशः नव मास पूर्ण हुए। माता का बल, तेज, पराक्रम, ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ते गये। श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन चित्रा नक्षत्र में जिसकी कान्ति से प्रसूति गृह प्रकाशित हो उठा, सुवासित हो गया ऐसे अद्भुत पुत्र रत्न को जन्म दिया। तीनों लोक हर्षांकुरों से भर गये। प्राणीमात्र क्षणभर को आनन्द में डूब गये। स्वयं स्वभाव से हुए सिंहनाद आदि को सुन चारों प्रकार के देव देवांगनाएँ सौधर्मेन्द्र और शची के साथ द्वारिका में आये। इन्द्र ने सद्योजात बालक को इन्द्राणी से मंगा, सुमेरु पर लेजाकर १००८ सुवर्ण कलशों से जन्माभिषेक किया। सभी देव देवियों ने भी उसका अनुकरण किया अर्थात्

अभिषेक किया। इन्द्राणी ने देवियों के साथ उनका शृंगार किया। पुनः द्वारिका में ला माता-पिता को अर्पण कर 'आनन्द नाटक' किया। देव देवियों को बाल रूप बना बाल तीर्थंकर के साथ खेलने-कूदने, सेवादि करने की आज्ञा दी। बालक का नाम **नेमिनाथ** प्रख्यात किया। इन्द्र ने स्वयं जन्मकल्याणक पूजा की और स्वर्ग चला गया। द्वारावती में घर-घर अनेक उत्सव किये गये। उनका चिन्ह **शंख था**। वे अपनी मधुर चेष्टाओं से मयंकवत् बढ़ने लगे। भगवान नमिनाथ के मोक्ष जाने के बाद ५ लाख वर्ष बीतने पर इनका अवतार हुआ। इनकी आयु १००० वर्ष भी इसी में है। शरीर १० धनुष ऊँचा (४० हाथ) था। **वर्ण** मयूर ग्रीवा सदृश **नील** था।

जन्म से ही नेमिनाथ निर्मल मति, श्रुत और अवधिज्ञानी थे। इनके पिता समुद्र विजय ने राज्यभार अपने भाई के पुत्र कृष्ण को दे दिया था। कृष्ण जरासंध पर चढ़ाई करने जा रहे थे उस समय नेमि कुमार से पूछा "भगवन्! इस युद्ध में मेरी विजय होगी या नहीं?" प्रभु अवधि से विजय ज्ञात कर मात्र मुस्कुराये। इससे कृष्ण अपनी विजय जान हर्षित हो गये। विजय प्राप्त की।

कुमार काल—

नेमिनाथ ने अपने बल से श्री कृष्ण को परास्त कर दिया था, शंख फूंका, नागशैया पर सोये, धनुष चढ़ाया इत्यादि कौतुकों से वे सबको चकित कर चुके थे। उनकी प्रशंसा के नारे चारों ओर गूंजते। परन्तु नेमि कुमार को तनिक भी गर्व नहीं था। तो भी कृष्ण महाराज उनके प्रति शंकाकुल रहते थे। परम्परा से राज्याधिकारी नेमि स्वामी थे और बलवान भी इस लिए कृष्ण सतत् भयभीत रहने लगे। नेमि प्रभु भी ३०० वर्ष पार करने वाले थे।

विवाह प्रस्ताव—

श्री कृष्ण ने समुद्र विजय, बलदेव आदि से नेमि कुमार का विवाह करने की सलाह की। सबकी अनुमति पाकर जूनागढ़ के राजा उग्रसेन से सर्वाङ्ग सुन्दर, गुणज्ञ कन्या राजमती (राजुल) के साथ विवाह करना निश्चित किया। शंका शंकु समान होती है, उससे मानव को चैन नहीं मिलता। अस्तु कृष्ण ने षडयन्त्र रचा। बारात जाने के मार्ग में पशुओं को घिरवा दिया।

बन्ना (दुल्हा) नेमिनाथ राजप्रासाद के पास बाड़े में मूक पशुओं की करुण पुकार सुनकर

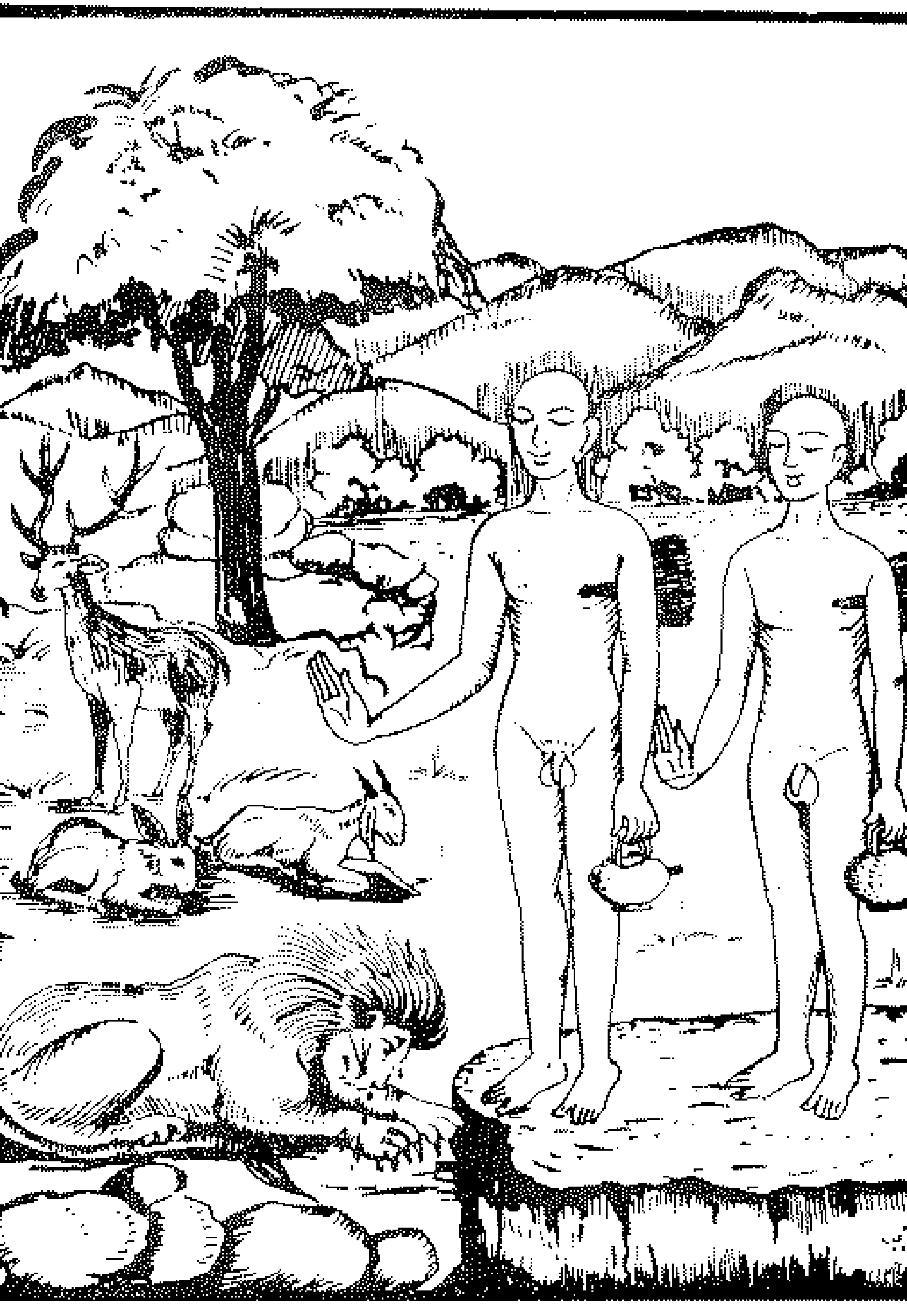

भगवान महावीर का पूर्व दसवां भव सिंह योनि में।

श्रावण शुक्ला ६ को बारात रवाना हुयी। नेमि कुमार का रथ सबसे आगे था। पशु-पक्षियों के बाड़े के पास रथ जा पहुँचा, कुमार दूल्हा ने कारण पूछा तो पता चला कि कृष्ण महाराज ने उनके विवाह में आने वाले क्षत्रियों को मांसाहार के लिए एकत्रित कराये हैं। सुनते ही उनकी अन्तरात्मा थरा थरा उठी। गात कांपने लगा। उन्होंने अवधि से कृष्ण की कलुषित भावना पहिचानी। क्षणिक राज वैभव के लिए, विषयभोगों को यह निरीह हत्या! धिक्कार है इस अमानुषिक क्रिया को। मेरे लिए हत्या, निरपराध, जीवों का घात। हाय-हाय यह कैसा अनाचार है, अत्याचार है। मैं पल भर भी यहाँ नहीं ठहर सकता? उन्होंने शीघ्र बाड़ा खुलवाया। सभी पशु पक्षियों को मुक्त किया और स्वयं मुक्त होने का निश्चय किया। उनके सुदृढ़ वैराग्य को सुन उग्रसेन, समुद्र विजय, बलदेव, कृष्ण आदि आये। किन्तु क्या होता? मच्छरों का समूह क्या पर्वत को चला सकता है?

उसी समय वहीं लौकान्तिक देव आये। वैराग्य पोषण कर चले गये।

निष्क्रमण कल्याणक—

जूनागढ़ में चारों ओर हा हा कार मच गया। क्या हुआ? क्यों हुआ? कैसे हुआ? आदि प्रश्नोत्तरों की गूंज होने लगी। इधर सौधर्मेन्द्र सपरिवार आया। वहीं प्रभु का दीक्षाभिषेक किया। वस्त्रालंकार पहिनाये और "उत्तर कुरु" नामकी पालकी में सवार कर "सहस्राम" वन में ले गये। वहाँ उन वीतराग भाव में आप्यायित प्रभु ने "नमः सिद्धेभ्यः" कर सिद्ध साक्षी में श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन चित्रा नक्षत्र में सायंकाल तेला का नियम लेकर परम सुखकारी सर्वोत्तम दैगम्बरी दीक्षा धारण की। पंचमुष्ठी लौंच किया। निश्शेष बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग किया और आत्मध्यान में लीन हो गये। आपके साथ १००० राजाओं ने दीक्षा धारण की। उसी समय उन्हें मनः पर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ।

अत्यन्त सुकुमारी, लाडली, विशुद्ध परिणाम युत कुमारी राजुल ने भी यह कह कर कि, "श्रेष्ठ कुलवन्ती कुमारी का एक ही वर होता है, मन से जिसे पति रूप स्वीकार कर लिया वही पति होता है।" आर्यिका दीक्षा धारण कर ली।

इन्द्र, देव, देवांगनाएँ, उग्रसेन, समुद्र विजय, कृष्ण आदि राजा, महाराजा सभी ने उन परम पितास्वरूप मुनीश्वर की परम भक्ति से पूजा की, स्तुति की और अपने अपने स्थान पर चले गये।

पारणा—

तीन दिवस पूर्ण कर सज्जनोत्तम श्री नेमीश्वर गुरुदेव आहार के लिए चर्या मार्ग से आये। द्वारावती में प्रविष्ट होते ही महाराज वरदत्त ने बड़े संभ्रम के साथ भक्ति श्रद्धा से पडगाहन किया। नवधा भक्ति पूर्वक निर्दोष, शुद्ध प्रासुक क्षीरान्न का आहार दिया। उनके घर पञ्चाश्चर्य हुए। १२।। करोड़ रत्न वर्षे, पुष्पवर्षा हुयी, शीतल मन्द सुगन्ध बहने लगी, दुदुभी बाजे आकाश में गूँज उठे, जय जय, अहोदान, धन्य पात्र, धन्य दाता आदि शब्द देवों द्वारा व्याप्त हुए। प्रभुवर पुनः तपस्या लीन हो गये। इस प्रकार तपोनिष्ठ स्वामी ने अखण्ड मौन सहित ५२ दिन व्यतीत किये। पुनः तेला का नियम कर रैवतिक-गिरनार पर्वत (उर्जयन्तगिरि) पर आ विराजे। बांस के वृक्ष के नीचे विराजे ध्यान-मग्न प्रभु की आत्म ज्योति शरीर के रोमों से निकल सर्वत्र व्याप्त हो गई।

केवलोत्पत्ति, ज्ञान कल्याणक—

छद्मस्थ काल के ५६ दिन हो गये। अब आसोज शुक्ला प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल चित्रा नक्षत्र में लोकालोक प्रकाशक, चराचरावभासी पूर्ण ज्ञान उत्पन्न हुआ। अर्हत अवस्था प्राप्त हुई-सर्वज्ञ हुए। इन्द्रादि देवों ने आकर ज्ञान कल्याणक पूजा महोत्सव कार्य सम्पन्न किया। कुबेर ने १।। योजन (६ कोश) विस्तार में गोलाकार समवशरण रचना कर जिनेश्वर स्वामी का दिव्यध्वनि द्वारा धर्मोपदेश कराया। भगवान ने ५६ दिन का मौन भंग कर भव्य जीवों को धर्मामृत पान कराया। षट् द्रव्य, नव पदार्थ आदि का विशद विवेचन किया। केवलोत्पत्ति का समाचार पाकर कृष्ण, बलभद्र, अपने-अपने परिवार सहित आये और अपने-अपने भवान्तर पूछे। इनका यक्ष सर्वाण्ह और यक्षी कूष्माण्डिनी देवी है।

समवशरण

आपके समवशरण में वरदत्त आदि ग्यारह (११) गणधर थे। ४०० श्रुत केवली थे, ११८०० शिक्षक-उपाध्याय थे, १५०० अवधि-

ज्ञानी, ९०० मनः पर्यय ज्ञानी, १५०० केवली, ११०० विक्रिया ऋद्धि-धारी, और ८०० वादी थे। इस प्रकार समस्त मुनिश्वर १८००० थे। यक्ष श्री, राजमती आदि ४००० आर्यिकाएँ थीं, १ लाख श्रावक और ३ लाख श्राविकाएँ, असंख्य देव देवियाँ, संख्यात तिर्यञ्च थे। इन सबके साथ उन्होंने अनेकों आर्य देशों में विहार कर धर्मामृत वर्षण किया। मोक्ष मार्ग प्रकट किया। उन्होंने ६९९ वर्ष ९ महीना और ४ दिन तक विहार किया। धर्मोपदेश दिया।

योग निरोध—

आयु का १ माह शेष रहने पर पुनः दिव्य वाणी का संकोच कर भगवान **ऊर्जयन्त गिरि (गिरनार)** पर आ विराजे। ५३३ मुनियों के साथ योग निरोध कर पद्मासन से ध्यान निमग्न हो शेष अघातिया कर्मों के नाश में जुट गये। आषाढ़ शुक्ला ७ मी के दिन चित्रा नक्षत्र में प्रदोष काल (रात्रि के प्रथम पहर) में परम शुक्ल ध्यान से समस्त अघातिया कर्मों का नाश किया। ५३६ मुनीश्वरों ने उनके साथ सिद्ध-पद प्राप्त किया। इनके बाद ४ अनुबद्ध केवली हुए। मुक्ति प्रयाण करते ही इन्द्र, देव, देवियों ने ऊर्जयन्त गिरि पर आकर निर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाया। सिद्ध क्षेत्र पूजा की।

हमारे भव विनाशक श्री बालब्रह्मचारी नेमिश्वर प्रभु जयशील हों। हमें भी मुक्तिधाम पाने की शक्ति प्रदान करें। १२ वाँ चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त भी इनके राज्य में हुआ था।

चिह्न 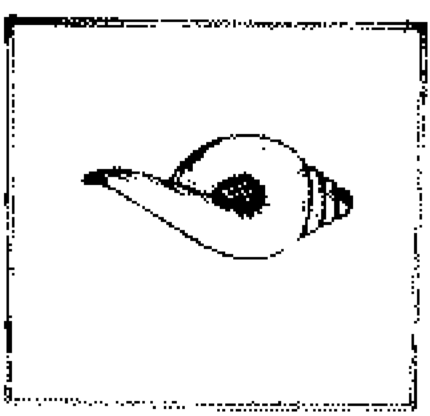 शङ्ख

प्रश्नावली —

१. नेमिनाथ स्वामी ने विवाह क्यों नहीं किया ?

२. राजुल ने दीक्षा क्यों धारण की ?

३. नेमिनाथ की जन्म भूमि, तिथि बताओ ? माता-पिता का नाम क्या है ?

४. दीक्षा कहाँ ली ? केवलज्ञान कहाँ हुआ ?

५. निर्वाण तिथि क्या है ?

६. जन्मोत्सव किसने मनाया ? कहाँ हुआ ?

७. आपने कौन कल्याणक देखे हैं ? आप कोई कल्याणक मनाते हैं क्या ? नाम बताओ ?

भगवान मुनिसुव्रत नाथ जी (२०वें तीर्थङ्कर) से सम्बन्धित प्रश्न

१. इनके वैराग्य का कारण क्या है ?

२. राज्य काल कितना है ?

३. इनके माता-पिता, जन्म स्थान का नाम क्या है ?

४. तप कल्याण तिथि क्या है ?

५. आपको कौनसा कल्याण पसंद है ?

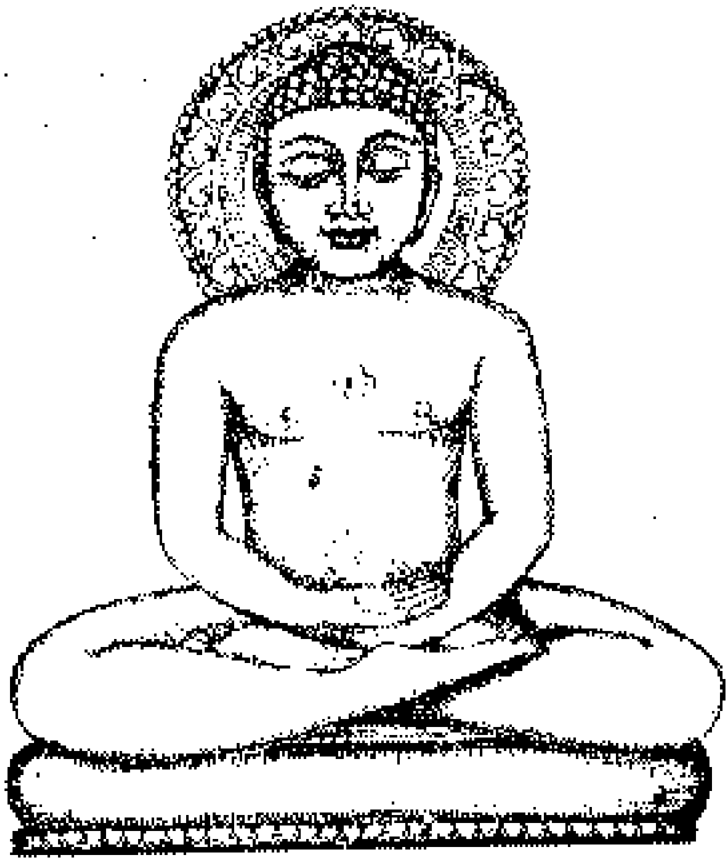

२३-१००८ श्री पार्श्वनाथ जी

पूर्वभव परिचय—

जम्बूद्वीप के कौशल देश में अयोध्या नगरी अति पुनीत पुरी है। प्रत्येक कर्मभूमि में २४ तीर्थंकरों को जन्म देने का इसे वरदान प्राप्त है। किसी समय इक्ष्वाकुवंशी राजा वज्रबाहु इसका पालन कर रहा था। उसकी प्रियतमा का नाम प्रभाकरी था। यह वस्तुतः अनेक स्त्रियोचित गुणों की कान्ति थी। पुण्य योग से इनके आनन्द नाम का पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। आनन्द सचमुच आनन्द था। शरद के इन्दु समान सबको आनन्द देने वाला था। जन-जन के नयनों का तारा और कण्ठहार था। गुणाढ्य, वयाढ्य होने पर यह महामण्डलेश्वर राजा हुआ। यह प्रजा-वत्सल, उदार, जिनभक्त, धर्मप्रेमी और दयालु था। इसका पुरोहित भी इसी समान धर्मानुरागी था। उसका नाम स्वामिहित यथार्थ था।

एक दिन स्वामिहित के द्वारा आष्टान्हिका व्रत का माहात्म्य सुनकर राजा ने फाल्गुन मास अष्टान्हिका में बड़ी भारी पूजा की। पत्नी सहित

सविधि अभिषेक पूजा की । उसे देखने को विपुलमती नाम के मुनिराज पधारे । राजा ने विनय पूर्वक उनकी वन्दना की विनय से उच्चासन प्रदान कर सद्धर्म श्रवण किया । पूजाविधि समाप्त कर उसने विनम्रता से प्रश्न किया "गुरुदेव, जिनेन्द्र प्रभु की प्रतिमा अचेतन है, यह किसी का हिताहित नहीं कर सकती फिर उसकी पूजा करने से क्या लाभ है ? शान्तचित्त, प्रसन्न मुद्रा मुनिराज बोले, राजन् आपका कहना सत्य है, जिन प्रतिमा जड़ रूप है, किसी को कुछ दे नहीं सकती । परन्तु उसके सौम्य, शान्त आकार को देखकर हृदय में वीतराग भावों की तरंगें लहराने लगती हैं, शान्त भाव, साम्य भाव, उठने लगते हैं, कषाय शत्रुओं की धींगाधींगी एकदम बन्द हो जाती है । आत्मा के सच्चे स्वरूप का पता चल जाता है । जिस आकार की उपासना की जाती है उसी आकार का प्रतिबिम्ब हृदय पर अंकित होता है । परम वीतराग मुद्रा रूपी मूर्ति का दर्शन करने से राग-द्वेष का शमन होता है । जैसा कारण वैसा कार्य होता है । अतः जिन चैत्य और चैत्यालय के दर्शन से पूजन से अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है, पापबन्ध रुक जाता है, पुण्यबन्ध होता है । इसलिए प्रथम अवस्था में जिनेन्द्र प्रतिमाओं की अर्चा-पूजा करना अत्यावश्यक है । फिर इसके अभाव में "श्रावकत्व" भी सिद्ध नहीं होता । इस प्रकार कह उन मुनीश्वर ने अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन करते हुए आदित्यविमानस्थ जिनालय और श्री पद्मप्रभु जिन बिम्ब का विस्तृत वर्णन किया ।

राजा ने सूर्य बिम्बस्थ जिन बिम्बों को लक्ष्य कर भक्ति से नमस्कार किया । समस्त प्रजा ने उसका अनुकरण किया । पुनः उसने सूर्य विमान के आकार का चमकीले रत्नों से विमान बनाकर उसमें १०८ रत्नमयी जिनबिम्ब प्रतिष्ठित करा कर पूजा करने लगा । तभी से सूर्य नमस्कार और पूजा की प्रथा प्रारम्भ हुयी, जो आज मिथ्या रूप से प्रचलित है ।

एक दिन राजा ने अपने शिर में सफेद बाल देखा । मृत्यु का वारेण्ट है, सोचकर वैराग्य उत्पन्न हुआ, ज्येष्ठ पुत्र को विशाल राज्य समर्पित कर स्वयं समुद्रदत्त मुनिराज के चरणों में दीक्षा धारण की । चारों आराधनाओं की आराधना की । परम विशुद्ध हृदय से १६ कारण भावनाएँ भायीं । ग्यारह अङ्ग के पाठी हुए । तीर्थंकर पुण्य प्रकृति का बंध किया । प्रायोपगमन सन्यास धारण कर क्षीर वन में ध्यानस्थ हो गये । निराकुल आत्मध्यान करने लगे । उसी समय पूर्वभव का वैरी

कमठ का जीव इसी वन में सिंह हुआ था वहाँ आया। मुनिराज को देखते ही झपटा और पैने नखों से उनका कण्ठ विदीर्ण कर डाला। साम्यभाव से उपसर्ग विजय कर आनन्द ऋषिराज समाधिकर आनत स्वर्ग के प्राणत विमान में आकर इन्द्र उत्पन्न हुए। २० सागर की आयु थी। शुक्ल लेश्या थी। १० माह बाद श्वास और २० हजार वर्ष बाद मानसिक आहार लेते थे।

स्वर्गावतरण--गर्भकल्याणक—

कारण के अनुसार कार्य होता है। पुण्य पुरुषों के निमित्त से द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव भी पुण्यमय हो जाते हैं। इन्द्र की आयु ६ माह रह गई। इधर जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रान्तर काशीदेश की वाराणसी में पुण्यांकुर उत्पन्न होने लगे। महाराज विश्वसेन का काश्यप गोत्र चमक उठा। उनकी पटरानी वामादेवी (ब्रह्मादेवी) का भाग्योदय हुआ। उनकी सेवा-सुश्रुषा, परिचर्यार्थ, श्री ह्री आदि ५६ कुमारियाँ देवी तथा अन्य अनेकों देवियाँ स्वर्गीय दिव्य पदार्थों को ला लाकर उपस्थित होने लगीं। रुचकगिरी वासी देवबालाएँ अत्यन्त सुरभित पदार्थों से महादेवी को गर्भ शोधना करने लगीं। आंगन में देवगण प्रतिदिन १२॥ करोड़ अमूल्य रत्नों की वर्षा करने लगे। चारों ओर राज प्रसाद देव-देवीयों के संचार से भर गया। इस प्रकार ६ माह पूर्ण हुए।

वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन विशाखा नक्षत्र में रात्रि के पिछले प्रहर में रानी वामादेवी ने सुर-कुञ्जर आदि १६ स्वप्न देखे। स्वप्नान्तर अपने मुख में विशालकाय एक मत्त गज प्रविष्ठ होते देखा। मांगलिक वाद्य और गान के साथ निद्रा भंग हुयी। सिद्ध प्रभु का नामोच्चारण कर शैया का त्याग किया। देवियों ने मंगल स्नान कराया। वस्त्रालंकारों से अलंकृत किया। प्राणनाथ से स्वप्नों का फल पूछा। उन्होंने हसते हुए कहा "आज तुम्हारे गर्भ में २३ वें तीर्थंकर ने अवतार लिया है। नौ माह बाद तुम्हें उत्तम पुत्र रत्न प्राप्त होगा।" सुनते ही उस माँ का शरीर हर्ष से रोमांचित हो गया। आनन्द से फूली नहीं समायी। उसी समय देवेन्द्रों ने आकर विशेष रूप से दम्पत्ति का वस्त्रालंकारों से सत्कार किया-पूजा की। गर्भकल्याणक महोत्सव मनाया। स्तुति कर स्वर्ग चले गये।

जन्मकल्याणक—

नाना प्रकार आमोद-प्रमोद से नवमास पूर्ण हो गये। शुभ घड़ी आई। पौष कृष्णा एकादशी के दिन अनिल योग में महा प्रतापी १० अतिशयों से युक्त, अद्भुत सौन्दर्य प्रभा से युक्त बालक को जन्म दिया। तीनों लोक क्षुभित हो गये। सब ओर आनन्द छा गया। नारकी भी क्षणभर को सुखी हुए। उसी समय सौधर्मेन्द्र आदि देवगण स्व-स्व परिवार सहित आये। हर्ष भरे नाना प्रकार नृत्य, गीत, संगीतादि से उत्सव करने लगे। शचि द्वारा लाये गये बाल तीर्थङ्कर को सहस्र नेत्रों से निहारता इन्द्र सुमेरू पर ले गया। वहाँ पाण्डुक शिला पर १००८ क्षीर सागर के विशाल कुम्भों से श्री जिन बाल प्रभु का भक्ति, विनय से जन्माभिषेक किया। उनका नाम **पार्श्वनाथ** विख्यात किया। **सर्प** का चिह्न घोषित किया। इन्द्राणी द्वारा वस्त्रालंकारों से सज्जित कर वापिस वाराणसी आये। माँ की अङ्क में शिशु प्रभु को विराजमान कर इन्द्र ने "ताण्डव नृत्य-आनन्द नाटक किया। भक्ति से गद् गद् इन्द्रादि गण जन्म कल्याणक महा महोत्सव सम्पन्न कर अपने-अपने स्थान पर गये।

बालरूपी धारी देव-देवियों के साथ हंसते-खेलते कूदते धीरे-धीरे श्री प्रभु राजघराने में बढ़ने लगे। भगवान नेमिनाथ स्वामी के मुक्ति जाने के बाद ८३७५० वर्ष के बाद पार्श्वनाथ स्वामी हुए। इनकी आयु १०० वर्ष भी इसी में सम्मिलित है। शरीरोत्सेध (ऊँचाई) ६ हाथ थी। वर्ण पन्ना **हरित वर्ण** था। इनका वंश उग्रवंश था। धीरे-धीरे बाल्यकाल समाप्त हुआ। कुमारावस्था में प्रविष्ट हुए।

कुमार काल—

षोडष (१६) वर्षीय कुमार पार्श्वनाथ एक दिन अपने इष्ट मित्रों के साथ क्रीडार्थ उद्यान में गये। आते समय मार्ग में उन्होंने एक महीपाल नामक तापसी को पंचाग्नि तप करते देखा। वह उनका नाना ही था। यह कमठ का ही जीव था। पार्श्वनाथ और उनका मित्र सुभौम उसको बिना नमस्कार किये उसके सामने जा खड़े हुए। तापस को उनके इस आचरण से बहुत कोप हुआ, उसका मान शिखर चूर-चूर होने लगा। वे अन्दर ही अन्दर क्रोधाग्नि में झुलस ही रहा था कि कुमार बोले, "बाबा, आप महा पाप कर रहे हैं। हिंसा में धर्म नहीं हो

अपने नाना कुतापसी की पंचाग्नि तप के लक्कड़ से निकाले अधजले
नागयुगल को कुमार पार्श्वनाथ णमोकार मंत्र-उपदेश देते हुए।

कमठ द्वारा भगवान पार्श्वनाथ पर भयंकर उपसर्ग, जिससे देव धर्णेन्द्र एवं
पद्मावती नाग नागिनी रूप में रक्षा करते हुए।

सकता ।" अरे, "ए कल के छोकरे क्या कहता है ? कहाँ हिंसा है ? मुझे पापी कहते शर्म नहीं आती ।" भल्लाते हुए तापसी बोला । सुभौम ने कुलप की निन्दा कर उसे और भड़काया । प्रभु कुमार ने शान्त भाव से लक्कड़ में जलते नाग-नागिन के जोड़े को निकलवाया, उन्हें करुणा-भाव से पञ्च नमस्कार मन्त्र भी सुनाया जिसके प्रभाव से वे दोनों शान्तचित्त से मर कर धरणेन्द्र और पद्मावती हुए । तापस को समझाने पर भी उसने अपना हठ नहीं छोड़ा । आर्तध्यान से मर कर संवर नाम का ज्योतिषी देव हुआ ।

अयोध्यापति जयसेन ने एक समय इन्हें उत्तमोत्तम उपहार भेट में भेजे । उपहार स्वीकार कर दूत से अयोध्या नगरी का महत्व पूछा । श्री वृषभ तीर्थङ्कर आदि की गौरव गाथा सुनते ही उन्हें जाति स्मरण हो गया । प्रबुद्ध हुए । विचारने लगे ओह, मैं भी तो तीर्थङ्कर हूँ । पर मैंने यूं ही ३० वर्ष गमा दिये । पाया क्या ? अब शीघ्र आत्म स्वरूप प्राप्त करूँगा । विरक्त होते ही सारस्वतादि लौकान्तिक देव आये और उनके विचारों की पुष्टी कर चले गये । राजा विश्वसेन आदि ने बहुत समझाया, विवाह एवं राज्य करने का आग्रह किया । परन्तु क्या कोई बुद्धिमान प्रज्वलित अग्नि देखते हुए उसका स्पर्श करेगा ? कभी नहीं । उसी समय इन्द्र आ गया ।

दीक्षाकल्याणक—

इन्द्र ने असंख्य देव देवियों के साथ प्रभु का दीक्षाभिषेक किया । नाना अलंकारों से सजाया, उत्तमोत्तम वस्त्र पहनाये । "विमला" नाम की दिव्य पालकी लाए । प्रभुजी अनेकों राजकुमारियों के आशा बन्धन तोड़ शिविका में सवार हुए । 'अश्व' नामक वन में पहुँचे । तेला का नियम कर सिद्ध साक्षी में जिनलिङ्ग धारण किया । इनके साथ ३०० राजा दीक्षित हुए । इन्द्र ने भी दीक्षा कल्याणक महोत्सव मना, अनेक प्रकार मुनि तीर्थङ्कर की पूजा कर अपने स्वर्गलोक में गये । उनकी आत्म विशुद्धि के प्रसार से दीक्षा लेते ही उन्हें मनः पर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया ।

आहार—प्रथम पारणा—

तीन उपवासों के बाद चौथे दिन वे विरक्त तपोधन, महामौनी आहार के लिए निकले । वहाँ धन्य नामक राजा ने विधिवत् पडगाहन

सकता।" अरे, "ए कल के छोकरे क्या कहता है? कहाँ हिंसा है? मुझे पापी कहते शर्म नहीं आती।" झल्लाते हुए तापसी बोला। सुभौम ने कुतप की निन्दा कर उसे और भड़काया। प्रभु कुमार ने शान्त भाव से लक्कड़ में जलते नाग-नागिन के जोड़े को निकलवाया, उन्हें करुणा-भाव से पञ्च नमस्कार मन्त्र भी सुनाया जिसके प्रभाव से वे दोनों शान्तचित्त से मर कर धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। तापस को समझाने पर भी उसने अपना हठ नहीं छोड़ा। आर्तध्यान से मर कर संवर नाम का ज्योतिषी देव हुआ।

अयोध्यापति जयसेन ने एक समय इन्हे उत्तमोत्तम उपहार भट में भेजे। उपहार स्वीकार कर दूत से अयोध्या नगरी का महत्व पूछा। श्री वृषभ तीर्थङ्कर आदि की गौरव गाथा सुनते ही उन्हें जाति स्मरण हो गया। प्रबुद्ध हुए। विचारने लगे ओह, मैं भी तो तीर्थङ्कर हूँ। पर मैंने यूं ही ३० वर्ष गमा दिये। पाया क्या? अब शीघ्र आत्म स्वरूप प्राप्त करूँगा। विरक्त होते ही सारस्वतादि लौकान्तिक देव आये और उनके विचारों की पुष्टी कर चले गये। राजा विश्वसेन आदि ने बहुत समझाया, विवाह एवं राज्य करने का आग्रह किया। परन्तु क्या कोई बुद्धिमान प्रज्वलित अग्नि देखते हुए उसका स्पर्श करेगा? कभी नहीं। उसी समय इन्द्र आ गया।

दीक्षाकल्याणक---

इन्द्र ने असंख्य देव देवियों के साथ प्रभु का दीक्षाभिषेक किया। नाना अलंकारों से सजाया, उत्तमोत्तम वस्त्र पहनाये। "विमला" नाम की दिव्य पालकी लाए। प्रभुजी अनेकों राजकुमारियों के आशा बन्धन तोड़ शिविका में सवार हुए। 'अश्व' नामक वन में पहुँचे। तेला का नियम कर सिद्ध साक्षी में जिनलिङ्ग धारण किया। इनके साथ ३०० राजा दीक्षित हुए। इन्द्र ने भी दीक्षा कल्याणक महोत्सव मना, अनेक प्रकार मुनि तीर्थङ्कर की पूजा कर अपने स्वर्गलोक में गये। उनकी आत्म विशुद्धि के प्रसार से दीक्षा लेते ही उन्हें मन: पर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया।

आहार—प्रथम पारणा—

तीन उपवासों के बाद चौथे दिन वे विरक्त तपोधन, महामौनी आहार के लिए निकले। वहाँ धन्य नामक राजा ने विधिवत् पड़गाहन

कर उन्हें प्रासुक आहार दिया और पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये। पुनः प्रभु वन विहार कर गये। इस प्रकार चार, छः, दस आदि उपवासों के साथ मौन से ध्यान करते रहे। आत्मान्वेषण में संलग्न हुए।

छद्मस्थ काल—

तपोलीन श्रेष्ठ मुनिश्वर के छद्मस्थ काल के कुछ कम ४ माह पूर्ण हुए। तब वे ७ दिन का उपवास ले उसी दीक्षा वन में आम्रवृक्ष के नीचे आ विराजे। वे ध्यान में मेरुवत अचल हो गये। आत्मस्वरूप ही उनके सामने था।

उपसर्ग निवारण—

उसी समय तापसी का जीव संवर ज्योतिषी देव वहाँ से निकला। उसका विमान अचानक रुक गया। इधर-उधर कारण खोजने पर परम दिगम्बर मुनि पुंगव पार्श्वनाथ पर दृष्टि पड़ी। पूर्व बद्ध वैर का स्मरण कर आग-बबूला हो गया। घोर उपसर्ग करना प्रारंभ किया। प्रथम घोर शब्द किये। पुनः लगातार ७ दिन तक घोर भयंकर जल-वृष्टि, उपल (ओला) वृष्टि, अशनि (बिजली) पात आदि किया। परन्तु वे सुमेरु सदृश 'अचल' रहे। सर्प-सर्पिणी जो धरणेन्द्र-पद्मावती हुए थे, उन्होंने अपने अवधिज्ञान से उपसर्ग जानकर प्रत्युपकार की भावना से वहाँ आये। भगवान का घोर उपसर्ग देखकर स्तंभित और चकित हुए। उसी समय पद्मावती ने फरण फैलाया और प्रभु को ऊपर उठाया धरणेन्द्र ने छत्रवत अपना वज्रमयी फण तान दिया। उपसर्ग दूर होते ही ध्यान की एकाग्रता से प्रभु क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हुए। बिजली के शॉट से भी अधिक तीक्ष्ण ध्यान कुठार से खटाखट घातिया कर्मों की जंजीरें कट गईं।

केवलज्ञान कल्याणक—

संवर लज्जा से अभिभूत हुआ। क्षमा याचना की। चरणों में पड़ गया। शुद्ध सम्यक्त्व धारण किया। उसी समय चैत्र कृष्णा चतुर्थी के दिन विशाखा नक्षत्र में पार्श्वनाथ अर्हन्त, यथार्थ तीर्थङ्कर भगवान सर्वज्ञ परमेष्ठी बन गये। प्रातःकाल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। देवेन्द्र, देवों ने आकर ज्ञान कल्याणक पूजा की। कुबेर ने समवशरण रचना की।

जो १½ योजन अर्थात् ५ कोश लम्बा-चौड़ा गोलाकार था। मध्य में १२ सभाओं से वेष्टित गंधकुटी में आठ प्रातिहार्यों से समन्वित भगवान विराजमान हुए। सकलज्ञ प्रभु ने चार महिने का मौन समाप्त कर भव्य जीवों का कल्याण करने वाला मोक्ष मार्ग का सदुपदेशामृत वर्षण किया। ५ माह कम ७० वर्ष तक सम्पूर्ण आर्यखण्ड की पुण्य भूमि को धर्मामृत से अभिषिञ्चन कर योग निरोध किया। इनके समवशरण में स्वयम्भू आदि १० गणधर थे। सामान्य केवलियों की संख्या १००० श्रुत केवली २५०, उपाध्याय परमेष्ठी १०६००, मनः पर्यय ज्ञानी ७५०, विक्रिया ऋद्धि धारी १०००, अवधिज्ञानी १४००, उत्तम वादी ६०० थे। सम्पूर्ण मुनिगण १६००० थे। श्री सुलोचना मुख्य गणिनी को लेकर ३८००० आर्यिकाएँ थीं। मुख्य श्रोता अजित को लेकर १ लाख श्रावक, ३ लाख श्राविकाएँ थीं। मुख्य यक्ष धरणेन्द्र और यक्षी पद्मावती माता थीं। केवलज्ञान प्राप्ति का वृक्ष देवदारू था। पूर्वाण्ह काल में इन्हें सकलज्ञान पैदा हुआ था। समवशरण में परमौदारिक शरीर के माहात्म्य से चारों ओर मुख दिखाई देता था। उस समय इनके प्रभाव से हठ वादियों को भयंकर भय हो गया था। इन्हीं के समवशरण से अहंकारी मस्करीपूर्ण मुनि निकल गया था। जिसने मुस्लिम धर्म चलाया।

योगनिरोध—

आयु का १ मास शेष रह गया। अब भगवान ने उपदेश बन्द कर दिया। वे सम्मेद शिखर की **सुवर्णभद्र कूट** पर प्रतिमायोग धारण कर अचल खड़े हो गये। ३६ मुनिराजों ने आपके साथ-साथ प्रतिमायोग धारण किया। कूट के दर्शन का फल १६ करोड़ उपवास है।

निर्वाण कल्याणक—मोक्षगमन—

श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रदोषकाल में (सायं—रात्रि के प्रथम प्रहर में) विशाखा नक्षत्र में उसी सुवर्णभद्र कूट से ३६ मुनिराजों के साथ तृतीय एवं चतुर्थ शुक्ल ध्यान के द्वारा शेष सम्पूर्ण अघातिया कर्मों का नाश कर सिद्धावस्था प्राप्त की। आपके मोक्ष जाते ही इन्द्रादि देव देवियों ने आकर निर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाया। महा पूजा की। अग्निकुमारों ने अग्नि संस्कार आदि नियोग किया। अनेकों रत्नद्वीप जलाये। अनेकों फल-पुष्पों से अर्चना कर स्तुति की। वे श्री पार्श्वप्रभु हम लोगों को भी मुक्ति दाता हों।

पूर्वभवावली—

१ मरुभूति मंत्री २ हाथी, ३ सहस्रार, (१२वें) स्वर्ग में देव, ४ विद्याधर राजा, ५ अच्युत स्वर्ग (१६वें) में देव, ६ वज्रनाभि चक्रवर्ती, ७ मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र, ८ आनन्द राजा, ९ आनत स्वर्ग में इन्द्र, १० पार्श्वनाथ भगवान तीर्थंकर।

इनके साथ वैर बांधकर कमठ का जीव १ कमठ, २ कुक्कुट सर्प, ३ पांचवें नरक का नारकी, ४ अजगर, ५ नरक में, ६ भील, ७ नारकी, ८ सिंह, ९ नारकी और १० महीपाल, ११ शंवर देव हुआ। उपर्युक्त भवावली का अवलोकन कर किसी के साथ विरोध नहीं करना चाहिए। स्वयं वैर का कटु परिणाम भोगकर जीव अपनी ही दुर्गति का पात्र होता है। प्राणी मात्र के प्रति क्षमा भाव रखना चाहिए। क्षमा के कारण पार्श्वनाथ तीर्थंकर हुए।

चिह्न 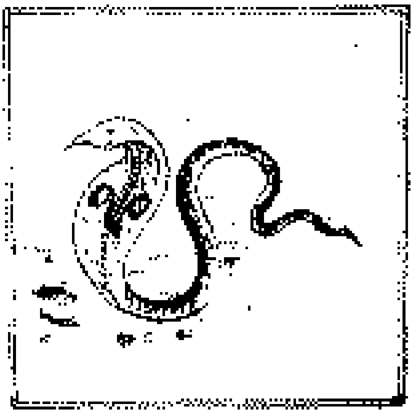 सर्प

प्रश्नावली—

१. श्री पार्श्वनाथ ने विवाह किया या नहीं ?
२. इनका चिन्ह क्या है? किस नगर में जन्म हुआ ?
३. माता, पिता और निर्वाण भूमि का नाम बताओ ?
४. इनके कितने भव आप जानते हैं ?
५. इनका शत्रु कौन था ? शत्रुता का फल क्या है ?
६. पार्श्वनाथ के जीव ने कमठ से बदला लिया क्या ? नहीं ! तो क्यों ? उसका फल क्या हुआ ?
७. आपको क्षमा प्रिय है या शत्रुता ?
८. इनका निर्वाण स्थान कहाँ है ?
९. आपने दर्शन किये हैं या नहीं ? दर्शन का फल क्या है ?
१०. जिन प्रतिमा के दर्शन का फल क्या है ?
११. सूर्य पूजन कब क्यों चली ?

२४–१००८ श्री महावीर-वर्द्धमान जी

पूर्वभव—

भगवान महावीर का जीव सम्पूर्ण संसार का अभिनेता बनकर हमारे सामने आता है। इसने एकेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पर्याप्तक पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त की समस्त छोटी, बड़ी, नीच ऊँच, जाति, पर्यायों और कुलों में भ्रमण किया। असंख्यात भवों की चित्रावली आगम में उपलब्ध है। यहाँ मात्र दो चार भवों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जायेगा।

प्रसिद्ध जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में, पुष्कलावती देश है। उसमें स्वर्गपुरी सदृश पुण्डरीकिनी नगरी है। उसके मधु नामक वन में किसी समय पुरुरवा नाम का भीलों का राजा रहता था। किसी एक दिन विहार करते श्री सागरसेन नामके मुनिराज विचरण कर रहे थे। भीलराज ने उन्हें मृग समझ कर बाण का निशाना बनाना चाहा। किन्तु उसकी पत्नी कालिका ने कहा "ये वन के देवता हैं। इन्हें नहीं मारो। अन्यथा पाप से तुम संकट में पड़ जाओगे।" भील डरा और

पत्नी सहित मुनिराज के पास आकर नमस्कार किया। परम दयानिधि अकारण मित्र मुनिराज ने सरल एवं मधुर वाणी में उसे धर्मोपदेश दिया। मद्य, मांस, मधु का त्याग कराया। पञ्च णमस्कार मंत्र दिया। भील द्वारा नगर मार्ग पर पहुँचाने से मुनिराज विहार कर गये। निरतिचार व्रत पालन कर आयु के अन्त में शान्तचित्त से समाधि मरण कर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। एक सागर पर्यन्त वहाँ के अनुपम सुख भोग भरत चक्रवर्ती का मारीचि कुमार नाम का पुत्र हुआ। अपने बाबा आदीश्वर महाराज के साथ दीक्षित हो अन्य चार हजार राजाओं के साथ भ्रष्ट हो अज्ञान तप किया। सबका मुखिया बनकर सांख्य मत चलाया। श्री वृषभ स्वामी के समवशरण में भरत के प्रश्न के उत्तर में श्री आदिनाथ स्वामी ने अपनी दिव्यध्वनी में कहा था कि यह 'मरीची' तीर्थङ्कर होगा। बस, मान कषाय के श्रृंग पर चढ़ अपना ही घात करता, मिथ्या प्रचार कर असंख्यातों भवों में हलता-फिरने लगा। अन्त में काल लब्धि आयी।

जम्बूद्वीप के क्षेत्रपुर नगर में राजा नन्दवर्द्धन की रानी वीरवती से नन्द नामका पुत्र हुआ। यह अत्यन्त धर्मात्मा, न्यायप्रिय और दयालु स्वभाव का था। कुछ काल राजभोग अनुभव कर उससे विरक्त हो प्रोष्ठिल नाम के मुनिराज के पास जिन दीक्षा धारण की। उग्रोग्र तपश्चरण और गुरु चरण सेवा प्रसाद से उसने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, षोडष कारण भावनाओं का चिन्तवन कर सम्यग्दर्शन की परम विशुद्धि से उत्पन्न निर्मल शुद्ध, परम कारुण्य परिणामों से तीर्थङ्कर गोत्र बन्ध किया। आयु के अन्त में आराधना पूर्वक समाधि कर १६ वें अच्युत स्वर्ग में उत्पन्न हुए। वहाँ २२ सागर की आयु, ३ हाथ का सुन्दर वैक्रियिक शरीर, शुक्ल लेश्या, २२ हजार वर्ष में एक बार मानसिक आहार, २२ पक्ष में एक बार श्वासोच्छ्वास लेता था। अब आया भगवान महावीर बनने का नम्बर

वर्तमान—गर्भावतरण कल्याणक—

उधर स्वर्ग में पुष्पोत्तर विमान वासी इन्द्र की आयु केवल ६ माह की अवशेष रह गयी; इधर भरत क्षेत्र के मगध देश (बिहार प्रान्त) में कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ की पटरानी प्रियकारिणी के आंगन में प्रतिदिन १२॥ करोड़ नाना प्रकार के अमूल्य रत्नों की वृष्टि होने

लगी। प्रियकारिणी सिन्धु देश की वैशाली नगरी के राजा चेटक की रूपवती एवं बुद्धिमती पुत्री थी। अभिमान से अछूती, सतत् सिद्ध परमेष्ठी के गुणों में अनुरक्ता थी। वह सच्ची पतिव्रता थी। उसकी सेवा से महाराज सिद्धार्थ अति प्रसन्न थे, उनका अनुराग भी इनके प्रति सर्वोपरि था। वह दया की अवतार थी। नौकर-चाकर साधारण जन भी उसके प्रेम पात्र और अनन्य भक्त थे। वह सतत् उनके विघ्न निवारण की चेष्टा करती थीं। सिद्धार्थ महाराज नाथवंश के शिरोमणी थे। त्रिशला को पाकर अपने को पवित्र मानते थे। प्रियकारिणी (त्रिशला) के ६ बहिनें और थीं। जिनमें श्रेणिक महाराज की पत्नी चेलना भी थी। रत्नवृष्टि के साथ रुचकगिरि वासिनी देवियाँ, ५६ कुमारी देवियाँ तथा अन्य अनेकों देवियाँ इस महादेवी की सेवा, चाकरी मनोरञ्जन, स्नान, शृंगार, भोजन-पान कराने में संलग्न हो गईं। इन चिह्नों से महाराज सिद्धार्थ को निश्चय हो गया कि अवश्य कोई महापुरुष का अवतार होगा।

एक दिन आषाढ़ शुक्ला ६ के दिन उत्तराषाढ नक्षत्र में रात्रि के पिछले प्रहर में त्रिशला देवी सुख निद्रा में सोई थीं। उसी समय उन्होंने शुभ सूचक पवित्र १६ स्वप्न देखे। अन्त में विशाल काय गज (हाथी) को अपने मुख में प्रविष्ट होते देखा। कहना न होगा कि अच्युतेन्द्र गज के बहाने उनके निर्मल, शुद्ध स्फटिक वत् कुक्षि में आ विराजा। मंगल वाद्यों के साथ निद्रा भंग हुयी। देवियों द्वारा स्नान, मंजन, मण्डन किये जाने पर देवी माँ अपने पति के पास आकर स्वप्नों का फल पूछने लगी। अवधिज्ञानी से विचार कर सिद्धार्थ महाराज ने कहा हे मनोज्ञे! तुम्हारे नव मास बाद तीर्थङ्कर बालक जन्म लेगा।" स्वप्नों का फल कहा। उसी समय सौधर्मेन्द्र असंख्य देव, देवियों के साथ आया। गर्भ कल्याणक पूजा की। माता-पिता का बहुमान कर वस्त्रालंकारों से पूजा की। अनेक प्रकार गीत नृत्यादि द्वारा आनन्द मना अपने स्वर्ग गया। देवियों को विशेष सेवा की आज्ञा दी।

जन्म कल्याणक —

सीप में मुक्ता की भाँति प्रभु निर्विघ्न, निर्बाध रूप से बढ़ने लगे। माता विशेष सुख, शान्ति, आनन्द और स्फूर्ति का अनुभव करने लगीं। उन्हें गर्भजन्य किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। क्रमशः नव मास

पूर्ण हुए। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र प्रात; श्री त्रिशला महादेवी ने अति मनोज्ञ, सुन्दर, उत्तम लक्षणों सहित परम पवित्र पुत्र उत्पन्न किया। उस समय सर्वत्र शुभ शकुन हुए। देव, दानव, मानव, मृग, नारकी सबको आनन्द हुआ। चतुर्निकाय देव आये, कुण्डलपुर को सजाया, धूम-धाम से जन्मोत्सव मनाया। देवराज की आज्ञा से इन्द्राणी प्रसूतिगृह से बालक प्रभु को लायी। ऐरावत गज पर सवार कर इन्द्र सपरिवार हजार नेत्रों से उनकी सौन्दर्य छवि को निहारता महामेरु पर ले गया। पाण्डुक शिला पर पूर्वाभिमुख विराजमान किया। हाथों-हाथों देवगरण १००८ विशाल सुवर्ण घट क्षीर सागर से भर लाये। इन्द्र के मन में विचार आया कि बालक का शरीर १ हाथ का छोटा सा है, कलश विशाल हैं, कहीं प्रभु को कष्ट न हो जाय। मति, श्रुत, अवधि ज्ञानी उस असाधारण बाल ने अपने अवधि से विचार ज्ञात कर लिया। बस, पांव का अंगूठा दबाया कि सुमेरू कांप गया। इन्द्र ने भी अवधि से मेरु कंपन का कारण जान लिया, उनका "वीर" नाम रक्खा। तत्काल करबद्ध मस्तक नवा, क्षमा याचना करते हुए अभिषेक प्रारम्भ किया। प्रभु पर शिरीष पुष्पवत् वह जलधारा पड़ी। इन्द्राणी आदि ने भी नाना सुगन्धित लेपों से प्रभु शरीर को लिप्त कर अभिषेक किया। वस्त्रालंकारों से सुसज्जित कर आरती उतारी। अन्य सब देव-देवियों ने नृत्य, गान, स्तुति, जय जय नाद आदि द्वारा जन्मोत्सव मनाया। देवराज ने इनका **'वर्द्धमान'** नाम प्रख्यात किया। **सिंह** का चिन्ह घोषित किया। पुनः कुण्डलपुर लाकर माता की अंक को शोभित किया। स्वयं देवेन्द्र ने 'आनन्द नाटक' किया।

महाराज सिद्धार्थ ने भी भरपूर जन्मोत्सव मनाया। दीन-दुखियों को दान दिया। कुमार वर्द्धमान को जो भी देखता नयन हर्ष से विगलित हो जाते थे। इस प्रकार द्वितीया के चांद वत प्रभु शैशव से बाल और बाल से कुमार अवस्था में आये। अल्पायु और अल्पकाल में ही इन्हें स्वयं समस्त विद्याएँ, कला, ज्ञान प्राप्त हो गये। इनके अगाध, प्रकाण्ड पाण्डित्य को देख कर बड़े-बड़े विद्वान दांतों तले अंगुलियाँ दबाये रह जाते। विद्वत्ता के साथ शूरता, वीरता, साहस, दृढ़ता भी अद्वितीय थी। इनके काल में अनेकों मत-मतान्तर, पाखण्ड प्रचलित थे। हिंसा को धर्म मानते। धर्म के नाम पर अनेकों पशुओं की बलि, हत्या साधारण बात हो गई थी। इनके दयालु हृदय, करुणामयी वात्सल्य

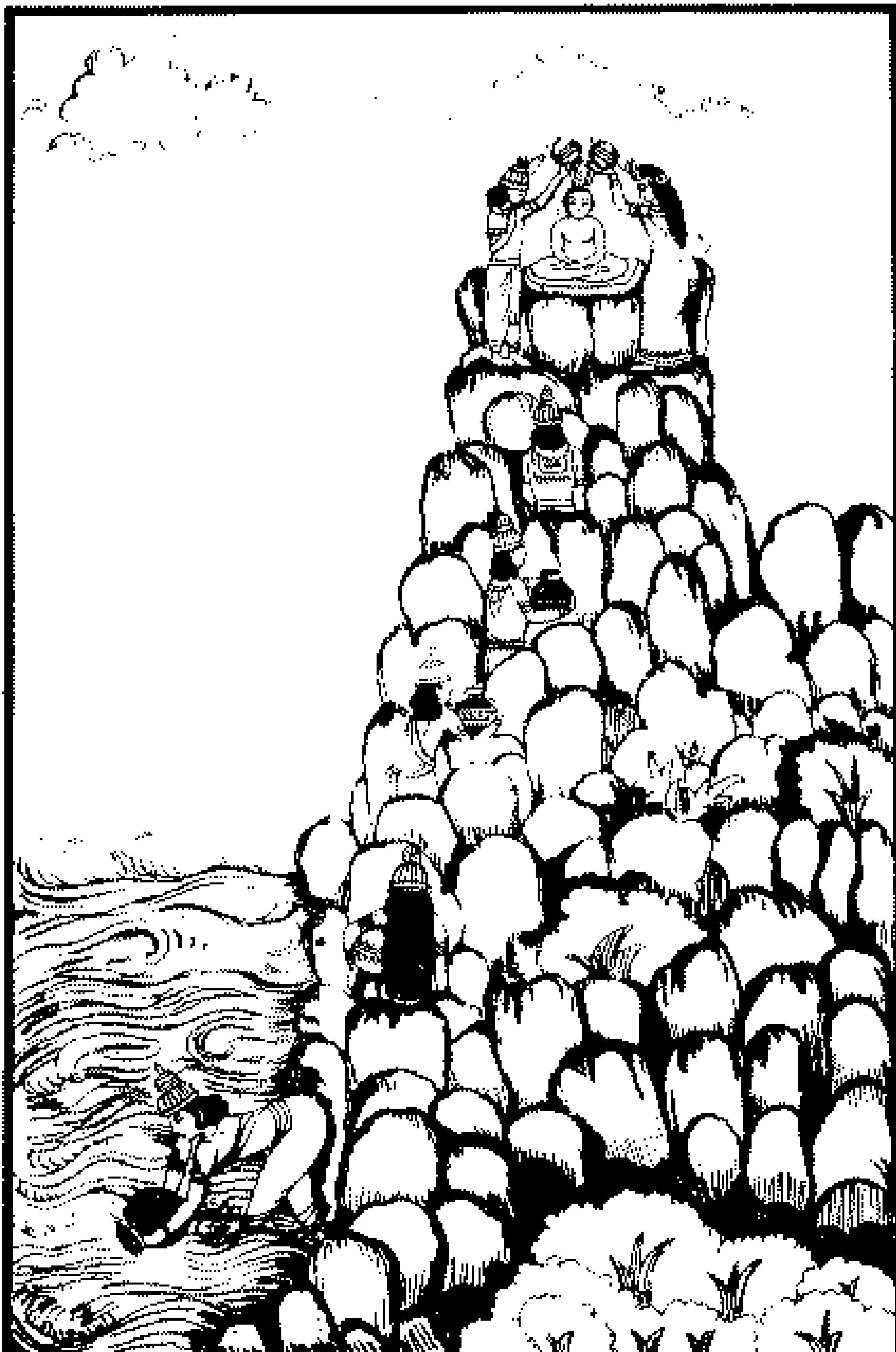

सुमेरु पर्वत पर पाण्डुक शिला पर इन्द्र-इन्द्राणी
भगवान का अभिषेक करते हुए।
(प्रमाण—हरवंश पुराण)

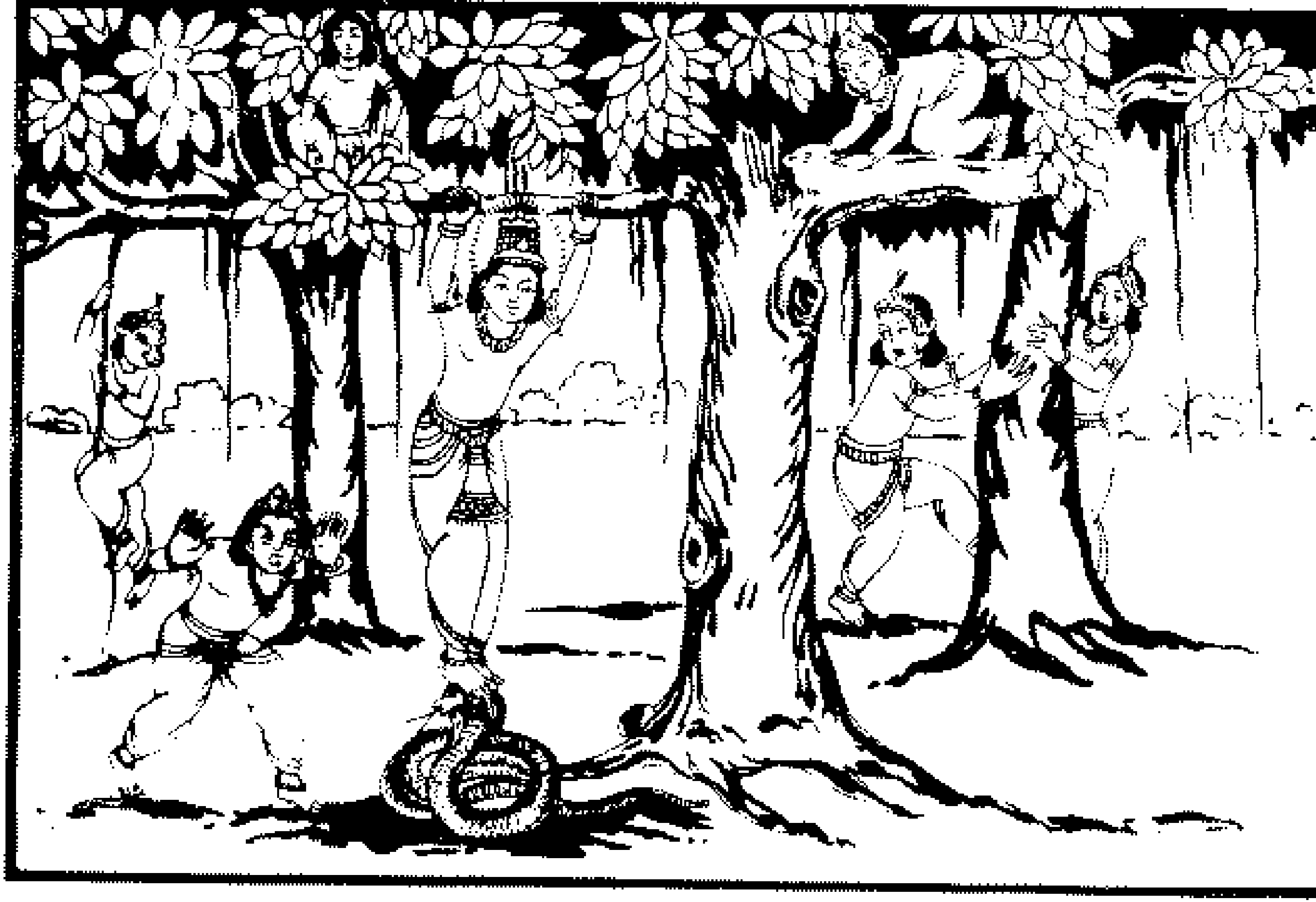

संगम देव महाभयंकर नाग रूपधारी से राजकुमार "वीर" क्रीड़ा करते हुए।
तब संगमदेव ने उनका नाम "महावीर" दिया।

व्यवहार और यथार्थ पाण्डित्य की चर्चा से सर्वत्र सन-सनी मच गई। हल-चल हो गई। क्षणिक वाद, कूटस्थ नित्य वाद, शून्यवाद, सांख्य सिद्धान्त इत्यादि धर्म की ओट में स्वार्थ गांठते और भोले जीवों को आत्म स्वरूप से सर्वथा भिन्न एकान्त, भ्रान्त, मिथ्यापथ पर ले जाते। चारों ओर अज्ञान, अविद्या, मोह का तिमिर छाया था। भगवान महावीर का जन्म इस तिमिर के नाशार्थ ही हुआ। अस्तु बालोदय रवि के समान इनकी प्रताप किरणें व्याप्त होने लगी। स्वयं देव, देवियाँ, देवेन्द्र इनकी परिचर्या में करबद्ध रहते। इनकी आयु ७२ वर्ष और शरीर जन्म समय १ हाथ मात्र था।

एक दिन सौधर्मेन्द्र सभा में कहने लगा। " इस समय वर्द्धमान कुमार के समान शूर-वीर, पराक्रमी अन्य कोई नहीं है।" उसी समय वहाँ से संगम नाम का देव परीक्षार्थ आया। उस समय बालक वर्द्धमान इष्ट मित्रों के साथ वृक्ष पर चढ़े क्रीडारत थे। वह देव भयंकर विषधर (भुजंग) का रूप धारण कर वृक्ष के स्कंध में चारों ओर लिपट गया। भयंकर फुंकार मारने लगा। सभी बच्चे पेड़ से कूद-कूद कर भाग गये। वर्द्धमान को भय कहाँ, ये मुस्कुराते उसके विशाल फरण पर खड़े हो गये, उसके ऊपर उछल-कूद कर उसी के साथ खेलने लगे। देव उनका साहस देख प्रकट हुआ। खूब स्तुति की और उनका "**महावीर**" नाम रखा।

वे बचपन से ही परम दयालु थे। दीन, अनाथ, विधवा, असहायों का जबतक कष्ट निवारण नहीं करते इन्हें चैन नहीं पड़ता। उनके हृदय में अगाध प्रेम का सागर उमड़ता था। वर्द्धमान जन-जन का और जन-जन वर्द्धमान का था। भारत का कोना-कोना, नदी, नद, पर्वत चोटियाँ, लता, गुल्म, वन कहीं भी जाओ, नर, नारियाँ, सुर, असुर, किन्नरों के मिथुन इन्हीं का यशोगान करते मिलते।

श्री पार्श्वनाथ भगवान के मुक्त होने के बाद २५० वर्ष व्यतीत होने पर आपका आविर्भाव हुआ। इनकी आयु इसी में गर्भित है। इनका शरीर ७ हाथ था। रंग **सुवर्ण के समान कान्तिमान** था।

एक बार संजय और विजय नाम के दो चारण मुनियों को तत्व सम्बन्धी कुछ संदेह हो गया। वे भगवान महावीर के पास आये, उनके

देखते ही दर्शन मात्र से शंका दूर हो गई। उन्होंने बड़ी भक्ति से उनका '**सन्मति**' सार्थक नाम प्रसिद्ध किया।

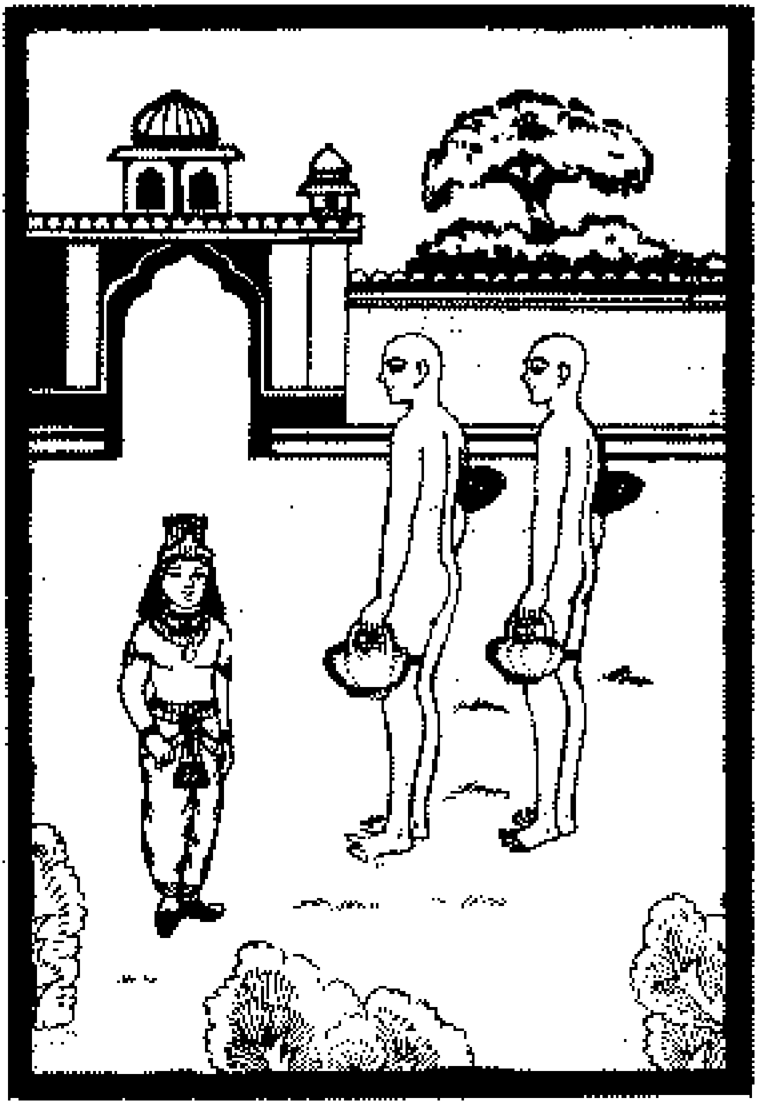

क्रमशः आयु के ३० वर्ष बीत गये। शरीर में यौवन के चिन्ह विकसित होने लगे। यह देख महाराज सिद्धार्थ ने कहा, "प्रिय पुत्र, तुम पूर्ण युवा हो, तुम्हारी गम्भीर मुद्रा, विशाल नयन, उन्नत ललाट, प्रशान्त वदन, मन्द मुस्कान, चतुर वाणी, विस्तृत वक्षस्थल आदि तुम्हारे महापुरुषत्व का द्योतन कर रहे हैं। अब तुम्हारा यह समय राज-काज संभालने का है। इसलिए मैं आपका विवाह कर राज्यमुक्त हो आत्म साधना करना चाहता हूँ।" पिता के वचन सुनते ही कुमार वर्द्धमान का प्रफुल्ल चेहरा कुम्हला गया। वे चौंके। कुछ गम्भीरता के साथ, संयत वाणी में उत्तर दिया, "पिताजी, आप क्या कह रहे हैं, जिस जंजाल से आप बचना चाहते हैं उसमें मुझे क्यों उलझाने की चेष्टा करते हैं। मैं इन झंझटों में कभी नहीं फंस सकता हूँ। मेरा जीवन बहुत छोटा है

और मुझे कार्य बहुत करना है। इन भोले, पथ भ्रान्त, स्वार्थी, धर्म विरोधी एकान्त वादियों को सत्पथ दिखाना है। आप स्वयं मोह में नहीं फंसाइये।" सिद्धार्थ महाराज सुनते ही तिलमिला उठे। बड़े प्रेम और आग्रह से रोकने का प्रयत्न किया। परन्तु वर्द्धमान तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने स्पष्ट कर दिया, मैं कदाऽपि विवाह नहीं करूँगा और न राज्य ही भोगूंगा। निश्चय मैं अविनाशी राज्य प्राप्त करूँगा।

वर्द्धमान का वैराग्य संवाद सुनकर माता प्रियकारिणी का हृदय विषण्ण हो गया। आंखों के सामने अंधेरा छा गया। किन्तु वीर प्रभु ने मधुर वाणी से उनका अज्ञानतम दूर किया। प्रबुद्ध माँ ने आशीर्वाद दिया, "हे देव, वास्तव में तुम मनुष्य नहीं मनुष्योत्तर हो, तुम्हारे जैसे पुत्र को पाकर मैं धन्य हो गई। आप आराध्य देव बनो। यही मेरी आशा है।" इस प्रकार महावीर परिवार मोह से मुक्त हो मुक्ति श्री को पाने के लिए कटिबद्ध हुए।

कुमार वर्द्धमान को वैराग्य होते ही लौकान्तिक देव आये। इन्हें जातिस्मरण से वैराग्य हुआ। सारस्वतादि ने वैराग्य पुष्टि करते हुए स्तवन किया और अपने स्थान पर चले गये।

दीक्षा कल्याणक—

असंख्य देव, देवियों, इन्द्र, इन्द्राणियों के जय-जय नाद से आकाश-भू गूंज उठे, कुण्डलपुर में आये। भगवान का दीक्षाभिषेक किया। अनेकों सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कराये। पुनः देव निर्मित 'चन्द्रप्रभा' नामकी पालकी में आरूढ़ हुए। प्रथम पालकी मनुष्यों ने उठायी, फिर विद्याधर राजाओं ने, तदनन्तर देव लोग ले गये। षण्ड वन में पहुँचे। वहाँ तीन दिन (तेला) का उपवास धारण कर अगहन वदी दशमी, हस्ता नक्षत्र में बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्याग किया। "नमः-सिद्धेभ्यः" कह कर स्वयं निर्ग्रन्थ-जिन दीक्षा धारण कर आत्मध्यान में निमग्न हो गये। आत्मविशुद्धि और संयम ज्योति से उसी समय उन्हें मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया। देवेन्द्र और देव-देवियों ने परमोत्तम पूजादि सम्पन्न की। इस प्रकार दीक्षा कल्याणक महोत्सव सम्पन्न कर सब अपने-अपने स्थान में गये।

पारणा-आहार—

अखण्ड मौन से तीन दिन के उपवास के बाद प्रभु जी चर्या मार्ग से 'कुलग्राम' नामक नगरी में पहुँचे। वहाँ राजा 'कूल' ने बड़ी भक्ति से पड़गाहन किया। तीन प्रदक्षिणाएँ दीं। उस समय इन्द्र धनुष का भ्रम होता था क्योंकि वीतराग प्रभु की शरीर कान्ति सुवर्ण वर्ण, राजा का प्रियंगु फूल समान लाल, उसके (राजा) वस्त्र शुभ्र, मुकुट अनेक मणियों से जटित नाना आभरणों युत उसकी महादेवी थी। चरणों में नमस्कार किया। "आज मुझे महानिधि प्राप्त हुयी" इस प्रकार मानकर नवधा भक्ति से, अति प्रासुक, उत्तम परमान्न-क्षीर का आहार दिया। इससे उसके पञ्चाश्चर्य हुए।

परमपुरुष भगवान महावीर कठोर कर्मों का संहार करते, आत्म-साधना रत हो विहार करने लगे। रत्नत्रय शक्ति से उत्पन्न शीलरूपी आयुध को लेकर, गुण समूहों का कवच पहन, शुद्धतारूपी मार्ग से चल निशंक योगिराज अतिमुक्तक वन के श्मशान में आ विराजे।

उपसर्ग—

धैर्य कम्बलावृत जिन मुनीन्द्र ध्यानारूढ हुए। प्रतिमायोग धारण कर आत्म संविति का आनन्द लेने लगे। उसी समय द्वेष अभिप्राय से महादेव ने उन्हें देखा। उनके धैर्य की परीक्षा करना चाहा। पापोपार्जन में दक्ष उसने प्रथम विद्या से घनघोर अंधकार किया, पुनः भूत, बेताल, आदि भयंकर रूप धारण कर नाचते-कूदने, गर्जने लगे। अट्टहास करने लगे। सर्प, हाथी, सिंह, भील आदि की सेनाएँ आयीं। नाना प्रकार से भयभीत कर तपच्युत करने का प्रयत्न किया। परन्तु श्री प्रभु तो मेरु वत् अचल रहे। महादेव परास्त हुआ। माया समेटी। नाना प्रकार उनकी स्तुति की और **"अतिवीर"** नाम रख कर आनन्द से नृत्य किया। पारवती के साथ वन्दना कर अभिमान छोड़ चला गया।

चन्दना द्वारा आहार—

वृषभदत्त सेठ की सेठानी ने कुमारी चन्दना को शंकावश मूँड मुडा, बेड़ियों से जकड़ कारागार में डाल दिया था। उसे उड़द के बाकले खाने को दिये। पुण्योदय से विपत्ति भी सम्पत्ति बन जाती है, शूल फूल, शत्रु मित्र हो जाते हैं। धर्म जीव का चिर साथी और सफल रक्षक है।

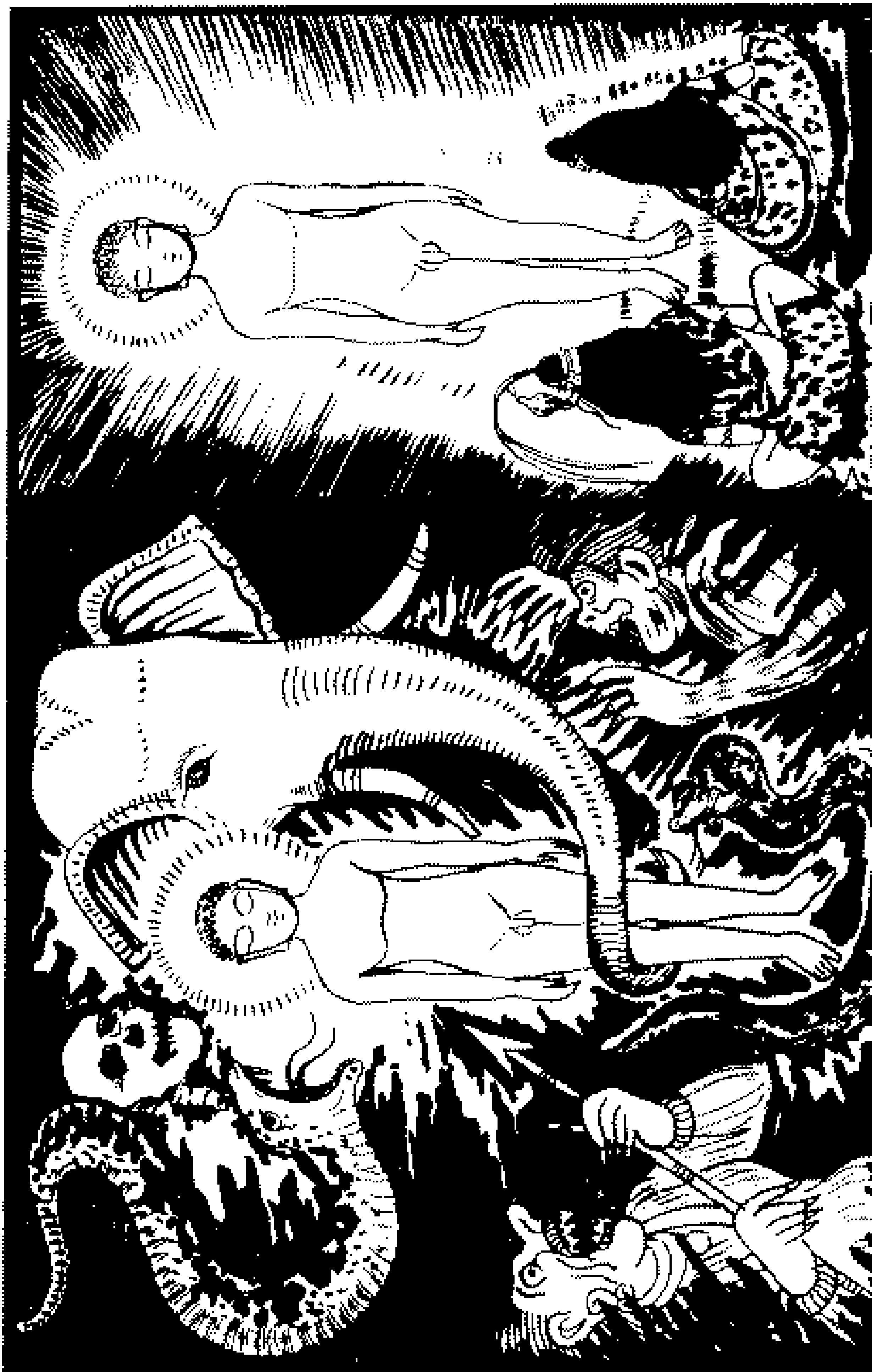

महादेव द्वारा भयंकर उपसर्ग कर और प्रभु को तपच्युत करने का असफल प्रयास पश्चात् पार्वती सहित प्रभु की वन्दना की और 'अतिवीर' नाम दिया।

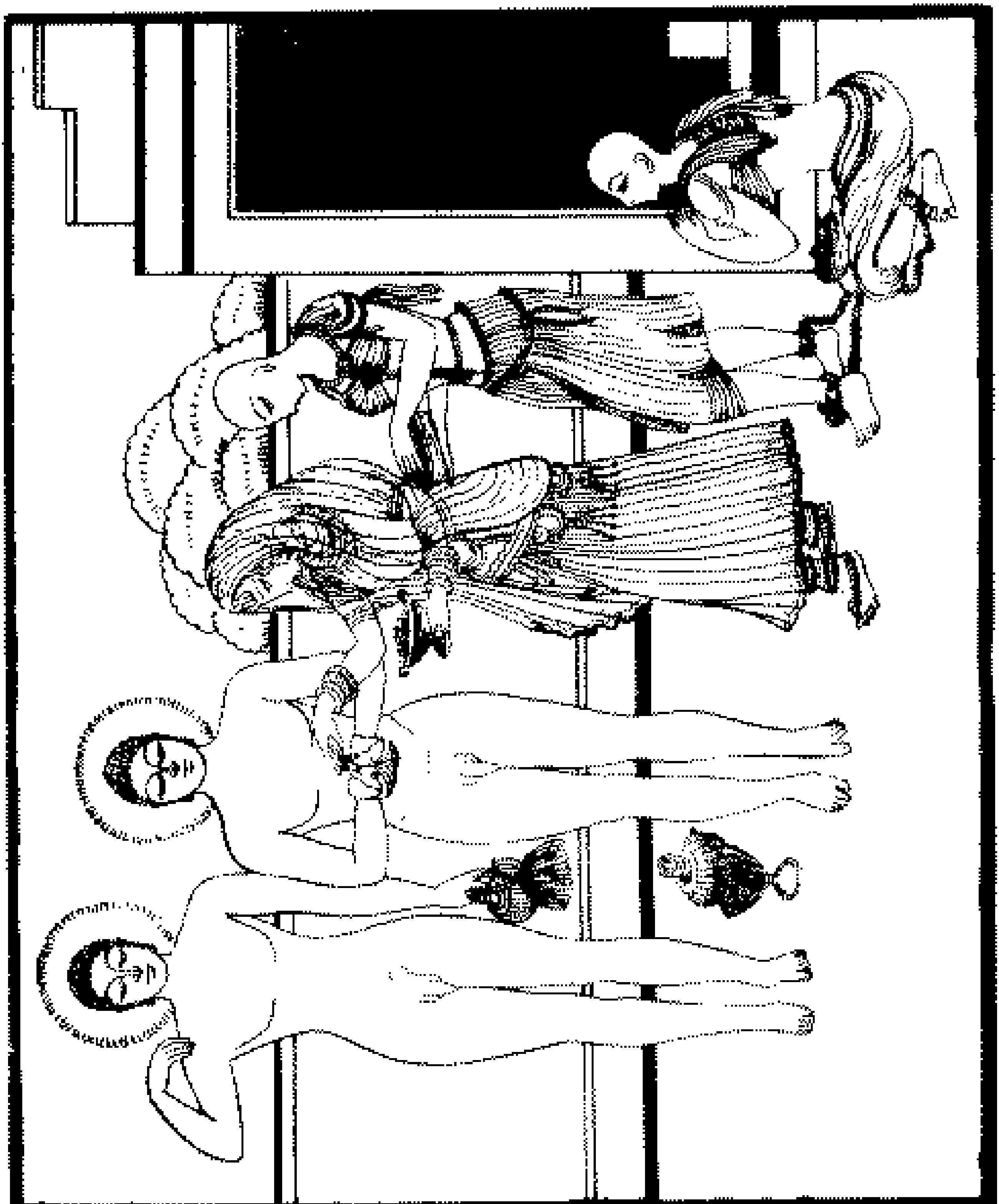

सती चन्दनबाला द्वारा 1008 भगवान महावीर को आहार दान

किसी दिन मुनीन्द्र वर्द्धमान कौशाम्बी नगरी में आहार के निमित्त आये। जिस दशा में चन्दना थी, वही उनका अवग्रह था। अस्तु, वे निस्पृही, वीतरागी मुनिराज उस चेटक की पुत्री चन्दना के सामने आये। वह भी भक्ति से पडगाहन करने को दौड़ी, कि चट-चट, झन-झनाती बेड़ियाँ टूट गई, सिर पर घुँघराले काले केश सुशोभित हो गये, मालती माला से गला शोभित हो गया, वस्त्राभूषण सज गये। मिट्टी का पात्र सुवर्ण पात्र और कोदों का भात सुन्दर सुगंधित शाली का भात हो गया। उस बुद्धिमती ने विधिवत् आहार दान दिया। पञ्चाश्चर्य हुए। शील महात्म्य प्रकट हुआ। भाई बन्धुओं से मिलन हुआ। किन्तु उसने विरक्त हो आर्यिका माताजी के पास अर्जिका दीक्षा धारण कर ली।

भगवान आहार कर पुनः वन में जा विराजे। इस प्रकार मौन पूर्वक १२ वर्ष तक अनेक तप करते व्यतीत हुए।

छद्मस्थ काल—

भगवान मुनीश्वर ने १२ वर्ष छद्मस्थ काल में अनेकों कनकावली, सिंह निष्क्रिडित आदि उपवास कर कर्म शत्रुओं को जर्जरित किया। प्रमत्त से अप्रमत्त दशा को प्राप्त कर सतत निज शुद्ध स्वरूप का चिन्तन किया।

केवलोत्पत्ति—

किसी एक दिन विहार करते हुए भगवान जृम्भिका गांव में ऋजुकूला नदी के समीप मनोहर उद्यान में पधारे। वहाँ सागोन वृक्ष के नीचे स्वच्छ शिला पर विराजमान हो शुक्लध्यान आरंभा। उत्तरोत्तर बढ़ती विशुद्धि से क्षपक श्रेणी आरोहण किया।

वैशाख शुक्ला दशमी के दिन हस्त नक्षत्र में संध्या समय उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। वही सागोन वृक्ष-कल्प वृक्ष रूप परिणत हो गया। उसी समय इन्द्र, देव देवियाँ, नदी प्रवाह की भाँति सर-सर स्वर्गलोक से आ गये।

ज्ञान कल्याणक—

असंख्य देव देवियों के साथ इन्द्र ने भगवान महन्त श्री वर्द्धमानस्वामी की ज्ञान कल्याणक पूजा की। उत्सव किया। कुबेर को समव-

शरण रचना की आज्ञा दी। धनद ने भी भूमि से ५००० धनुष ऊपर आकाश में उत्तम १२ सभाओं से मण्डित गंधकुटी युक्त १ योजन (४ कोश) लम्बा-चौड़ा गोलाकार समवशरण रचना की। इसके चारों ओर १-१ हाथ लम्बी-ऊँची २०-२० हजार सीढ़ियाँ बनायीं (सुवर्ण की) आने-जाने का सभी प्रबंध देवों द्वारा था। गंधकुटी के मध्य रत्न जटित सुवर्ण सिंहासन पर भगवान अंतरिक्ष विराजे। चारों ओर सुर-असुर, नर-नारी, देव-देवियाँ, तिर्यञ्च, मुनि, आर्यिकाएँ विराज गये और धर्मोपदेश श्रवण की प्रतीक्षा करने लगे।

दिव्यध्वनि क्यों नहीं हुयी ?

केवल ज्ञान हो गया। सर्वज्ञ बन गये भगवान सर्वदर्शी। परन्तु ६६ दिन पर्यन्त दिव्योपदेश नहीं हुआ। मौन से विराजे वे जिनराज। किसकी ताकत थी कि त्रिलोकाधिपति से पूछें, "क्यों नहीं उपदेश देते ?"

इन्द्र ने अवधि लगायी। अवधिज्ञान से कारण विदित किया कि गणधर के अभाव से प्रभु मौन हैं। यह भी जाना कि महा अभिमानी इन्द्रभूति ब्राह्मण गणधर होगा।

इन्द्र गौतम ग्राम में पहुँचा। इन्द्रभूति अपने ५०० शिष्यों को वेद-वेदांग पढ़ा रहा था। इन्द्र भी शिष्य रूप में गया, नमस्कार किया, जिज्ञासु रूप में बैठ गया। इन्द्रभूति ने भी नये शिष्य को गम्भीर दृष्टि से देखा और पूछा तुम कहाँ से आये हो ? किसके शिष्य हो ? "मैं सर्वज्ञ भगवान महावीर का शिष्य हूँ।" इन्द्र ने कहा। सर्वज्ञ और भगवान विशेषण सुनते ही वह तुनक कर बोला, ओहो सर्वज्ञ के शिष्य हो ? वे सर्वज्ञ कब हो गये ? मुझसे शास्त्रार्थ किये बिना ही वे सर्वज्ञ हो गये ?" यह सुन इन्द्र ने भौंहे चढ़ा कर कहा तो क्या तुम उनसे शास्त्रार्थ करना चाहते हो ? इन्द्रभूति बोला "हाँ, अवश्य" तो प्रथम मुझ शिष्य से ही कर लो। कहकर—त्रैकाल्यं द्रव्य षटकं नव पद सहित ......आदि श्लोक का अर्थ पूछा। उसे अर्थ समझ में नहीं आया, पर कड़क कर बोला, चल, तुझसे नहीं तेरे गुरु से ही शास्त्रार्थ करूँगा। इन्द्र भी हँसता हुआ उसके आगे हो गया।

दिव्यध्वनि प्रारम्भ—

श्रावण वदी प्रतिपदा के दिन इन्द्र के साथ इन्द्रभूति ब्राह्मण ने समवशरण में प्रवेश किया। मानस्थंभ पर दृष्टि पड़ते ही उसका मान-

अहंकार पर्वत चूर-चूर हो गया। विनीत भाव से गंधकुटी में प्रविष्ट, नमस्कार कर मनुष्यों के कोठे में बैठा। दीक्षा की याचना की। मुनि हो

मनः पर्ययज्ञान प्राप्त कर प्रथम गणधर बने, और भगवान की दिव्य-ध्वनि प्रारम्भ हुयी। 'गौ' वाणी को झेला इसलिए इनका नाम गौतम प्रसिद्ध हुआ। क्रमशः १० गणधर और हुए।

इनके समवशरण में ७०० सामान्यकेवली, ३०० श्रुतकेवली, ९९०० उपाध्याय, ५०० मनः पर्ययज्ञानी, ९०० विक्रिया ऋद्धिधारी, १३००

अवधिज्ञानी और ४०० वादी थे। सब १४००० मुनिराज थे। चन्दना अर्जिका मुख्य थीं इनके साथ ३६००० आर्यिकाएँ थीं। श्रेणिक राजा मुख्य श्रोता थे—१ लाख श्रावक और ३००००० (तीन लाख) श्राविकाएँ थीं। मातंग यक्ष और सिद्धायनी यक्षी थी। भगवान ने सबको नय, प्रमाण, निक्षेपों द्वारा वस्तु स्वरूप समझाया।

इन्द्र ने सहस्र और आठ नामों से स्तुति की और अन्य आर्य देशों में विहार कर धर्मामृत वर्षण की प्रार्थना की। श्री वीर प्रभु ने सप्तभंग रूपी वाणी से अनेकान्त सिद्धान्त के बल से श्रेणिक जैसे कट्टर बौद्ध राजा को जैन बनाया, पशुयज्ञ, नरमेध यज्ञ, आदि को अहिंसा सिद्धान्त से निर्मूल किया। धार्मिक मार्मिक स्याद्वाद् वाणी द्वारा बौद्ध, नैयायिक, सांख्य आदि मत-मतान्तरों की असारता का प्रकाशन कर सारभूत धर्म का प्रतिपादन किया।

श्रेणिक महाराज ने क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न किया। तीर्थंकर गोत्रबन्ध किया। आगामी उत्सर्पिणी काल में प्रथम पद्मनाभि नाम के तीर्थंकर होंगे।

भगवान महावीर का विहार बिहार प्रान्त में अधिक हुआ। राजगृही के विपुलाचल पर कई बार समवशरण आया। इस प्रकार विहार करते जब आयु के २ दिन रह गये तब **पावापुर के पद्म सरोवर के तट** पद्मवन के मध्य आ विराजे।

मोक्ष कल्याणक—

दो दिन योग निरोध कर प्रतिमा योग धारण किया। कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन प्रातः व्युपरतक्रिया निवृत्ति शुक्ल ध्यान के प्रभाव से समस्त अघातिया कर्मों का नाश कर स्वाति नक्षत्र में पावापुर पद्म सरोवर से अनन्त काल स्थायी मुक्ति प्राप्त की।

भगवान महावीर जिस समय मोक्ष पधारे उस समय चतुर्थ काल के ३ वर्ष ८ माह और १५ दिन बाकी थे। ये बाल ब्रह्मचारी थे। आज इन्हें मोक्ष गये २५१२ वर्ष हो गये। अभी इन्हीं का शासन है।

इनका गर्भकाल ९ महीना ८ दिन, कुमार काल २८ वर्ष ७ माह, १२ दिन, छद्मस्थ काल १२ वर्ष ५ माह १५ दिन केवलि काल २९ वर्ष

५ माह २० दिन—कुल ७१ वर्ष ३ महीना और २५ दिन हुए। कुछ आचार्यों ने ७२ वर्ष मानी है। उनके मत से ३० वर्ष कुमार काल, १२ वर्ष छद्मस्थ और ३० वर्ष उपदेश—केवली काल है।

इनके बाद गौतम, सुधर्मस्वामी और जम्बूस्वामी ये तीन अनुबद्ध केवली हुए। आज दिगम्बर आम्नाय इन्हीं के सार गर्भित उपदेशों से चल रही है। श्रेणिक महाराज ने भगवान महावीर स्वामी से ६०००० प्रश्न पूछे। उन्हीं के उत्तर स्वरूप आज हमें जिनवाणी प्राप्त है।

भगवान वर्द्धमान, वीर, महावीर, सन्मति और अतिवीर ये ५ नाम प्रसिद्ध हैं।

यथार्थ तत्व परिज्ञान करने के लिए जिनवाणी का अध्ययन, मनन, चिन्तन करना अनिवार्य है। भाव विशुद्धि और तृष्णा विजय के लिए तीर्थंकर पुराण पढ़ना आवश्यक है। भगवान वीर हमें भी मुक्ति लाभ करायें इस भावना के साथ इस चरित्र को समाप्त करती हूँ।

चिह्न सिंह

वैशाख कृष्णा १३ बुधवार ता. १७-४-८५ प्रथम प्रहर रात्रि, गुणबाडी गाँव, श्री १००८ मल्लिनाथ जिनालय (तमिलनाडु) में लिपि विसर्जन की।

प्रश्नावली—

१. भगवान महावीर कौन थे ? जन्म स्थान बताओ ?

२. वैराग्य का कारण क्या था ?

३. विवाह किया या नहीं ? राज्य भोगा क्या ? नहीं तो क्यों ?

४. इनके समय में कौन कौन से मत थे ?

५. केवलज्ञान के बाद दिव्यध्वनि क्यों नहीं खिरी ?

६. किस दिन उपदेश प्रारम्भ हुआ ?

७. मोक्ष कब, कहाँ से हुआ ?

८. इनके समवशरण का विस्तार कितना था ?

९. मुख्य आर्यिका कौन थीं ?

१०. प्रथम पारणा किसने कराया ?

११. इनके कितने नाम हैं ? 'अतिवीर' नाम क्यों पड़ा ?

श्री महावीर स्वामी की आरती

ॐ जय महावीर प्रभो, स्वामी जय महावीर प्रभु ।
कुण्डलपुर अवतारी, त्रिशलानन्द विभो ।। ॐ जय महा० प्रभो ।।

सिद्धारथ घर जन्मे, वैभव था भारी, स्वामी वैभव था भारी ।
बाल ब्रह्मचारी व्रत, पाल्यो तपधारी ।। ॐ जय महा० प्रभो ।।

आतम ज्ञान विरागी, समदृष्टि धारी ।
माया मोह विनाशक, ज्ञान ज्योति जारी ।। ॐ जय महा० प्रभो ।।

जगमें पाठ अहिंसा, आपही विस्तारयो ।
हिंसा पाप मिटाकर, सुधर्म परिचारयो ।। ॐ जय महा० प्रभो ।।

यही विधि चांदनपुर में, अतिशय दर्शायो ।
ग्वाल मनोरथ पूरयो, दूध गाय पायो ।। ॐ जय महा० प्रभो ।।

प्राणदान मन्त्री को, तुमने प्रभु दीना ।
मन्दिर तीन शिखर का, निर्मित है कीना ।। ॐ जय महा० प्रभो ।।

जयपुर नृप भी तेरे, अतिशय के सेवी ।
एक ग्राम तिन दीनो, सेवा हित यह भी ।। ॐ जय महा० प्रभो ।।

जो कोई तेरे दर पर, इच्छा कर आवे ।
धन सुत सब कुछ पावे, सङ्कट मिट जावे ।। ॐ जय महा० प्रभो ।।

निश दिन प्रभु मन्दिर में, जगमग ज्योति जरे ।
हरि प्रसाद चरणों में, आनन्द मोद भरे ।। ॐ जय महा० प्रभो ।।